फल बतलाया गया हो वह संवेगिनीकथा है। और जिसमें संसार-शरीर-भोगादिककी स्थिति तथा स्वरूप आदिका वर्णन हो वह वैराग्यकी कारण निर्वेदिनीकथा है । ये चारों सत्कथायें हैं और पुण्यबन्धकी कारण हैं। और जहाँ केवल राग-द्वेषादिका वर्णन हो उसे कुकथा समझनी चाहिए।

यह नेमिपुराण प्रथमानुयोगसे उत्पन्न हुआ है, पुण्यका कारण है और संसारके प्राणियोंका हित करनेवाला है; इसलिए जो भव्यजन इसे पढ़ते हैं, दूसरोंको पढ़ाते हैं या सुनते हैं वे सदा परम-सुख प्राप्त करते हैं। अन्य ग्रन्थमें लिखा है कि जो जिनभगवानके पवित्र पुराणकी पूजा करते हैं वे शान्ति-तुष्टि लाभ करते हैं, जो पूछते हैं वे पुष्टिको प्राप्त होते हैं, जो पढ़ते हैं वे आरोग्य लाभ करते हैं और जो सुनते हैं उनके कर्मोंकी निर्जरा होती है।

इसप्रकार संक्षेपमें प्रस्तावना कहकर अब नेमिनाथ
नका पवित्र चरित यथा शास्त्रानुसार लिखा जाता

नमस्कार करते हुए देवेन्द्र, चक्रवर्त्ती आदिके
कान्ति-जलमें धुलकर जिनके चरण पवित्र होगये
आत्मा अत्यन्त पवित्र है, जो लोक और
वाले हैं और प्राणियों मनोवांछित देनेवाले–
हैं वे गुणनिधि श्रीनेमिनाथजिन मङ्गल-सुर

इति प्रथमः सर्गः।

दूसरा अध्याय ।

नेमिजिनके पूर्वभव ।

सम्पदाके स्थान जम्बूद्वीपके बीचमें सुदर्शन नाम पर्वत है। वह सोनेका है, बड़ा ऊँचा है। उसके चारों ओर चार वन हैं। उनसे वह ऐसा जान पड़ता है मानों रेशमी कपड़े पहने हुए सब द्वीप-समुद्रोंका राजा है। सीता और सीतोदा नामकी दो बड़ी नदियाँ उसके पास होकर बहती हैं। उनका पानी बड़ा निर्मल है और वे बड़ी गहरी हैं। जैसे किसी उच्च घरानेकी दो राज-रानियाँ हों। सुमेरुके उन चारों वनोंमें बड़े बड़े जिनमन्दिर हैं। उनमें भगवान्‌की सुन्दर प्रतिमायें हैं। मेरुसे कोई एक वालके इतना अन्तर छोड़कर ऊपर स्वर्गका ऋजुविमान है। वह बड़ा चौड़ा और छत्रकीसी शोभाको धारण किये हुए है। सूरज, चाँद आदि ज्योतिषचक्र मेरुके चारों ओर सदा घूमा करता है। मानों राजाकी सेवामें जैसे सेवक लोग खड़े हैं।

मेरुसे पश्चिम और सीतोदा नदीसे उत्तरकी ओर सारे संसारकी सम्पत्तिका निवासस्थान सुगंधिल नाम देश है। वह ग्राम, पुर, पत्तन, खेट, द्रौण, मटंब आदिसे युक्त है। उसमें स्वच्छ पानी भरे हुए, बहुत गहरे और कमलोंसे युक्त सुन्दर तालाब सज्जन पुरुषोंके समान जान पड़ते हैं। सज्जन

पुरुष भी निर्मल हृदयवाले और गंभीर प्रकृतिके होते हैं। वहाँकी नाना वस्तुओंकी खानें तथा सुन्दर खजानोंसे पृथ्वी-का वसुन्धरा नाम सार्थक है। उसमें रास्तेके ऊँचे, छायादार और सदा फल-फूलोंसे झुके हुए वृक्ष सज्जनोंके समान जान पड़ते हैं। सज्जन भी उन्नत विचारवाले, दूसरोंको आश्रय देनेवाले या कान्तिके धारक और नम्र होते हैं। उनके फलोंको खाकर पथिकजन बड़े सन्तुष्ट होते हैं। वहाँ पर्वतके समान ऊँची अन्नकी ढेरियाँ भव्यजनोंके संचित किये पुण्य-समूहके समान जान पड़ती हैं। वहाँकी ग्वालिनोंके सुन्दर रूपको देख-कर स्वर्गके देव-देवाङ्गनागण मुग्ध हो जाते हैं तब औरोंकी तो बात ही क्या? वहाँ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव और बड़े बड़े माण्डलिक राजगण उत्पन्न होते हैं। उसके वनमें जिन-मन्दिर रत्नोंके तोरणों और धुजाओंसे बड़ी सुन्दरता धारण किये हुए हैं। वहाँके भव्यजन जो परोपकार द्वारा पुण्य उपार्जन करते हैं उससे वे धन-जन-सुख-सम्पत्तिसे युक्त होते हैं। वहाँ अनावृष्टि, अतिवृष्टि आदिका कष्ट नहीं होता। वहाँ मिथ्या देवतोंकी स्थापना, पाखंडी और धर्म-ढोंगी गुरुओंकी सेवा कोई नहीं करता। केवल दसलक्षणमय जिनधर्महीको, जिसे स्वर्गके देवता भी पूजते हैं, सब मानते हैं। रत्नत्रयके धारक और पवित्र हृदयवाले मुनिजन आत्म-योगका साधन कर वहाँसे सदा मोक्षको जाते हैं।

उस देशमें सुवर्ण-रत्नादिक सम्पत्तिसे परिपूर्ण सिंहपुर

नामका एक नगर है । उसके चारों ओर एक सफेद रँगका किला बना है । जैसे वहाँके राजाके संसार-व्यापी यशने उस पुरको घेर रक्खा हो। गोपुरद्वार, खाई, गृहोंकी पंक्ति, ध्वजा आदिसे वह पुर स्वर्गके समान जान पड़ता था। उस पुरके चारों ओर नारियल, सन्तरा, सेव, नासपाती आदि फलोंसे झुके हुए वृक्ष कल्पवृक्षके समान मालूम होते थे। वहाँके जिनभवन कुए, बावड़ी, सरोवर, फूलबाग, आदिसे युक्त थे। उनपर सुन्दर धुजायें फहरा रही थीं । वहाँकी प्रजा खूब धन-दौलतसे युक्त थी और पुण्यसे प्राप्त हुए मन-चाहे भोगोंसे बड़ी सुखी थी। वहाँ सदा ही कुछ न कुछ मंगल-उत्सव हुआ ही करते थे। कभी जिनयात्रोत्सव होता' और कभी पुत्रादिकका जन्मोत्सव मनाया जाता था। वहाँके निवासी बड़ी खुशीसे पात्रोंको चारों प्रकारका दान देते थे और महासुखकी देनेवाली जिनपूजा करते थे। वहाँ-के लोग सम्यक्त्वसहित आठ आठ पन्द्रह पन्द्रह दिनके उपवास कर और अपने योग्य शीलव्रतका पालन कर उत्तम गति लाभ करते थे। स्त्रियाँ वहाँकी बड़ी खूबसूरत और सदा-चारिणी थीं। उनमें दुराचारका नामनिशान भी नहीं था।

इत्यादि श्रेष्ठ सम्पत्तिसे भरे हुए सिंहपुरके राजा अर्हद्दास थे। वे देव-गुरु-शास्त्रके बड़े भक्त थे। बड़े गुणवान् थे, शूरवीर थे, गंभीर थे, और सुन्दरता उनकी इतनी चढ़ी बढ़ी थी कि कामदेवको भी उन्होंने जीत लिया था। क्षत्रियोंमें वे

शिरोमणि गिने जाते थे। उन्होंने अपने पराक्रमसे क्रूर सिंहको, धन-वैभवसे कुबेरको, प्रतापसे सूरजको और कान्तिसे चन्द्रमाको जीत लिया था। सवेरेके सूरजसे सरोवरका जल जैसे लाल हो उठता है उसी तरह उनका प्रताप शत्रुओंके लिए बड़ा ही तीव्र था और चन्द्रमाकी कान्ति जैसे कुमुद-पुष्पोंको शीतल और विकसित करती है उसी तरह उनकी कान्ति सत्पुरुषोंके लिए शीतल थी। अर्हद्दास बड़े दानी और भोगी थे-कृपण न थे। विचारशील और धर्मके तत्त्वको जाननेवाले थे। बड़े नीतिवान् थे। सब राजोंके लिए वे आदर्श थे। स्त्री जैसे प्रिय और मनचाहा सुख देनेवाली होती है उसी तरह उन्हें चारों राज-विद्यायें प्रिय और सुख देनेवाली थीं। उन विद्याओंके नाम हैं---आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति। अर्हद्दास राज्यके जो सात अंग हैं उनसे युक्त थे। उन्होंने राजाओंके छह शत्रु काम, क्रोध, लोभ आदिको जीत लिया था। अपने धार्मिक नित्य-नैमित्तिक क्रिया-कर्ममें वे सदा तत्पर रहते थे। वे सन्धि, विग्रह, आदि छह राज-गुणोंसे युक्त थे। इन गुणोंसे वे ऐसे शोभते थे जैसे गृहस्थ देवार्चना आदि छह नित्यकर्मोंसे शोभता है।

अर्हद्दासकी रानी जिनदत्ता थी। वह बड़ी पतिपरायणा और सारी स्त्री-सृष्टिका भूषण थी। स्वर्गकी देवाङ्गनाओंको उसकी संसार-श्रेष्ठ सुन्दरता देखकर इतना अचंभा हुआ कि वे फिर पलक तक न गेर सकीं। (देवाङ्गनाओंके पलक नहीं गिरते

यह प्रसिद्ध है।) उसका शरीर बड़ा कोमल, उसकी वाणी बड़ी मधुर, उसका मन बड़ा दयालु था। और दान करनेमें मानों वह कल्पवेल थी। इसप्रकार वे पतिपत्नी पुण्यसे प्राप्त भोगोंको भोगा करते थे। उनका समय बड़े सुखसे बीतता था।

एक दिन रानी जिनदत्ताने अष्टाह्निकाके दिनोंमें जिन भगवान्की महापूजा की। उसके कोई सन्तान न होनेके कारण उस रातको पुत्रकी भावना करती हुई वह सोगई। रातके अन्तिम भागमें उसने स्वप्नमें सिंह, हाथी, चाँद, सूरज और नहाती हुई लक्ष्मीको देखा। उस समय जान पड़ा कि कोई महापुरुष सबको सुखदेनेके लिए उसके गर्भमें आया। नौवें महीनेके अन्तमें उसने बड़े सुखके साथ पुण्यके पुंज पुत्रको जन्म दिया। जैसे कविकी बुद्धि सुन्दर काव्यको जन्म देती है। उस समय सारे देश और पुरके लोगोंको बड़ा ही आनन्द हुआ। सुपुत्र कुलका दीपक होता है। अर्हद्दास महाराजने अपने पुत्रका जन्ममहोत्सव बड़े ठाट-बाटके साथ मनाया। याचक जनोंको उनके मनके माफिक दान दिया। जिस दिनसे अर्हद्दासके पुत्रजन्म हुआ उस दिनसे उन्हें शत्रुओंपर बड़ा विजय मिला। इसी कारण बन्धुलोगोंने जिनमन्दिरमें खूब उत्सव कर उस बालका नाम भी अपराजित रक्खा। पूर्व पुण्यसे जीवोंको सब प्रकारका उत्तम सुख मिलता ही है। इसलिए भव्यजनो, प्रमाद छोड़कर सुख देनेवाले पुण्यकर्मोंको सदा करते रहो। मुनिलोगोंने जिनदेवकी पूजा करना,

पात्रोंको दान देना, व्रत-उपवास करना और शीलपालना आदि पुण्यके कारण बतलाये हैं।

बालक अपराजितका रूप-सौभाग्य दिन दिन बढ़ता ही गया। चन्द्रमाके समान उसे बढ़ता देखकर कुटुम्ब-परिवारके लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ। जो आगे तीर्थंकर होनेवाला है और देवतागण जिसे पूजते हैं उस महात्माके गुणसमुद्रका पार कौन पासकता है। इसप्रकार पुत्र, धन-दौलत, राज्य-विभव-से युक्त अर्हद्दास महाराज बड़े सुखसे समय विताते थे। इसी समय इनके 'मनोहर' नामके बागमें विमल-वाहन मुनि आकर ठहरे। वनमालीने उनके आनेकी खबर राजाको दी। इस अच्छी खबर लानेवाले मालीको राजाने उचित इनाम देकर सारे शहरमें भी इस आनन्द-समाचारको पहुँचा दिया। इसके बाद वे परिजन-पुरजनसहित बड़े ठाट-बाटसे मुनिवन्दनाको गये। वहाँ उन्होंने चौंतीस अतिशय और आठ प्रतिहार्योंसे युक्त, देवतों द्वारा पूजाको प्राप्त, धर्मामृतकी वर्षा करते हुए, समवशरणमें विराजमान, केवलज्ञानी और निर्ग्रंथ तीर्थंकर भगवान्को देखा। उन्होंने उन जगत्पूज्य भगवान्की तीन प्रदक्षिणा कर और बार बार उन्हें नमस्कार कर जल-चन्दनादि द्रव्यों द्वारा उनकी पूजा की और इसप्रकार स्तुति की—देव, आप तीन जगत्के स्वामी हैं, तीन लोकके भूषण हैं, सब जीवोंके रक्षक हैं और गुरु हैं। ।।ने घातियाकर्मोंका नाशकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया

कुवेरने इन्द्रकी आज्ञासे समवशरण रचकर दोनों जिनके अपराजितको दर्शन कराये। अपराजितने बड़े आनन्दसे उनकी पूजा की। धर्मात्माओंका कौन मित्र नहीं होता । अपराजित राजाको इसप्रकार धर्म-अर्थ-कामका उपभोग करते बहुत समय भी एक क्षण भरके समान जान पड़ा।

वसन्तके दिन थे। एकवार अपराजित राजा नन्दीश्वर पर्वमें महान् अभ्युदयकी देनेवाली जिनपूजा करके धर्मानुरागसे भव्य-जनोंको धर्मोपदेश कर रहा था। इसी समय दो आकाशचारी मुनि वहाँ आये। राजाने नमस्कार कर उनकी स्तुति की। स्तुतिके अन्तमें राजाने भक्तिसे एकवार फिर उन मुनिराजोंको नमस्कार किया। इसके वाद उनका धर्मोपदेश सुनकर राजाने उनसे पूछा—नाथ, मुझे ऐसा भान होता है कि पहले कहीं मैंने जगत्का हित करनेवाले आप महात्माओंके दर्शन किये हैं। पर यह नहीं जानता कि किस स्थान-पर और वह स्थान कहाँ है? नाथ, आपको देखकर मेरे हृदयमें बड़ा प्रेम होता है। कृपाकर ये सब बातें बतलाइए कि इसका कारण क्या है? उन मुनियोंमेंसे वड़े मुनिने कहा—राजन, तुम्हारा कहा सत्य है। तुमने हमको पहले देखा है। वह सब मैं तुम्हें सुनाता हूँ। "पुष्करार्द्ध-द्वीपके मेरुकी पश्चिम दिशामें और सीतोदा नदीके उत्तर किनारे पर गंधिल नामका एक मनोहर देश है। उसमें विजयार्द्धपर्वतकी उत्तरश्रेणीका भूषण सूर्यप्रभ नाम एक पुर था। उसके राजाका नाम भी

सूर्यप्रभ था। वह बड़ा प्रतापी और धर्मात्मा था। उसकी रानीका नाम धारिणी था। वह बड़ी सौभाग्यवती थी। इनके तीन पुत्र हुए। उनके नाम थे चिन्तागति, मनोगति और चपलगति। मुनियोंको जैसे रत्नत्रयके लाभसे आनन्द होता है उसी तरह ये राजारानी इन पुत्रोंको पाकर बड़े सुखी हुए। विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणीमें ही अरविंद नाम एक और पुर था। उसके राजाका नाम अरिंजय था। वह विद्याधरोंका स्वामी था। इसकी रानीका नाम अजितसेना था। राजाको रानी प्राणोंसे प्यारी थी। इनके प्रीतिमती नामकी एक बड़ी सुन्दरी लड़की थी। वह एक दिन अपने पिताके साथ मेरुकी प्रदक्षिणा करने गई। वहाँ उसने एक प्रतिज्ञाकी कि "मैं किसी नियत स्थानपर एक रत्नमाला रक्खूँगी। जो अपने विद्यावलसे मेरे आगे दौड़कर उस मालाको पहले उठा लेगा, वही बुद्धिमान् मेरा स्वामी होगा; दूसरा नहीं।" प्रीतिमतीके साथ ब्याहकी आशा करके बहुतसे विद्याधर-राजकुमार आये। उन सबको अकेली प्रीतिमतीने हरा दिया। वे बहुत अपमानित होकर वापिस लौटे। विना अच्छे पुण्यके जय नहीं मिलती। इस मौकेपर चिन्तागतिके भाई मनोगति और चपलगति भी गये थे। चिन्तागति न गया था। और और राजकुमारोंकी तरह इन दोनों भाइयोंको भी अपनासा मुँह लेकर लौट आना पड़ा। इन्होंने अपना यह मानभंगका हाल अपने बड़े भाई चिन्तागतिसे कहा। चिन्तागति यह सुनकर अरविंदपुर आया।

उसने बातकी बातमें प्रीतिमतीको जीतकर बड़ी ख्याति लाभ की। प्रीतिमती जब चिन्तागतिके गलेमें वह वरमाला पहराने लगी तब चिन्तागति उससे बोला—कुमारी, तुम यह माला मुझे न पहना कर मेरे छोटे भाईको पहनाओ—उसे ही अपना पति समझो। इसके उत्तरमें प्रीतिमती बोली—जिसने मुझे जीता है, उसे छोड़कर मैं किसी तरह अन्य पुरुषको अपने स्वामी-पनका मान नहीं दे सकती। प्रीतिमतीके इन बचनोंको सुन-कर चिन्तागतिने फिर कहा—तो कुमारी सुनो। मेरे भाइयोंने पहले तुम्हारे साथ जो गतियुद्ध किया था, वह तुमपर मोहित होकर ही किया था। इसलिए जिसे मेरे छोटे भाइयोंने चाहा वह मेरे योग्य नहीं; अतः मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता—मैं तुम्हें सर्वथा छोड़ चुका। तब उनमें जो तुम्हें पसन्द हो उसे इस मालाके द्वारा भूषित करो। सज्जनोंके मनकी महिमा कोई नहीं कह सकता। चिन्तागतिकी यह प्रतिज्ञा सुनकर प्रीतिमती मेरुके समान दृढ़ निश्चयवाली और महा वैरागिन बन गई। वह फिर सब संसार-भोग और परि-ग्रहको छोड़कर निवृत्ता नाम आर्यिकाके पास तप लेगई। उसका इस नई उम्रमें ऐसा साहस देखकर और बहुतोंने तप ग्रहण किया। चिन्तागति और उसके दोनों भाई भी प्रीतिमतीका यह कठिन साहस देखकर संसार-भोगादिकोंसे बड़े ही उदासीन होगये। उन्होंने फिर दमधर नाम आचा-र्यके पास जिनदीक्षा ग्रहण कर खूब तप किया। अन्तमें

संन्यास सहित शरीर त्यागकर चिन्तागति चौथे माहेन्द्र स्वर्गमें अपने भाइयोंके साथ सामानिक देव हुआ। वहाँ उसने सात सागरतक खूब दिव्य भोगोंको भोगा।

जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहमें पुष्कलावती नाम देश है। उसमें विजयार्द्धपर्वतकी उत्तरश्रेणीमें गगनवल्लभ नाम पुर है। उसके राजाका नाम गगनचन्द्र था। उनकी रानीका नाम पुर-सुन्दरी था। माहेन्द्रस्वर्गमें जो चिन्तागति और उसके दो भाई थे वे वहाँकी आयु पूरीकर इस पुरसुन्दरीके अमि-तगति और अमिततेज नामके हम दो पुत्र हुए। हमने तीनों विद्याओंको पढ़ा। हम बड़े पराक्रमी वीर हुए। एक दिन हम दोनों भाई किसी कारण वश पुण्डरीकणी नगरीमें गये हुए थे। वहाँ श्रीस्वयंप्रभ तीर्थंकरका समवशरण आया जान-कर हम उनकी वन्दनाको गये। बड़ी भक्तिके साथ हमने उनकी पूजा की। इसके बाद हमने उनसे अपने पूर्वजन्मका हाल पूछा। उन्होंने हमारा तीन जन्मका हाल कहा। हमने फिर उनसे पूछा—भगवन्, हमारा तीसरा भाई चिन्तागति इस समय कहाँ है? उत्तरमें भगवान बोले—सुगंधिल नामका एक सुन्दर देश है। उसमें सिंहपुर नाम नगर है। उसका राजा अपराजित ही तुम्हारा भाई चिन्तागति है। उनके द्वारा यह सब वृत्तान्त सुनकर हमने उसी समय जिनदीक्षा लेली। उसके बाद भ्रातृप्रेमके वश होकर हम दोनों भाई तुम्हें देखनेको यहाँ आये। अब हम तुम्हें कुछ कहना चाहते हैं, तुम उसे

ज़रा सावधान होकर सुनना । भैया, पुण्यके उदयसे अबतक तुमने खूब भोगोंको भोगा, पर अब तुम्हारी आयु सिर्फ एक महीनेकी रह गई है । इसलिए अब तुम्हें सावधान होजाना चाहिए । मुनिके इन बचनोंको सुनकर अपराजित बड़ा खुश हुआ । उसने कहा—श्रेष्ठ जिनधर्मका उपदेश करनेवाले आपसरीखे सर्वत्यागी निर्ग्रन्थ योगी भी पूर्वजन्मके प्रेमके वश होकर मुझसे मिलनेको इतनी दूरसे चलकर यहाँ आये, यह मेरे बड़े ही पुण्य या भाग्यका उदय है । आप महात्माओंने इस समय मेरा जो उपकार किया वह उपकार आप सरीखे पूज्य पुरुषोंको छोड़कर और कौन कर सकता है ? इत्यादि उन मुनिराजोंकी स्तुति कर अपराजितने उनको प्रणाम किया । उस समय वे मुनिराज राजाको आशीर्वाद देकर अपने स्थानको चले गये । इधर धीरवीर अपराजित राजाने सब राज्यभार अपने प्रीतिंकर नाम पुत्रको देकर अष्टाह्निकपर्वकी महापूजा की, भक्तिपूर्वक प्रसन्न मनसे पात्रोंको दान दिया और अपने सब कुटुम्ब-परिवारको बिदा करके शल्यरहित होकर प्रायोपगमन नाम संन्यास ले लिया । संसार-समुद्रसे पार करनेवाले पंच परम गुरुका स्मरण करते हुए उसने प्राण त्याग किया । जाकर उसने सोलहवें स्वर्गके रत्नमयी पुष्पविमानकी दिव्यसेजमें उपपाद-जन्म लिया । वहाँ अन्तर्मुहूर्त्तमें वात, पित्त, कफ आदि दोष, धातु और रोग, शोक, अपमृत्युसे रहित होकर वह दिव्य शरीरका धारक पूर्ण युवावस्थाको

प्राप्त देव हुआ । उस अच्युतेन्द्रने अवधिज्ञान द्वारा यह सब पूर्व पुण्यका प्रभाव समझकर जिनधर्मकी बड़ी प्रशंसा की । इसके बाद उसने अमृतकुण्डमें स्नान कर जिनपूजा की और सिंहासन पर बैठकर अपनेको नमस्कार करने आये हुए देवतोंका उचित आदर-सत्कार किया । उसे अणिमादिक आठ ऋद्धियाँ प्राप्त हुईं । वह परम आनन्दमें लीन रहने लगा । हृदय उसका बड़ा पवित्र था । महा वैभवयुक्त वह देवाङ्गनाओंके साथ अनेक प्रकारका दिव्य सुख भोगता हुआ कल्पवेलसे युक्त कल्पवृक्षकी तरह शोभने लगा । जिसके पाप नष्ट होगये हैं ऐसा वह देव कभी बड़े ठाट-बाटसे नन्दीश्वर द्वीप या मेरुपर्वतके अकृत्रिम जिनमन्दिरोंमें जाकर वहाँ इच्छामात्रसे प्राप्त हुए दिव्य द्रव्यों द्वारा जिनप्रतिमाओंकी पवित्र भावोंसे पूजा करता था, कभी मोक्षसुखके देनेवाले केवली जिनके चरणोंकी बड़ी भक्तिसे सेवा करता था, कभी सब सन्देहोंके नाश करनेवाला जिनभगवान्का सुमधुर उपदेश-संगीत सुनता था; और कभी बड़े आनन्द और भक्तिके साथ जिनभगवान्के पाँच कल्याण जिन जिन स्थानोंपर हुए हैं उन स्थानों तथा मुनियों--की पूजा करता था । इसप्रकार पुण्यके फलसे उस देवने बाईस सागरपर्यन्त स्वर्गके दिव्य सुखोंको भोगा । उसके मानसिक आहार था-अर्थात् मनमें आहारकी इच्छा उत्पन्न होते ही तृप्ति हो जाती थी । इसप्रकारकी मानसिक इच्छा बाईस हजार वर्ष बीत-

नेपर एकवार होती थी और उसीसे उसे पञ्चेन्द्रियोंके सब सुख प्राप्त हो जाते थे। उसके दिव्य देहकी रचना ही ऐसी थी या उसके महान् पुण्यका उदय था जो उसे ग्यारह महीनेमें एकवार साँस लेना पड़ता था। इसप्रकार उस जिनभक्त देवने सोलहवें स्वर्गमें खूब सुख भोगा। भारतवर्षमें कुरुजांगल नामका एक सुन्दर देश है। उसमें हस्तिनापुरके राजाका नाम श्रीचन्द्र था। वह बड़ा बुद्धिमान् था। उसकी रानी श्रीमती बड़ी सुन्दरी और सौभाग्यवती थी। वह सोलहवें स्वर्गका देव इसीके सुप्रतिष्ठ नाम प्रसिद्ध पुत्र हुआ। वह बड़ा खूबसूरत और गुणवान् था। योग्य वयमें इसका एक सुनन्दा नाम राजकुमारीके साथ ब्याह हुआ। सुनन्दाको पाकर वह बड़ा सुखी हुआ। प्राणोंसे अधिक वह अपनी प्रियाको चाहने लगा। एक दिन सुप्रतिष्ठके पिता श्रीचन्द्रने अपना राज्यका सब कारोबार सुप्रतिष्ठको सौंपकर जगत्का उपकार करनेवाले सुमन्दरमुनिके पास जिनदीक्षा ग्रहण करली।

सुप्रतिष्ठ अब राज्य चलाने लगा। उसने इस अवस्थामें खूब सुखोंको भोगा, जो भोग पापीजनोंको अत्यन्त ही दुर्लभ हैं। वह सब सम्पदाकी देनेवाली जिनपूजा और अपने योग्य शील, व्रत, उपवासादिक सदा किया करता था। प्रजाका पालन वह पुत्रकी तरह प्रेमसे करता था। एक दिन सुप्रतिष्ठ राजाने यशोधर मुनिको विधिपूर्वक आहार

कराया । उससे उसके यहाँ देवोंने रत्न और फूलोंकी वर्षा की, नगाड़े बजाये, शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु बहाया और जयजयकार किया । पात्रदानका फल ही ऐसा है कि उससे सुख प्राप्त होता है, सब सम्पदा मिलती है, दरिद्रता और दुर्गतिका नाश होता है और मन बड़ा खुश होता है । तीन लोकमें ऐसी कौन उत्तमसे उत्तम वस्तु है जो सत्पात्रदानसे प्राप्त न हो । इसप्रकार पात्र-दानको सब धर्मका मूल और जगत्का उपकारी जानकर दोनों लोकमें हितकी इच्छा करनेवाले भव्यजनोंको पात्र-दान सदा करते रहना चाहिए । इसप्रकार श्रावकधर्मको धारण कर सुप्रतिष्ठ राजाने कुछ काल विताया ।

एकदिन सुप्रतिष्ठ राजा अपनी प्रियाओंके साथ राजमहल परसे प्रकृतिकी शोभा देख रहा था । उस समय उसने आकाशसे उल्काको गिरते देखा। उसे देखकर सुप्रतिष्ठने मनमें विचारा—जैसी यह उल्का क्षणमात्रमें नष्ट होगई उसी तरह संसारमें धन-जन, जीवन-यौवन, बन्धु-बान्धव आदि सब विनाशीक हैं । जिस संसारमें तीर्थंकर भगवान् तक स्थिर न रहे उसमें इन्द्र, चक्रवर्ती आदिको मौतके पंजेसे कौन छुड़ा सकता है । यह शरीर मलसे भरा हुआ, सन्ताप करनेवाला और नाश होनेवाला है । फिर भला कौन ज्ञानीजन इस शरीरमें प्रेम करेगा ? ये पञ्चेन्द्रियोंके विषय क्षणभरमें साँपके समान प्राणोंको नष्ट कर देनेवाले हैं । इन्हें भी लोग

बड़े प्रेमसे सेवन करते हैं। इससे बढ़कर और क्या मूर्खता होगी ? इसप्रकार मन-वचन-कायसे विरक्त होकर सुप्रतिष्ठने जिनभगवान्का अभिषेक किया और पात्रोंको यथायोग्य दान दिया। इसके बाद अपने बड़े पुत्र सुदृष्टिको राज्य देकर उसने सुमन्दरमुनिके पास सुखकी कारण जिनदीक्षा ग्रहण करली। सत्पुरुषोंके मनमें जो बात बैठ जाती है उसे वे पूरी करके ही छोड़ते हैं। अब सुप्रतिष्ठ मुनि पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तिका बड़े आदरके साथ पालन करने लगे। रत्नत्रयके निधिरूप इन सुप्रतिष्ठ मुनिने थोड़े ही समयमें ग्यारह अंगोंको पढ़ लिया। वे सोलहकारण भावनाओंको, जो पवित्र तीर्थंकर पदकी कारण हैं, विचारने लगे। इन भावनाओंका शास्त्रानुसार संक्षेप स्वरूप यहाँ लिखा जाता है। उसे आप लोग सावधान होकर सुनिए। जिनभगवान्ने जो विस्तारसहित सात-तत्वोंका स्वरूप कहा है उसके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। जैसे अक्षर-मात्रासे पूर्ण मंत्र कार्यकी सिद्धिका हेतु है उसी तरह यह सम्यक्त्व निःशंकितादि आठ अंगोंसे दृढ़ होकर सब सिद्धिका देनेवाला है। निर्मल आकाशमें जैसे चन्द्रमा शोभाको प्राप्त होता है उसी तरह यह सम्यक्त्व पच्चीस मल-दोषोंसे रहित होनेपर सुन्दरता धारण करता है। जिस रत्नका साणपर चढ़नेसे संस्कार हो चुका वह जैसी दिव्य कान्ति धारण करता है उसी तरह आठ मदरहित सम्यक्त्व

शुद्ध कहा जाता है। जो दर्शनरूपी रत्न मन-वचन-कायसे उत्पन्न वैराग्यरूपी जलसे धुलकर पवित्र हो गया, भला वह फिर किसके मनको न हरेगा ? अथवा पंच परमेष्ठीकी अनन्यभावसे शरणमें प्राप्त होकर उनकी आराधना-ध्यान करना वह भी सम्यग्दर्शन है। या मैं एक हूँ, ज्ञानी हूँ शुद्ध हूँ, ज्ञाता-द्रष्टा हूँ और सुखमय हूँ; सुख-दुखमें इसप्रकारकी भावना करनेको भी सम्यग्दर्शन कहते हैं। इत्यादि लक्षणोंसे युक्त सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि-अत्यन्त निर्मलता होनेको 'दर्शन-विशुद्धिभावना' कहते हैं। इस भावनासे युक्त होकर ही बाकीकी सब भावनायें मोक्षकी कारण होती हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तथा इनके धारकोंमें जो महान् विनय किया जाता है, उसकी पूर्णता होनेको दूसरी 'विनयसम्पन्नताभावना' कहा है। यह कर्मोंकी नाश करनेवाली है। ब्रह्मचर्यके पालन करनेको शील कहते हैं। सके पालनेवाले मुनि और श्रावक हैं। इसलिए वह दो प्रका- . है। मन-वचन-कायसे अपने व्रतका रक्षण करनेको भी शील कहते हैं। उसमें किसी प्रकारका अतिचार न लगाना-तीसरी 'शीलव्रतेष्वनतिचारभावना' है। जिनप्रणीत शास्त्र-समुद्रका सदा अवगाहन-स्वाध्याय करनेको चौथी 'अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगभावना' कहा है। इस स्वाध्यायके पाँच भेद हैं। नरकगतिमें छेदन-भेदन आदि दुःख हैं, पशुगतिमें भूख-प्यास आदि दुःख हैं, मनुष्यगतिमें इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग

आदि दुःख हैं और देवगतिमें मानसिक दुःख है। इस-प्रकार चारों ही गतिमें दुःख है—सारा संसार ही दुःखोंका घर है। इसप्रकारके विचारको पाँचवी 'संवेगभावना' कहा है। चारों प्रकारके पात्रोंको चारों प्रकारका दान अपनी शक्तिके अनुसार देना छठी 'शक्तितस्त्यागभावना' है। कर्मोंकी निर्जराका कारण बारह प्रकार तपका शक्तिके अनुसार करना सातवीं 'शक्तितस्तपभावना' है। रत्नत्रय-पवित्र तथा और अनेक गुणोंके धारक साधुओंको मन-वचन-कायसे समाधिमें लगाना—मृत्युके समय उनपर किसी प्रकारका उपसर्गादि न आने देकर स्थिरचित्त रखना आठवीं 'साधुसमाधिभावना' है। धर्मात्माओं तथा साधुओंका भक्तिसे वैयावृत्य—सेवा-सुश्रूषा करना—उनके रोगादिके नाशका यत्न करना नवमीं 'वैयावृत्यभावना' है। जिन भगवान्का अभिषेक पूजन करना, स्तुति करना, ध्यान करना या सब सुख-सम्पदाके कारण जिन-दर्शन करना, नित्य हृदयमें ज्ञानादिका स्मरण करना दसवीं 'अर्हद्भक्तिभावना' है। आचार्योंको प्रणाम करना, उनकी भक्ति करना, स्तुति करना तथा उनकी आज्ञाका पालन करना ग्यारहवीं 'आचार्य-भक्तिभावना' है। मिथ्यात्वके नाश करनेवाले स्याद्वादके मर्मज्ञ जनकी सेवा करना बारहवीं 'बहुश्रुतभक्तिभावना' है। जिनवाणी बड़े बड़े पुरुषों द्वारा पूज्य और माननीय है, यह समझ कर उसका हृदयमें सदा आराधन करते रहना तेरहवीं 'प्रवचनभक्तिभावना' है। सामायिक, जिनस्तुति,

वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक हैं, इनके करनेमें किसी प्रकारकी हानि न आने देना चौदहवीं 'आवश्यकापरिहाणिभावना' है। तप, ज्ञान, प्रतिष्ठा, महोत्सव, जिनयात्रा, जिन-भवन-निर्माण आदि द्वारा जिनधर्मकी प्रभावना करना पन्द्रहवीं 'मार्गप्रभावना-भावना' है। साधर्मियोंसे गाढ़ वात्सल्य और जिनवचनोंमें सदा प्रेम करना सोलहवीं 'प्रवचनवात्सल्यत्वभावना' है। इन भावनाओंके द्वारा सुप्रतिष्ठमुनिने संसारका नाश करनेवाला और जिसे देवता पूजते हैं ऐसे तीर्थंकर नाम कर्मका बंध किया। इसके बाद इन महामना मुनिने सब परिषहोंको सहकर अन्तमें एक महीनेका संन्यास लेलिया। शत्रु-मित्रको समान भावोंसे देखनेवाले इन मुनिने भक्तिसे पंच परम गुरुओंका ध्यान करते हुए आत्मभावनासे युक्त होकर प्राणोंको छोड़ा। यहाँसे जाकर वे रत्नमयी और मोतियोंकी मालाओंसे शोभायमान जयंत नाम विमानकी उपपाद शय्यामें, जो बड़ी ही निर्मल और मुनियोंके मनकी तरह कोमल है, जन्म लिया। अन्तर्मुहूर्त्तमें वे अहमिन्द्र पूर्ण युवा हो गये। शरीर उनका एक हाथका था। वे बड़े खूबसूरत थे। उनका दिव्य-शरीर कान्तिसे आँखोंमें चकाचौंध लाता था। वे शुक्ललेश्यासे ऐसे शोभाको प्राप्त होते थे जैसे पुण्यके पुंज हो। वे सिरपर रत्नमयी मुकुट और शरीरपर दिव्य वस्त्रोंको पहरे हुए ऐसे जान पड़ते थे जैसे घूमता हुआ कोमल कल्पवृक्ष हो। वीतराग, निर्भय, खिले कमल समान

मुखवाले और काम-क्रोधादि रहित वे अहमिन्द्र जिनबिंबके समान जान पड़ते थे। उपपाद-शय्यासे उठते ही उन्होंने जो सुन्दर स्वर्गभवन आदिको देखा, उससे उन्हें थोड़ा विस्मय हुआ, पर वह विस्मय अवधिज्ञान द्वारा जब उन्होंने यह सब पूर्वपुण्यका प्रभाव समझा तब जाता रहा। श्रेष्ठ-सम्पदाके देनेवाले जिनधर्मकी तब उन्होंने खूब तारीफ की। इसके बाद सुख देनेवाले अमृतकुण्डमें नहाकर अनेक शोभाओंसे युक्त जिनमन्दिरमें जाकर जलादि द्रव्योंसे जिनप्रतिमाओंकी उन्होंने पूजा की। अहमिन्द्र बड़े वैरागी होते हैं, इस कारण अपने सुखमय स्थानको छोड़कर उनका अन्यत्र जाना नहीं होता। वे वहीं रहकर जिनभगवान्के पंच कल्याणोंकी भक्ति सदा प्रेमसे करते रहते हैं। इन अहमिन्द्रने पुण्यसे प्राप्त दिव्य सुखोंको प्रविचार रहित—बिना शरीर सम्बधके तेंतीस सागरपर्यन्त भोगा। वे अवधिज्ञान द्वारा लोकनाड़ी पर्यन्त चौदह राजूतकके पदार्थोंको जानते थे और अपने दिव्य तेज द्वारा इतने ही स्थानको उनने आलोकित कर रक्खा था। वे तेंतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार करते थे और साढ़े सोलह महीनेमें एकवार कुछ थोड़ासा साँस लेते थे। विक्रियाशक्तिसे ऐसे होकर भी वे बड़े निरभिमानी थे। उनका स्वभाव बड़ा ही कोमलता लिये हुए था। इसलिए वे विक्रिया कभी करते ही न थे। उनका दिव्य-देह सात धातुओंसे रहित था। उन्हें न किसी प्रकारकी कोई व्याधि थी और न कोई रोग था। जो सिद्ध-देशीय हो चुके उनका

वर्णनका क्या ठिकाना है ? कोई यह कहे कि अहमिंद्र तेंतीस सागरके इतने दीर्घकाल पर्यन्त जयन्तविमानमें सुखसे रहे, वहाँ वे क्या किया करते थे ? तो इस विषयमें कुछ लिखा जाता है। उनके स्थानपर जो ईर्षा आदिको छोड़े हुए अन्य अहमिंद्र अपने आप आते उनके साथ वे जिनप्रणीत सात तत्वोंका विस्तारसे वर्णन करनेवाले द्वादशाङ्ग शास्त्रकी चर्चा करते थे। दीर्घकालपर्यंत इसप्रकार चर्चासे उन्हें जो सुख मिलता इन्द्रोंको उस सुखका हजारवाँ हिस्सा भी मिलना दुर्लभ है। इसलिए भव्यजनो, सुनिए—जो निर्द्वन्द सुख ज्ञानके द्वारा मिलता है वही सच्चा सुख है । बाकी विषयोंसे होनेवाला जो सुख है वह सुख नहीं किन्तु केवल दुःखरूप है । वह पवित्र सुखअहमिन्द्रोंको पुण्यसे मिलता है। सुप्रतिष्ठमुनिका जीव अहमिन्द्र उसी परम सुखको भोगता है । इसप्रकार वे अहमिन्द्र सुखपूर्वक जयन्त विमानमें रहे। अब उनके आगे होनेवाले जन्मवंशका वर्णन किया जायगा।

जिन्हें इन्द्र, अहमिन्द्र, चक्रवर्ती आदि महापुरुषोंने पूजा, जिनने लोकालोकका स्वरूप जाना, चारित्र धारणकरनेमें जो सबसे श्रेष्ठ गिने गये और ध्यानाग्निसे घातिया कर्मोंका नाशकर जिन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया वे नेमिनाथ भगवान् भव्यजनोंका संसार-दुःख शान्त करें।

इति द्वितीयः सर्गः ।

तीसरा अध्याय।

हरिवंशका वर्णन।

त्रि जगद्गुरु नेमिनाथ जिनको नमस्कार कर संक्षेपसे हरिवंशका वर्णन किया जाता है। इस प्रसिद्ध जम्बूद्वीपमें भारतवर्ष विशाल देश है। उसके एक प्रान्त वर नाम देशमें सुन्दर कौशाम्वी नाम नगरी वसी हुई है। कौशाम्वीके राजाका नाम मघवा था। इनकी रानीका नाम वीतशोका था। इनके रघु नाम एक प्रसिद्ध और सवका प्यारा पुत्र हुआ। इसी नगरीमें सुमुख नाम एक वड़ा धनी सेठ रहता था। वहुत धन होनेसे वह वड़ा कामी होगया था। इधर कलिंगदेशके दत्तपुरका एक वीरदत्त नाम महाजन भीलोंके त्राससे भागे हुए साथियोंके साथ अपनी स्त्री वनमालाको लिये कौशाम्वीमें सुमुख सेठके पास आया। सुमुखने उसे अपने यहाँ रख लिया। एक दिन सुमुख हवा-खोरीके लिए जा रहा था। जाते हुए उसने सुन्दरी वनमालाको देख लिया। वह उसपर आसक्त होगया। कामके वाणोंनें उसके मनको वहुत ही जर्जर कर दिया। वनमालाको वश करनेकी इच्छासे पापी सुमुखने एक युक्ति की। उसने वीरदत्तको वारह वर्षके लिए स्थिर नौकरी देकर व्यापारके वहाने दूसरे देश भेज दिया, और इधर वनमालाको समय

समय पर वस्त्रभूषणादिका लोभ देकर अपनेपर लुभा लिया। वह फिर उसके साथ खूब ऐशोआराम करने लगा। जन्मका अन्धा पुरुष जैसे अच्छे मार्गको देख नहीं सकता उसी तरह कामातुर मनुष्य हित-अहितको नहीं देख सकता।

इसके बाद जब बारह वर्ष बीत चुकनेपर वीरदत्त पीछा कौशाम्बीको लौटा और उसने अपनी स्त्रीका हाल सुना तो वह बड़ा दुखी हुआ। बेचारा एक तो विदेशी, अकेला और उसपर जो नौकरीका आधार था वह भी अब न रहा। उससे उसे बड़ा ही अपमानित और लज्जित होना पड़ा। उसके मनमें इस घटनासे बड़ा ही वैराग्य हुआ। उसने विचारा इस असार संसारको धिक्कार है, जिसमें यह प्राणी पञ्चेन्द्रियोंके विषयोंमें उद्धत होकर मनमाना पाप करने लगता है। लोग स्त्री-पुत्रादिमें व्यर्थ ही प्रेम करते हैं। जिससे पाप कमाकर वे दुर्गतिमें जाते हैं। इत्यादि वैराग्यभावनाका विचारकर वीरदत्तने सब परिग्रह छोड़कर प्रोष्ठिल मुनिसे जिनदीक्षा ग्रहण करली। उसने फिर खूब तप किया और अन्तमें संन्यास सहित मरणकर सौधर्मस्वर्गमें चित्राङ्गद नाम देव हुआ।

इधर एकदिन सुमुख सेठ और वनमालाने धर्मसिंह नाम मुनिको विधिपूर्वक आहार कराया। उसके प्रभावसे उन्हें बहुत पुण्यबन्ध हुआ। उन्होंने अपने पापोंकी बड़ी आलोचना की—अपने दुष्कर्मपर उन्हें बड़ी घृणा हुई। एकदिन एकाएक बिजलीके गिरनेसे उनकी मौत होगई।

प्रसिद्ध भारतवर्षके हरिवर्ष नाम देशमें भोगपुर एक शहर था। उसके राजा प्रभंजन हरिवंशके प्रधान राजा थे। उनकी रानीका नाम मृकंडू था। दानके पुण्यसे सुमुख सेठका जीव इन्हींके सिंहकेतु नामका प्रसिद्ध और गुणवान् पुत्र हुआ।

इसी हरिवर्षदेशमें शीलपुर नाम शहर था। उसके राजा वज्रघोष थे। उनकी रानीका नाम सुभा था। वीरदत्तकी स्त्री वनमालाका जीव मरकर दानके पुण्यसे इन राजा-रानीके यहाँ विद्युन्माला नाम सुन्दर पुत्री हुई। पूर्वजन्मके संस्कारसे पूर्णयौवना विद्युन्मालाका ब्याह सिंहकेतुके साथ हुआ। एक दिन ये दोनों दम्पति विनोद-विलास कर रहे थे। इन्हें उस चित्राङ्गद देवने, जो कि विद्युन्मालाके पूर्वजन्ममें वन-मालाका पति था, देखा। पूर्वजन्मके उन्हें अपने वैरी समझकर उनको मारडालनेकी इच्छासे उठाकर वह आकाश-मार्गसे जाने लगा। सिंहकेतुके पूर्वभवमें सुमुख सेठका रघु राजा मित्र था। वह भी अणुव्रतके प्रभावसे सौधर्मस्वर्गमें सूर्यप्रभ नामदेव हुआ था। उसने चित्राङ्गदको क्रोधित देखकर कहा—हे विचारशील, तुमने जो इन दम्पति-युगलको मार डालनेका विचार किया, भला कहो तो इस दुष्कर्मसे तुम्हें सिवा पापबन्धके और क्या लाभ होगा? जानते नहीं, इस पापसे तुम्हें संसार-समुद्रमें चिरकालके लिए डूब जाना पड़ेगा। इसलिए दया करके इस दम्पति-युगलको छोड़ दीजिए। सूर्यप्रभके इसप्रकार पथ्यरूप वचनोंको सुन-

कर चित्राङ्गदने उनको उसीसमय छोड़ दिया। यह सत्य है कि सत्पुरुषोंके पवित्र बचन सब सुखके देनेवाले होते हैं। इसके बाद परोपकारतत्पर सूर्यप्रभ देव विद्युन्माला तथा सिंहकेतुको भविष्यमें एक महान् सम्पत्तिके मालिक होते जानकर, उन्हें धीरज देकर चम्पापुरीके वनमें छोड़ आया। चम्पापुरीका राजा चन्द्रकीर्ति विना पुत्रके मर गया था। मंत्रियोंने किसी अच्छे पुण्यात्मा पुरुषकी खोज में, जो राज-काज चलानेके योग्य हो, एक चन्दनादिसे सिंगारे हाथीको छोड़ा था। पुण्यसे वह उसी जंगलमें पहुँचा, जहाँ सिंहकेतु और विद्युन्मालाको सूर्यप्रभ देव छोड़ गया था। हाथी उन दोनोंको अपने ऊपर बैठाकर ले गया।

मंत्रियोंने तब जिन-पूजनपूर्वक सिंहकेतुका राज्याभिषेक कर उसे सिंहासनपर बैठा दिया और प्रेमसे नमस्कार कर बड़े आदरके साथ पूछा—प्रभो, आप यहाँ क्यों और कहाँसे आये हुए थे, यह हमें बतलाइए। सिंहकेतुने उनके उत्त-रमें यों कहा—हरिवंशमें एक प्रभंजन नाम राजा होगये हैं। वे भोगपुरके स्वामी थे। मैं उन्हीं गुणी राजाका पुत्र हूँ। मेरी माताका नाम मृकण्डू था। मेरा नाम सिंहकेतु है। किसी देवताने मुझे लाकर यहाँ छोड़ दिया। मंत्रियोंने यह सुनकर कि यह मृकंडूका पुत्र है, उसका नाम भी अबसे मार्कण्डेय रख दिया। इसप्रकार पुण्यसे प्राप्त राज्यको मार्कंडेयने खूब आनन्दके साथ भोगा। पुण्यसे क्या नहीं

होता। इन मार्कण्डेयके हरिगिरि नाम पुत्र हुआ। हरिगिरिके हिमगिरि हुआ। हिमगिरिके वसुगिरि हुआ। इसप्रकार इस वंशमें और भी वहुतसे राजे हुए। इसीतरह कुशार्थ देशके सौर्यपुर नाम शहरमें हरिवंश-शिरोमणि सूरसेन नाम राजा हुआ। इसका पुत्र सूरवीर हुआ। यह वड़ा पराक्रमी और हरिवंशरूप आकाशमंडलका मानों सूरज था। उस क्षत्रियशिरोमणि सूरवीर राजाकी दो रानियाँ थीं। पहली धारिणी और दूसरी सुकान्ता। इनमें धारिणीके अन्धकवृष्णि और सुकान्ताके नरपतिवृष्णि नाम प्रसिद्ध पुत्र हुआ। अन्धकवृष्णिकी स्त्रीका नाम देवी था। उसके दस पुत्र हुए। जैसे जगत्का उपकार करनेवाले दस धर्म हों। उनमें अपने गंभीरता-गुणसे समुद्रको भी जीतनेवाला समुद्रविजय सवसे वड़ा पुत्र था। वह प्रतापसे सव शत्रुओंका जीतनेवाला, दान करनेमें कल्पवृक्ष समान, प्रजाका वड़ी अच्छी तरह पालन करनेवाला, सुन्दरतामें मानों कामदेव, प्रसिद्धिमें सुमेरु और अपनी सौम्य कान्तिसे चन्द्रमाको भी जीतनेवाला था। उस पुण्यात्माके गुणोंका क्या कहना, जिससे कि त्रिलोकपूज्य तीर्थंकर भगवान् जन्म लेंगे। समुद्रविजयके वाकी नौ भाइयोंके नाम ये हैं—अक्षोभ्य, स्तिमितसागर, हिमवान्, विजय, अचल, धारण, पूरण, अभिनन्दन और वासुदेव। अन्धकवृष्णिके दो लड़कियाँ भी थीं। वे वड़ी सुन्दरी थीं। उनके नाम

कुन्ती और मद्री थे । समुद्रविजयका ब्याह शिवदेवीके साथ हुआ था । शिवदेवी पुण्यसे वड़ी सुन्दरी थी । उसके अलौकिक रूप और पुण्यको देखकर स्वर्गकी देवाङ्गनायें भी वड़ा आश्चर्य करती थीं । उस महिलारत्नकी क्या प्रशंसा करना जो नेमिनाथरूपी श्रेष्ठ रत्नको उत्पन्न कर रत्नमयी पृथ्वीकी उपमाको धारण करेगी । समुद्रविजयके सिवाय अन्य आठ भाइयोंकी स्त्रियाँ धृती, ईश्वरा आदि हुईं । ये सब भी वड़ी खूबसूरत और सुख देनेवाली थीं । नरपतिवृष्णिका ब्याह पद्मावती नाम किसी राजकुमारीके साथ हुआ था । उसके तीन पुत्र हुए । उग्रसेन, देवसेन और महासेन । ये तीनों भी वड़े साहसी और गुणवान् थे । पद्मावतीके एक लड़की थी । उसका नाम गांधारी था । इसप्रकार सौर्यपुरमें सूरवीर राजा अपने पुत्र-पौत्रादिकका सुखभोग करते हुए समय विताते थे ।

अव कौरव-वंशीय राजाओंका संक्षेप वर्णन किया जाता है । सब सम्पदासे भरेहुए कुरुजांगल देशके हस्तिनापुरके शक्ति नाम राजा हो चुके हैं । उनकी सवकी नाम रानीसे परासर नाम पुत्र हुआ । परासरकी स्त्री सत्यवती हुई । वह एक धीवरराजाकी लड़की थी । इनके व्यास नामका पुत्र हुआ । व्यासकी स्त्री सुभद्रा हुई । उसके तीन पुत्र हुए । धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर । ये तीनों भाई वड़े भाग्यशाली, पुण्यात्मा थे ।

एकदिन ये तीनों जवान भाई विनोद-क्रीड़ा करते हुए सौर्यपुरमें जा पहुँचे । इन्होंने महलकी छतके ऊपर अपनी सखी-सहेलियोंके साथ हँसी-विनोद करती हुई अन्धकवृष्णिकी राजकुमारी सुन्दरी कुन्तीको देखा । उसे देखकर पाण्डु-कुमार मोहित होगया । उसने मनही मन कहा मेरा जन्म लेना तभी सफल हो सकता है जब कि इस सुन्दरीकी मुझे प्राप्ति हो । उधर कुन्तीकी भी यही दशा हुई । पाण्डुको देखकर वह भी उसपर मोहित होगई । कुन्तीने अपनी इच्छा पाण्डुपर प्रगट करनेके लिए बड़ी छुपी रीतिसे एक ताम्बूल लेकर उसपर फैंका । ताम्बूल ठीक पाण्डुपर जाकर गिरा । पाण्डुके रोमाञ्च हो आया । वह बड़ा सन्तुष्ट हुआ । यह ठीक है कि कामी पुरुष स्त्रियों द्वारा ताड़ित होकर भी खुश ही होता है । जैसे धतूरा खानेवालेको मिट्टी भी सोना जान पड़ती है । उसी दिनसे पाण्डु कुन्तीको दिनरात याद करने लगा । जैसे महामुनि परमानन्द देनेवाली मुक्तिको याद किया करते हैं ।

एकदिन कोई वज्रमाली नामका विद्याधर हस्तिनापुरके बगीचेमें हवा-खोरीके लिए आया । जाते समय वह अपनी रत्नकी अँगूठी वहीं भूल गया । उस विद्याधरके चले जाने-पर थोड़ी ही देर बाद पाण्डु घूमता हुआ इधर आगया । उसने तेजसे चमकती हुई उस अँगूठीको देखकर उठा लिया । वह अँगूठी बड़ी ही कामकी चीज थी । उससे सब काम सिद्ध होते थे । वह विद्याधर घरपर पहुँचा होगा कि उसे अपनी

अँगूठीकी याद आई । वह उसी समय उस अँगूठी ढूँढ़ता हुआ उसी बागमें पहुँचा । उसे कुछ दिलगीर देखकर पाण्डु बोला—तुम इतनी व्यग्रताके साथ क्या ढूँढ़ रहे हो ? विद्याधर वोला—कुमार, एक मेरी अँगूठी खोगई है । यदि तुमने उसे देखा हो तो कृपाकर वतलाओ कि वह कहाँ है ? पाण्डुने कहा—इसके पहले तुम यह वतलाओ कि उस अँगूठीमें ऐसी क्या करामात है जिससे तुम इतने आकुल हो रहे हो ? विद्याधर बोला—कुमार, उस अँगूठीके प्रभावसे जैसा चाहो रूप धारण किया जा सकता है और सब शत्रु अपने पाँवोंपर आकर गिरने लगते हैं । सिवा इसके अपनेको छुपाया भी जा सकता है । यह सुनकर पाण्डु वोला—भाई यदि तुम्हारी अँगूठीका ऐसा प्रभाव है तो मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि कुछ दिनोंके लिए मेरे ही हाथमें उसे रहने दो । मैं उसका प्रभाव देखूँगा। विद्याधरने पाण्डुकी प्रार्थनासे वह अँगूठी उसे देदी। सत्पुरुष प्रार्थना करे और वह चीज़ अपने पास हो तो कौन ऐसा अत्यन्त लोभी होगा जो उसे वह वस्तु न देगा ? पाण्डुकुमार उस अँगूठीके प्रभावसे अपनेको छुपाकर चला और जहाँ सुन्दरी कुन्ती अपने शय्या-मन्दिरमें सोई हुई थी, वहाँ पहुँचा। वह कामसे पीड़ित तो हो ही रहा था, सो उसने कुन्तीसे अपने आनेकी सूचना कर उसके साथ रति-क्रिया की । कामी पुरुष क्या नहीं करता । नौ महीने वाद जब कुन्तीके पुत्र हुआ तब घरके लोगोंने निन्दाके डरसे उस

बच्चेको रत्न-कवच और कुछ गहने पहराकर एक सन्दूकमें रख दिया । और उसीके साथ उसका परिचय देनेवाला एक पत्र रखकर सन्दूकको यमुनाकी धारमें बहा दिया । लज्जाके भयसे अच्छे पुरुष भी अपने पुत्रको छोड़ देते हैं । नदीकी धारमें पड़कर वह सन्दूक चम्पापुरके राजा सूर्यके हाथ लगी । उस सन्दूकको खोलकर देखा तो सूर्यको उसमें सब श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त और बहुमूल्य गहने पहरेहुए, कोमल कल्पवृक्षके समान एक बालक दिखाई दिया । उसे देख-कर सूर्यराजको बड़ी खुशी हुई । कारण उसके कोई बाल-बच्चा न था । इसके बाद उस बालकको बड़े प्यारके साथ उसने अपनी रानीकी गोदमें रखकर कहा—अबसे यह तुम्हारा पुत्र है । रानीने उस बालकको देखकर और उसके कोमल कानोंको सुहरातेहुए उसका नाम भी कर्ण ही रख दिया । इसप्रकार वह बालक पुण्यसे चम्पापुरके राजाके यहाँ पहुँच-कर दिनोंदिन कल्पवृक्षकी तरह बढ़ने लगा ।

इधर सौर्यपुरमें जब अन्धकवृष्णिको पाण्डुकी यह धूर्तता जान पड़ी तो उसने अपना सिर बहुत ही धुना और आखिर अपनी कुन्ती और मद्री इन दोनों लड़कियोंका पाण्डुके साथ प्राजापत्य नाम व्याह कर दिया । इसके बाद कुन्तीके तीन पुत्र हुए । युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन । ये तीनों ही बड़े गुणवान, शूरवीर और सबको आनन्द देनेवाले हुए । इनकी सुन्दरतादिकका क्या वर्णन किया जाय । ये तीनों भाई मानों

रत्नत्रयके समान थे। पाण्डुकी दूसरी स्त्री मद्रीसे नकुल और सहदेव ये दो पुण्यवान् पुत्र हुए। ये दोनों भाई जैसे स्वर्ग और मोक्षके दो बड़े मार्ग हों। इसप्रकार पाण्डुके पाँच पुत्र पाँच पाण्डवके रूपमें प्रसिद्ध हुए। ये पाँचों ही पाण्डव बड़े भाग्यशाली और सब कार्योंके करनेमें चतुर थे, जैसे पाँच परमेष्ठि हों।

गांधारीके पिताने उसका व्याह धृतराष्ट्रसे किया। गांधारीके चार पुत्र हुए। दुर्योधन, दुःशासन, दुर्द्धर्षण और दुर्मर्षण। इसप्रकार इस कुटुम्बमें सब मिलकर सौ पुत्र होगये। हरिवंशके राजे पुण्यसे इसप्रकार सब सुख-सम्पदा पाकर बड़े आनन्दसे समय बिताने लगे।

एकदिन सुन्दर चारित्रके धारक सुमतिप्रमुनि गन्धमादन नाम पर्वतपर आये। वे जिन-प्रणीत तत्त्व-समुद्रके बढ़ानेवाले कर्म-कलंकरहित, नाना गुणरूप कलाके धारी और दया-कान्तिसे प्रकाशमान उज्ज्वल चन्द्रमा थे। राजा सूरवीर अपने कुटुम्ब-परिवारके साथ उनकी वन्दना करनेको गये। वहाँ बड़ी भक्तिसे उनकी उनने पूजा की, स्तुति की और उनसे सुखका कारण धर्मका उपदेश सुना। वैराग्य होजानेसे उनने बड़े उत्सवके साथ जिनभगवान्का अभिषेक कर अपने बड़े पुत्र अन्धकवृष्णिको राज्य और छोटे पुत्र नरपतिवृष्णिको युवराज्य-पद देकर जिनदीक्षा ग्रहण करली। अब वे मन-वचन-कायकी पवित्रताको बढ़ाते हुए

जिनप्रणीत तप करने लगे। इस बातको बारह वर्ष बीत चुके। सुप्रतिष्ठमुनि घूमते-फिरते फिर एकबार इसी गन्ध-मादन पर्वतपर आगये। एकदिन वे प्रतिमायोग—पद्मासन-से पर्वतपर ध्यान कर रहे थे। उन्हें सुदर्शन नामके देवने देखा। इसकी उन मुनिके साथ कोई शत्रुता होगी, सो उस पापी अधर्मीने इनपर बड़ा ही घोर उपद्रव किया। सुप्रतिष्ठ मुनि सुदर्शनके उपद्रवसे जरा भी न डिगे। उन्होंने बड़ी शान्तिसे सब परिषहोंको सहा। अन्तमें घातियाकर्मोंका नाशकर उन्होंने लोकालोकका प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया। उनके ज्ञानकल्याणकी पूजा करनेको स्वर्गसे देवगण आये। राजा अन्धकवृष्णि भी आया। उनकी पूजा कर उसने पूछा—हे त्रिजगद्गुरो, हे नाथ, बतलाइए कि देवने आपपर ऐसा घोर उपद्रव क्यों किया? सुप्रतिष्ठजिन बोले—"राजन्, इस प्रख्यात भारतवर्षके कलिंग देशमें कांचीपुरी नाम एक नगरी है। उसमें सूरदत्त और सुदत्त नामके दो महाजन रहते थे। वे दोनों अपनी इच्छासे लंकाद्वीपमें धन कमानेको गये। वहाँसे वे बहुत धन कमाकर लौटे। राज-लगान न देना पड़े इस लोभसे उन्होंने गाँव बाहर ही एक छोटेसे वृक्षके नीचे गढ़ा खोदकर सब धन जमीनमें गाड़ दिया और उस वृक्षको पहचानकर वे अपने घर आगये।

एकदिन एक आदमी इस ओर आगया। उसे शराब बनानेके लिए वृक्षके जड़की जरूरत थी। सौभाग्यसे

इसी वृक्षकी जड़ वह खोदने लगा। खोदते हुए उसे वह धन दीख गया। उस सब धनको लेकर वह चलता बना। इसके कुछ दिनों बाद वे दोनों भाई उस धनको निकालनेको आये। उन्होंने खोदकर देखा तो वहाँ धन नहीं। सूरदत्तने सोचा कि 'धन' सुदत्त निकालकर ले उड़ा और सुदत्तने सोचा कि सूरदत्त निकाल ले गया। इसी सन्देहमें दोनों भाई भाईकी लड़ाई ठन गई। यहाँतक कि दोनों ही परस्परमें लड़कर मर मिटे। दोनों क्रोध और लोभ-मय परिणामोंसे मरकर पहले नरक गये—वहाँ उन्होंने बहुत दुःख भोगा। वहाँसे बड़े कष्टसे निकलकर विन्ध्यपर्वतकी गुहामें मेंढ़े हुए। फिर आपसमें लड़कर मरे। अबकी बार गंगा किनारे बैल हुए। पूर्व-जन्मके वैरानुबन्धसे यहाँ भी वे लड़ र मरकर सम्मेदशिखरपर बन्दर हुए। इस पर्वतपर रहते ार इन्हें बड़ी प्यास लगी। शिलापर खुदे गढ़ेमें थोड़ासा पानी भरा था। उसे देखकर ये दोनों ही वहाँ पहुँचे। एकने एकको पानी न पीने दिया। यहाँ इनकी खूब लड़ाई हुई। एकने एकको नखों और दाँतोंसे नोंचा और काटा। उनमें एक तो उसी समय मर गया और दूसरा कण्ठगत-प्राण हो रहा था। इसी समय इस पर्वतपर सुरगुरु और देवगुरु नामके दो आकाशचारी मुनि आगये। उन्होंने दयाकर इस बन्दरको धर्मोपदेश देकर पंचनमस्कारमंत्र सुनाया। बन्दरने उसे ध्यानसे सुना। मरकर सौधर्म-स्वर्गमें

वह चित्राङ्गद नाम देव हुआ। वहाँ उसने बहुत कालतक सुख भोगा।

इस जम्बूद्वीपमें भारतवर्ष प्रसिद्ध देश है। उसके एक प्रान्त सुरम्य देशमें पोदनापुर नाम उत्तम शहर है। उसके राजाका नाम सुस्थित है। उनकी रानी सुलक्षणा है। उसका, वह सूरदत्तका जीव मैं सुप्रतिष्ठ नाम पुत्र हुआ। एक दिन वर्षा समयमें मैं अवसित नाम पर्वतपर गया हुआ था। वहाँ मैंने दो बन्दरोंको लड़ते देखकर मनमें सोचा कि हाय! मैंने भी कभी ऐसी घनघोर लड़ाई लड़ी है। वह लड़ाई कहाँ लड़ी थी, मैं इसे याद ही कर रहा था कि मुझे जातिस्मरणज्ञान होगया—मैंने अपने पहले जन्मका सब हाल जान लिया। उससे मुझे बड़ा वैराग्य हुआ। मैं उसीसमय सुधर्माचार्यके पास आकर मुनि होगया। तप करता हुआ मैं इस पर्वतपर आकर ठहरा। मेरा छोटा भाई जो सुदत्त था वह भव-समुद्रमें खूब भ्रमणकर सिन्धुनदीके किनारे मिथ्यादृष्टि मृगायण नाम तापसीकी स्त्री विशालाके गौतम नाम अज्ञानी पुत्र हुआ। वह पंचाग्नि तप करके ज्यो-तिष्क देवोंमें सुदर्शन नाम देव हुआ। पूर्वजन्मके वैरसे उस अधर्मीने मुझपर उपद्रव किया। उस उपद्रवको शान्त भावोंसे सहकर मैंने शुक्लध्यानके बलसे घातियाकर्मोंका नाशकर केवल-ज्ञान प्राप्त कर लिया।" इत्यादि सुप्रतिष्ठजिन द्वारा अपना हाल सुनकर उस सुदर्शन देवने सब वैर-विरोध छोड़कर

बड़े आदरके साथ जिनधर्म ग्रहण कर लिया । साधुओंकी संगति क्या नहीं करती । यह सब वृत्तान्त सुनकर अन्धक-वृष्णिको वड़ा सन्तोष हुआ । उनने जगत्का हित करनेवाले उन सुप्रतिष्ठ जिनको सिर झुकाकर, हाथ जोड़कर भक्तिके साथ अपना पूर्वजन्मका हाल पूछा । सर्वज्ञ जिन बोले—"इस भारतवर्षकी अयोध्या नाम नगरीमें अनन्तवीर्य नाम एक महान् राजा होगये हैं । वहाँ एक सुरेन्द्रदत्त नाम बड़ा धनी सेठ रहता था । पूर्वपुण्यसे उसे सब सम्पत्ति प्राप्त थी । वह बड़ा दानी और भोगी था । जिनपूजासे उसे बड़ा प्रेम था । वह उपवास, व्रत आदि धर्म-कर्ममें बड़ा तत्पर था । उसे प्रतिदिन दस मोहरोंसे जिनपूजा करनेकी प्रतिज्ञा थी । अष्टमीके दिन वह इनसे दुगुनी मोहरोंसे पूजा करता, चतुर्दशीको चारगुनीसे और अमावस्या तथा पर्वके दिन आठ गुनीसे । उसके चन्द्रमाके समान निर्मल दानादि गुणोंका कहाँलों वर्णन किया जाय कि जिन्हें देखकर अन्य जन धर्ममें दृढ़ होते थे ।

एकवार सुरेन्द्रदत्तकी इच्छा और भी धन कमानेकी हुई । उसने समुद्र द्वारा विदेश जाना स्थिर किया । इसके पास बारह वर्षोंका कमाया जितना कुछ धन था, उसे वह अपने मित्र रुद्रदत्त-को सौंपकर बोला—प्रियमित्र, यह जो धन मैं तुम्हें सौंपे जाता हूँ, इससे तुम मेरी तरह सदा जिनपूजा करते रहना । मेरे मौजूद न रहनेकी चिन्ता न करना । इसप्रकार रुद्रदत्तको समझाकर

सुरेन्द्रदत्त मनमें जिनभगवानका ध्यान करता हुआ विदेशके लिए रवाना होगया। न केवल सुरेन्द्रदत्त ही विदेश गया किन्तु उसके साथ ही उसके मित्र रुद्रदत्तका धर्म भी उसके मनरूपी घरसे बाहर होगया।

सुरेन्द्रदत्तके विदेश जाते ही रुद्रदत्तकी बन गई। उसने वेश्या-सेवन, जूआ खेलने आदिमें सुरेन्द्रदत्तका सब धन बर्बाद कर दिया। जब उसके पास कुछ पैसा न रहा तब वह अयोध्यामें लोगोंके यहाँ चोरी करने लगा। एकदिन रातमें उसे चोरी करतेहुए देखकर श्येन नामके कोतवालने उससे कहा—अरे ओ दुष्ट! तू इस शहरसे शीघ्र ही निकल जा। तू ब्राह्मण है, इसलिए मैं तुझे चोर और पापी होनेपर भी छोड़े देता हूँ। आजसे यदि मैंने फिर कभी तुझे देख लिया तो समझ फौरन ही मरवा डाला जायगा। कोतवालके इसप्रकार डरा देनेसे वह दुरात्मा रुद्रदत्त अयोध्यासे निकल कर किसी भीलकी पल्लीमें पहुँचा। वहाँ वह उस पल्लीके स्वामीके यहाँ नौकर होगया। एकदिन वह कुछ भीलोंको साथ लेकर अयोध्यामें आया और कुछ गौओंको चुराकर चला। श्येन कोतवालने उसे जाते हुए पकड़ लिया और उसी समय मरवा डाला। मरकर वह सातवें नरक गया। वहाँ उसने छेदना, मारना, काटना आदि बड़े बड़े कष्टोंको सहा। वहाँसे निकलकर वह बड़ा मच्छ हुआ। फिर मरकर छठे नरकमें गया। वहाँसे निकलकर सिंह हुआ। फिर पाँचवें नरक

गया। इसीप्रकार क्रमसे वह दृष्टिविष जातिका सर्प होकर चौथे नरकमें, सियाल होकर तीसरे नरकमें, गरुड़ होकर दूसरे नरकमें और फिर भेड़िया होकर पहले नरकमें गया। इसप्रकार उस ब्राह्मणने पापके उदयसे सातों नरकों और स्थावर-गतिमें अनेक असह्य कष्टोंको सहा। यह जानकर किसी समझदारको जिनपूजा, जिनयात्रादिकमें कभी अन्तराय—विघ्न न करना चाहिए।

इसी भरतक्षेत्रके कुरुजांगल देशमें गजपुर नाम शहर है। उसके राजाका नाम धनंजय है। वहाँ एक कपिष्ठल नामका ब्राह्मण रहता है। उसकी स्त्रीका नाम अनुंधरी है। रुद्रदत्त ब्राह्मणका जीव संसारमें खूब भ्रमण कर अन्तमें इस अनुंधरी ब्राह्मणीके गौतम नाम पुत्र हुआ। इस पापीके जन्म लेते ही कपिष्ठलका सारा कुल नष्ट होगया। बचा केवल गौतम। वह भी महा दरिद्री होगया। उसके पास एक कौड़ी भी न रही। भूख-प्यासका मारा वह हाथमें खप्पर लेकर घरघर भीख माँगने लगा। मारे भूखके उससे चला तक न जाता था। वह इधर उधर गिरता-पड़ता शहरमें भीख माँगता फिरता थां। पहरनेको उसके पास था पुराना और फटा-टूटा कपड़ेका टुकड़ा। उसमें हजारों लीखें और जूएँ पड़ गईं थीं। जैसे वह पापोंका स्वरूप ही बतला रहा हो। मिथ्यादृष्टियोंके शास्त्रोंकी तरह वह साररहित हो रहा था—सारा सड़-गल गया था। बालकगण उसे लकड़ी, पत्थर आदिसे मारते-

पीटते और खूब तंग करते थे। उससे वह चिल्लाने और भागने लगता था। पाँवोंमें जोर न होनेसे वह भागता भागता ठोकरें खाकर गिर पड़ता और रोने लगता था। अपने किये पापोंकी सजा भोगता हुआ वह देओ; देओ, कहकर चिल्लाता फिरता था। शरीर उसका सारा मैला हो रहा था—उसे देखकर घृणा आती थी। मानों इस बातको वह सूचित करता था कि पापका ऐसा स्वरूप है। इत्यादि अनेक प्रकारके दुःखोंको उठाता हुआ वह शहरमें फिरता रहता था।

एकदिन समुद्रसेन नाम मुनि आहारके लिए जा रहे थे। काललब्धिके योगसे उन महामुनिको गौतमने देखा। उन्हें नंगे देखकर इसने मन ही मन सोचा—मुझसे तो ये और भी अधिक दरिद्री जान पड़ते हैं। तब देखूँ कि ये अपना पेट कैसे भरते हैं? महामुनिकी दशा देखकर इसे बड़ा आश्चर्य होने लगा। इसप्रकार विचार करता हुआ वह भी उन महामुनिके पीछे पीछे चल दिया। मुनिको थोड़ी दूर जानेपर एक वैश्रवण नाम श्रावकने नवधा भक्तिसहित उन्हें शुद्ध आहार कराया और गौतम ब्राह्मणको भी मुनिके पास रहनेवाला समझ आहार दिया। गौतम ब्राह्मणने तो कभी जन्मभरमें भी ऐसा भोजन न किया था, सो वह इस भोजनसे बड़ा ही सन्तुष्ट हुआ। तब अपने मुनि होनेका विचार कर वह मुनिके आश्रममें आया और मुनिराजको नमस्कार कर बोला—महाराज, आप बड़े दयावान् हैं। आपकी संगतिसे आज मेरा भी भाग्य

चमक गया। आप जल्दीसे मुझे भी अपने समान कर दीजिए। समुद्रसेन गुरुने उसके मनकी दृढ़ता देखकर सोचा कि यह भव्य है और निश्चयसे कुछ दिनोंमें मोक्ष जायगा। इसलिए उन्होंने उसे देवता जिसे पूजते हैं, वह जिन-दीक्षा देकर साधु वना लिया। इसके वाद उन्होंने गौतमको पढ़ाकर थोड़े ही समयमें जिनागमरूप समुद्रके पार पहुँचा दिया। सत्य है गुरु ही संसारसे तारनेवाले होते हैं। गौतमने भी गुरुभक्तिके प्रभावसे थोड़े ही समयमें सव शास्त्रोंको जान लिया। एक ही वर्षके भीतर उसने सातों ऋद्धियाँ भी प्राप्त करलीं। वह फिर श्रीगौतम इस नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुआ। धीर धीरे वह अपने गुरुके पदको प्राप्त होकर संसारका हितकर्त्ता हुआ। संसारमें गुरुभक्तिसे मोक्ष भी प्राप्त हो सकता है। और धन-दौलत सरीखी वस्तुका प्राप्त होना तो उसके सामने किसी गिनतीमें नहीं। इसके वाद जिनप्रणीत तत्वके जाननेवाले समुद्रसेन गुरु तो संन्यास धारण कर आत्मध्यानमें लीन होगये और अन्तमें समाधिसे प्राणोंको छोड़कर छठे ग्रैवेयकके सुविशाल नाम विमानमें अनेक गुणोंके धारी और सुख भोगनेवाले अहमिन्द्र देव हुए। उनके वाद वे गौतममुनि भी आराधनाओंका ध्यान कर और संन्यासपूर्वक प्राणोंको छोड़कर छठे गैवेयकमें अहमिन्द्र देव हुए। वहाँ उनने अट्ठाईस सागर तक खूब सुखोंको भोगा। वह रुद्रदत्त ब्राह्मणका जीव ही तुम अन्धकवृष्णि नाम राजा

हुए हो ।" इसप्रकार सुप्रतिष्ठजिन द्वारा विस्तारसहित अपने पूर्वभवोंका हाल सुनकर अन्धकवृष्णि बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उन केवलज्ञानी जिनको फिर नमस्कार कर अबकी बार अपने पुत्रोंके पूर्व-जन्मका हाल पूछा । अकारण जगद्बन्धु सुप्रतिष्ठ जिनने सुख देनेवाली सर्वभाषामय वाणी द्वारा यों कहना आरंभ किया—

"इस जम्बूद्वीपके मंगल नाम देशमें भद्रिल नाम एक पुर है। उसके राजाका नाम मेघरथ था। उनकी रानीका नाम देवी था। उनके एक पुत्र था। उसका नाम था दृढ़रथ। पुण्यसे उसे युवराज्य पद मिल चुका था। यहीं एक धनदत्त नाम सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम नन्दयशा था। उसके नौ पुत्र हुए। उनके नाम थे—धनदेव, धनपाल, जिनदेव, जिनपाल, अर्हद्दत्त, अर्हद्दास, जिनदत्त, प्रियमित्र और धर्मरुचि। और दो लड़कियाँ थीं। उनके नाम थे—प्रियदर्शना और ज्येष्ठा।

एक दिन सुदर्शन नाम बागमें मन्दिरस्थविर नाम मुनि आये। ये समाचार धर्मरथकी उपमा धारण करनेवाले मेघरथ और धनदत्तके पास पहुँचे। वे दोनों अपने पुत्रादि परिजनसहित मुनिवन्दनाके लिए गये। मुनिको उन्होंने बड़ी भक्तिके साथ नमस्कार किया और उनसे जिनप्रणीत धर्मका उपदेश सुना। इसके बाद मेघरथने अपने दृढ़रथ नाम पुत्रको राज्य देकर संसार-भ्रमणकी नाश करनेवाली

जिनदीक्षा ग्रहण करली । मेघरथको मुनि होते देखकर धनदत्त सेठ भी अपने नवों पुत्रोंके साथ मुनि होगया । अपने पतिका दीक्षा लेना देखकर धनदत्तकी स्त्री नंदयशा भी अपनी दोनों पुत्रियोंके साथ सुदर्शना नाम आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर साध्वी बन गई । इसके बाद मन्दिरस्थविर मुनि मेघरथमुनि और धनदत्तमुनि ये तीनों घूमते-फिरते बनारस आये । वहाँ इन्होंने घातिया कर्मोंका शुक्लध्यान द्वारा नाश-कर केवलज्ञान प्राप्त किया । इन्द्रादिक देवता जिनकी पूजा करते हैं ऐसे ये तीनों मुनिराज धर्मोपदेश करते हुए और भव्यजनोंको प्रबोध देते हुए बनारससे चलकर राजगृहके जंगलमें पहुँचे । वहाँ एक विशाल और पवित्र शिलापर विराजमान होकर इन्होनें जन्म-जरा-मरणरहित अक्षय मोक्ष प्राप्त किया । कुछ दिनोंबाद इसी सिलापर उन धनदेव आदि नवों मुनियोंने भी आकर संन्यास धारण किया । उन्हें देखकर उनकी माता नन्दयशाका; जो कि अपनी दोनों पुत्रियोंके साथ इधर ही आ निकली थी, हृदय पुत्र-प्रेमसे भर आया । वह बोली—ये सब मेरे ही गुणवान् पुत्र हैं । मैं चाहती हूँ कि अन्य जन्ममें भी ये मेरे ही पुत्र हों । और जो ये दो मेरी प्रिय पुत्रियाँ हैं वे भी अन्य जन्ममें मेरी ही पुत्री हों । यदि जिनप्रणीत तपका कुछ माहात्म्य है तो उसका फल मैं यही चाहती हूँ । नन्दयशाने इसप्रकार निदान कर स्वयं भी संन्यास लेलिया । समभा-

वोंसे मृत्यु प्राप्तकर वे सब आनतस्वर्गके शातंकर नाम वि-मानमें उत्पन्न हुए। वहाँ उन्होंने बीस सागरपर्यंत सुखों-को भोगा। नन्दयशाका जीव वहाँसे आकर यह तुम्हारी प्रिय गृहिणी सुन्दरी सुभद्रा हुई और वे धनदेव आदि नवों भाई भी स्वर्गसे आकर पुण्यसे तुम्हारे समुद्रविजयादिक पुत्र हुए हैं। और जो नन्दयशाकी प्रियदर्शना और ज्येष्ठा नामकी दो लड़कियाँ थीं वे सारे संसारकी सुन्दरता जिनमें इकट्ठी करदी गई हैं, ऐसी कुन्ती और मद्री तुम्हारी पुत्रियाँ हुई हैं।"

इसके वाद अन्धकवृष्णिने सुप्रतिष्ठजिनको फिर नमस्कार कर वसुदेवके पूर्व-जन्मका हाल पूछा। सुप्रतिष्ठजिन गंभीर वाणीसे वोले। जिनका भव्य-जनपर अनुग्रह करनेका स्वभाव ही है।

"कुरुदेशमें पलाशकूट नाम नगर था। उसमें सोमशर्मा नाम ब्राह्मण रहता था। पापसे वह दरिद्री था। उसके नन्दी नाम पुत्र हुआ। पूर्वकर्मोंके उदयसे वह भी दरिद्री, कुरूप, दुखी हुआ। कहीं उसका आव-आदर नहीं—पासतक उसे कोई वैठने न देता था। पापी लोगोंको सम्पदा मिल भी कैसे सकती है। इसलिए भव्य-जनोंको पाप छोड़कर पुण्यरूपी धन कमाना चाहिए। नन्दीके मामाका नाम देव-शर्मा था। उसके सात लड़कियाँ थीं। वे सभी खूबसूरत और गुणवान् थीं। नन्दीने उन लड़कियोंके साथ व्याह की इच्छासे मामाकी बड़ी सेवा की। पर देवशर्माने उसे

दरिद्री होनेसे अपनी एक भी लड़की न देकर उन सबको दूसरोंके साथ व्याह दिया।

एकदिन नन्दी नटका तमाशा देखनेको कहीं गया हुआ था। तमाशगीरोंकी बहुत भीड़ होनेसे वह गिर पड़ा। लोग उसे इधर उधर लुढ़कानें लगे और हँसने लगे। वहाँ उसे बहुत अपमान सहना पड़ा। अपने दुर्भाग्यको कोसता हुआ मरनेकी इच्छासे पर्वतके शिखरपर चढ़कर उसने गिरना चाहा। पर डरके मारे उसकी गिर पड़नेकी हिम्मत न हुई। वह बार बार चढ़ने-उतरने लगा। पर्वतकी तलहटीमें एक पवित्र स्थानपर शंख और निर्नामिक नामके दो मुनि अपने गुरुके साथ बैठे हुए थे। उन मुनियोंने नन्दीकी चढ़ा-उतरी करती छायाको देखकर गुरुसे पूछा—महाराज, यह छाया किसकी है? तीन ज्ञानधारी द्रुमषेणमुनिने अपने शिष्योंसे कहा—भाई, जो तीसरे जन्ममें तुम्हारा पिता होने-वाला है, यह छाया उसीकी है। उन दयावान् शिष्योंने तब नन्दीके पास जाकर कहा—भाई, तुम इस आत्महत्या रूप पापकर्मकी क्यों इच्छा कर रहे हो? सुनकर नन्दी बोला—मैं दुर्भाग्यसे दरिद्री हुआ, इसलिए मेरे मामाने अपनी लड़-कियोंका व्याह मुझसे न कर दूसरेसे कर दिया। वह अपमान मुझसे न सहा गया। इसके सिवा मैं दरिद्री तब ऐसी दशामें मैं जीकर ही क्या करूँगा। सुनकर उन मुनियोंने नन्दीसे इसप्रकार निष्पन्नके कारण इस पापकर्मको छोड़दे। इससे

तुझे अनन्तकालतक संसार-समुद्रमें डूब जाना पड़ेगा । यदि तेरी इच्छा धन-दौलत और मान-मर्यादाके ही प्राप्त करनेकी है तो तू जिनप्रणीत तप धारण कर । उससे तेरे सब कार्योंकी सिद्धि होगी । वह तप स्वर्ग-मोक्षका देने-वाला है । इसप्रकार नन्दीको समझा बुझाकर उन्होंने उसे तप ग्रहण करवा दिया । सत्य है तप सबका हित करनेवाला है । इसके बाद नन्दी मुनि खूब तप करके अन्तमें महाशुक्र नाम स्वर्गमें देव हुए । वहाँ उन्होंने सोलह सागरपर्यन्त मनचाहा सुख भोगा । वहाँसे आकर यह तुम्हारा वसुदेव नाम सुन्दर, भाग्यशाली, लब्धप्रतिष्ठित, सम्पदावान् शूरवीर-शिरोमणि, और सब गुणोंकी खान पुत्र हुआ है । तीन खण्डके बड़े बड़े राजे और महाराजे जिनकी सेवा करेंगे ऐसे नारायण और प्रति नारायणका यही महा-पुरुष जनक होगा ।” इसप्रकार सुप्रतिष्ठजिन द्वारा सबके पूर्व-जन्मका हाल सुनकर अन्धकवृष्णिको बड़ा वैराग्य होगया । मोक्ष प्राप्तिके लिए वे उत्सुक हो उठे । इसके बाद उन्होंने अपने गुणवान् बड़े पुत्र समुद्रविजयको महाभिषेक पूर्वक राज्यभार देदिया और आप दान-पूजादिक धर्मकार्योंको करके सब धन-दौलतको घासके तिनकेके समान छोड़कर बहुतसे राजोंके साथ सुप्रतिष्ठजिनके पास सब सिद्धियोंकी देनेवाली जिन-दीक्षा ग्रहण कर गये । इसके बाद रत्नत्रय विराजमान अन्धकवृष्णि मुनिने खूब पवित्र तप किया । अन्तमें संन्यास

दशामें आत्मध्यान कर शुक्लध्यान द्वारा उन शूरवीर मुनिने घातिया-कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। इस-प्रकार सुरासुर-पूज्य होकर अत्यन्त शुद्धात्मा अन्धकवृष्णि जिनने बाकीके अघाती कर्मोंको भी जड़मूलसे उखाड़ कर-जन्म-जरा-मरण-रहित श्रेष्ठ मोक्ष-गतिको प्राप्त किया। वे सिद्ध, बुध, निरंजन अन्धकवृष्णिजिन मुझे और भव्य-जनोंको शाश्वती लक्ष्मी—मोक्ष दें।

सद्धर्मरूपी अमृतके प्रवाहसे पापोंको बहाकर जिन्होंने दूर फैंक दिया, जो संसार-सागरसे जनोंको पार करनेमें सदा तत्पर और श्रेष्ठ ज्ञानरूप कान्तिके धारक सूरज हैं, लोक और अलोकके जाननेवाले हैं और श्रेष्ठ सुख-सम्पदाके देने-वाले हैं ऐसे श्रीनेमिजिन सत्पुरुषोंको मनचाही वस्तु दो।

इति तृतीयः सर्गः।

भेदसे चारित्र तेरा प्रकारका है। यह रत्नत्रय संसारमें बड़ा ही पूज्य है। इसके फलसे इन्द्र, चक्रवर्त्ती आदिकी सम्पत्ति और क्रमसे केवलज्ञान प्राप्त होता है। और जो मुनिलोग अपने आत्माके ही सच्चे श्रद्धान, सच्चे ज्ञान और अपने आपमें लीन होनेरूप चारित्रको प्राप्त करते हैं वह निश्चय रत्नत्रय है और मोक्षका देनेवाला है। इसप्रकार धर्मका स्वरूप सुनकर राजा संसार-शरीर-भोगादिसे अत्यन्त उदास होगये। अपने पुत्र अपराजितको राज्य देकर अन्य पाँचसौ राजोंके साथ उन्होंने जिनदीक्षा लेली। इधर कामजयी अपराजित कुमारने भी सम्यक्त्व पूर्वक पाँच अणुव्रत ग्रहण कर तोरणादिसे सजाये गये अपने पुरमें बड़े वैभवके साथ प्रवेश किया। जैसे इन्द्र स्वर्गमें प्रवेश करता है। इसके बाद व्रती, पवित्र और बड़े धर्मात्मा राजकुमारने अपना सब राज-काज मंत्रियोंको सौंपकर नानाप्रकारके सुख भोगने, पात्रोंको दान देने, जिनभगवान्‌की पूजा करने और शास्त्रचर्चा करने आदिमें अपने मनको अधिक लगाया। इसतरह कुछ समय बाद एक दिन अपराजितको समाचार मिला कि भगवान् विमलवाहनके साथ अपने पिता अर्हद्दास भी गन्धमादन नाम पर्वत परसे मोक्ष चले गये। यह सुनकर अपराजित बड़ा दुखी हुआ। उसने तब प्रतिज्ञा करली कि मैं पिताजीके दर्शन किये विना भोजन नहीं करूँगा। इन्द्रने तब फिर कुबेरको विमल-वाहन और अर्हद्दास जिनके समवशरण रचनेकी आज्ञा दी।

है। आप संसाररूपी समुद्रके पारको प्राप्त हो चुके हैं और इसी लिए भव्यपुरुषोंको आप तारनेवाले हैं। आप सात तत्वरूपी रत्नोंके स्थान पर्वत हैं। (पर्वतसे रत्न उत्पन्न होते हैं, ऐसा प्रसिद्ध है।) देवतोंके इन्द्र चक्रवर्ती आदि आपको पूजते हैं। आप निस्पृह होकर जगत्का हित करते हैं। हे नाथ, आप तीनलोकके पिता समान हैं, मंगलोंके मंगल हैं, लोकमें सबसे उत्तम हैं और भव्यजनोंके एकमात्र शरण हैं। प्रभो, आपके चरणोंकी सेवासे जो सुख प्राप्त होता है वह सुख और सैकड़ों कष्टोंके सहने पर भी नहीं प्राप्त होता—स्वप्नमें भी वह सुख दुर्लभ है। नाथ, आपके लिए निर्वाण-गमनमें रत्नत्रय एक सुन्दर वाहन—सवारी हुई। इसलिए आपका विमल-वाहन नाम वास्तवमें सार्थक है। इत्यादि भगवान्की स्तुति कर और अन्य मुनियोंको नमस्कार कर राजाने प्रसन्न मनसे धर्मका स्वरूप पूछा। जिनभगवान्ने तब यों कहना आरंभ किया—

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इसप्रकार रत्नत्रयको धर्म कहते हैं। वह रत्नत्रय व्यवहार और निश्चय इन भेदोंसे दो प्रकारका है। जो व्यवहार रत्नत्रय कहा गया, उसमें उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन उसे कहा है, जो निःशंकितादि आठ अंगसहित हो। जिससे पदार्थोंके विशेष आकारादि जाने जायँ वह ज्ञान है। उस ज्ञानको बुद्धिके पारको पहुँचेहुए लोगोंने आठ प्रकारका कहा है। अहिंसा आदि पाँच महाव्रत, गुप्ति और समितिके

चौथा अध्याय।

वसुदेवका देशत्याग और स्त्री-लाभसहित आगमन।

हरिवंश-शिरोमणि सौरीपुरके राजा समुद्रविजय अपने प्रिय भाइयोंके साथ सुखपूर्वक राज्य करने लगे। काम, क्रोध, मद, मान आदि छहों शत्रुओंपर उन्होंने विजय लाभ कर लिया था। तीन राज-शक्तियोंसे वे युक्त थे। कला-सहित चंद्रमा जैसा आकाशमण्डलमें शोभता है समुद्रविजय राज-विद्याओंसे उसी तरह शोभाको पाते थे। उनके राज्यमें प्रजा वर्णाश्रमधर्मकी पालन करनेवाली थी। अपने अपने धर्म-कर्मपर वह निर्विघ्नताके साथ चलती थी। वह बड़ी सुखी थी। इसप्रकार जिनप्रणीत धर्म-कर्मको नित्य करते हुए समुद्रविजय आदिका समय बड़े सुखसे बीतता था।

अन्धकवृष्णिका दूसरा पुत्र जो वसुदेव था वह बीसवाँ कामदेव था। बड़ा खूबसूरत और भाग्यशाली था। वह मस्त हाथीपर बैठकर जब शहरमें घूमनेको निकलता तब बड़ा सुन्दर देख पड़ता था। उसपर चँवर ढुरा करते थे। जिसमें मोतियोंकी माला लटक रही है वह छत्र उसके सिरपर रहता था। उसके चारों ओर धुजाओंकी श्रेणी बड़ी शोभा देती थी। चारों प्रकारकी सेना उसके आगे पीछे चलती थी।

सुन्दर गहने और वस्त्रोंसे भूषित वह बड़ा ही सुन्दर देख पड़ता था । रास्तेमें याचकजनोंको खुश करता हुआ वह चलते हुए कल्पवृक्षके समान जान पड़ता था । भाट लोग उसके चन्द्रमा समान निर्मल यशका गान करते जाते थे और उसे वह सुनता था । प्रतापसे उसने सूर्यमण्डलको जीत लिया था । कान्तिसे वह चन्द्रमाके समान निर्मल और कुवलय–पृथ्वीको (चन्द्रपक्षमें कोकावेलीको) प्रसन्न करनेवाला (चन्द्र-पक्षमें प्रफुल्लित करनेवाला) था । उसके आगे बजते हुए नगाड़े, ढोल, झाँझ आदि वाजोंके शब्दोंसे दिशायें बहरी हो जाती थीं–कुछ सुनाई न पड़ता था । कपूर, केसर आदि सुगन्धित वस्तुओंके जलसे सींची जमीन सुगन्धसे महक उठती थी । खिले हुए फूलोंके हारोंसे वह बड़ी शोभा प्राप्त करता था । उसके आस-पास जो और और राजकुमार रहते थे उनसे वह देवकुमारसा जान पड़ता था । उसे देखकर लोगोंको बड़ा प्रेम होता था । स्त्रियोंका हृदय उसपर मोहित हो जाता था । पुण्यवान् जनोंको देखकर किसे प्रेम नहीं होता । इसप्रकार वह कौतूहलसे जबतक शहरकी चीजोंको देखता हुआ घूमा करता था उससमय कामसे उत्सुक की गई स्त्रियाँ उसकी सुन्दरतापर मुग्ध होकर उसे देखनेको बड़ी निर्भयताके साथ दौड़ी आती थीं । जैसे नदियाँ समुद्रके पास जाती हैं । दौड़ती हुई कई स्त्रियाँ पग-पगपर गिर पड़ती थीं । जैसे मिथ्यादृष्टियोंकी युक्तिहीन कृति–शास्त्र अपने पक्षका सम-

थैन न कर सकनेके कारण गिर जाते हैं—कम जोर हो जाते हैं। कितनी मस्त स्त्रियाँ उसे देखनेको घर बाहर होकर इतनी जल्दी चलीं मानों दोनों किनारोंको तोड़कर नदी चली। दौड़ती हुई कितनी स्त्रियोंके वस्त्रतक गिर पड़े, उनकी उन्हें खवर भी न हुई। मानों वे ज्वरसे इतनी कमजोर हो गई कि अपने वस्त्रोंको भी न सम्हाल सकीं। कितनी स्त्रियाँ अपने घरका सव काम-काज छोड़कर ही उसे देखनेको निकल भागीं। मूर्खोंकी वुद्धि पर वस्तुपर बड़ी मोहित हो जाती है। कई स्त्रियाँ उसके देखनेकी जल्दीके मारे हाथोंमें पहरनेके गहनेको पाँवोंमें और पाँवोंमें पहरनेके हाथोंमें पहरकर ही चलदी। कोई स्त्री अपने वच्चेको छोड़कर घरमें पाले हुए वन्दरके बच्चेको ही गोदमें लेकर निकल भागी। काम मूर्खोंकी क्या हालत नहीं कर देता। कोई कामातुर स्त्री काजलको ललाटपर ही लगाकर अपनी मूर्खताको प्रगट करती हुई दौड़ी गई। कोई उत्सुक स्त्री केसर-चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओंको अपने शरीरपर न लगाकर उनके एवजमें कीचड़हीको शरीरपर पोतकर चलदी। कुछ स्त्रियाँ इधर उधर दौड़ रही थीं, कुछ वसुदेवको मनभर देख रही थीं, कोई उसपर फूल वरसा रही थीं और कोई अहा क्या सुन्दरता, कैसा मधुर-मनोहर यौवन! इत्यादि वासुदेवको देख देखकर बातें कह रही थीं। जिसके रूपकी बड़े बड़े सत्पुरुष भी तारीफ करें उस चित्तचोरका रूप देखकर बेचारी स्त्रियाँ मोहित हो जाँय तो

क्या आश्चर्य ? अन्य साधारण जनकी सुन्दरता भी जब मनमें मोह उत्पन्न कर देती है तब एक कामदेवकी–सुन्दरताके अवतारकी रूप-मधुरिमा क्या नहीं करेगी ? अपनी स्त्रियोंकी ऐसी चेष्टायें देखकर पुरजन बड़े दुखी हुए। उन्होंने जाकर राजासे प्रार्थना की–महाराज, आप प्रजापालक हैं। कृपाकर हमारी प्रार्थना सुनिए। अपने वसुदेवजी बड़े खूबसूरत हैं–कामदेव हैं। इसलिए जब वे शहरमें घूमनेको निकलते हैं तो हमारे गृहोंकी स्त्रियाँ उनपर मोहित हो जाती हैं। उनका मन बड़ा चंचल हो जाता है। वे घरका सब काम-धंदा छोड़ कर कुमारकी सुन्दरता देखनेको दौड़ी आती हैं। ऐसी दशामें हमारे खान-पान, घर-गिरिस्तीके कामधन्दोंकी बड़ी अव्य-वस्था हो चली है। प्रभो, इससे हम लोग बड़े दुखी होगये हैं। आप इसका कोई उपाय कीजिए। 'आगेसे ऐसा न होगा' इसप्रकार उन लोगोंको सन्तुष्ट कर समुद्रविजयने उन्हें लौटा दिया।

समुद्रविजयका वसुदेवपर अत्यन्त प्यार था। उन्होंने सोचा-यदि मैं इसे स्पष्ट कहकर रोकता हूँ तो यह मनमें बड़ा दुखी होगा। तब उन्होंने वसुदेवको एकान्तमें बुलाकर समझाया–भैया, तुम जो वक्त बे-वक्त शहरमें घूमा करते हो और गरमी-सरदीका कुछ विचार नहीं करते, देखो, उससे तुम्हारा फूलसा कोमल शरीर कैसा कुम्हला गया है ? इसलिए आजसे तुम इस तरह घूमने न जाया करो। और यदि तुम

घूमनेको जाना ही चाहो तो अपने जाने कहाँ निकल गये ।
बाग है ? उसमें नाना तरहके फल-गया । उन्होंने उसी समय
नेको सरोवर, बावड़ियाँ हैं, अच्छे शहर, जंगल, नदी, वन
रत्नोंकी पच्चीकारीका काम हेरको ढूँढ़ा, पर कहीं उसका
सामन्त-राजकुमारों और मंत्रिकुमाभयंकर मसानकी ओर गये
करो और वहाँ मनमाना खेल-कूदा सहित जलते देखा और
देवने समुद्रविजयकी बातको मान देखा । इसके बाद उनकी नजर
जनका आज्ञाकारी नहीं होता । पर पड़ी । वे उस घोड़ेको
ओंसे युक्त और उत्तम उत्तम व। राजासे सब हाल कहकर
पासवाले बागमें ही क्रीड़ा करने‌आ । पत्र पढ़ा गया । उसमें
इसतरह कुछ दिन बीत गः चिरकाल तक बढ़ें, आपकी
नाम एक नौकर था । वह बड़ा भौजाई शिवदेवी सपरिवार
चारी था । उसने एकदिन मौक कारण वसुदेवने अबसे यम-
कुमार, जानते हो राजाने तुम्हें म समझा । इसलिए वह आपसे
बन्दकर बाहर जानेसे रोक दिता है ।
यह स्वभाव ही होता है कि (हतभाग्य—वसुदेव ।) "
समान दुर्जन बतलाते हैं । व वगैरहको बड़ा शोक हुआ । वे सब
साथ राजाने ऐसा क्यों किया मुर्देको गहने सहित खाक हुआ
की सुन्दरताको सब आँखें वं, शोक करने लगे । प्यारे कुमार,
है कि जब आप घूमनेको ायी कर्म करडाला । तेरे बिना आज
याँ विह्वल होकर और घरसे चल दिया । पानी न बरसने
देखनेके लिए दौड़ आती ला जाता है । शिवदेवीने भी

क्या आश्चर्य ? अन्य साऽस विड़म्बनासे दुखी होकर महा-
मोह उत्पन्न कर देती ा की । राजाने तब इस उपायसे
अवतारकी रूप-मधुरिमा : दिया । नौकरका कहना कहाँतक
ऐसी चेष्टायें देखकर पुरज करनेको वसुदेव राजमन्दिरसे
राजासे प्रार्थना की—महारर पहरा देनेवाले सिपाहीने उसे
हमारी प्रार्थना सुनिए । नने आपका बाहर जाना-आना
कामदेव हैं । इसलिए आप बागमें ही घूमिए—फिरिए ।
तो हमारे गृहोंकी स्त्रियाँ दुःख हुआ । इस दुःखके मारे
मन बड़ा चंचल हो जाता न कह-सुनकर साहस कर राज-
कर कुमारकी सुन्दरता देखकर सौरीपुरको छोड़कर छुपा
हमारे खान-पान, घर-गिचा । वहाँ राक्षस लोग इधर उधर
वस्था हो चली है । प्रभो, ार चढ़े हुए थे । कुत्ते और सियाल
आप इसका कोई उपाय दे हुए थे । जलती हुई चिता
इसप्रकार उन लोगोंको सा । वहाँ एक धग-धग जलती
लौटा दिया । यने सब भूषणोंको उसमें डाल-
समुद्रविजयका वसुदेवपर अना था—"अपकीर्तिके भयसे
यदि मैं इसे स्पष्ट कहकर रोक चला गया ।" इस पत्रको
होगा । तब उन्होंने वसुदेवको वहीं छोड़कर अग्निकी मद-
भैया, तुम जो वक्त बे-वक्त श
सरदीका कुछ विचार नहीं करर आये । उधर सौरीपुरका
फूलसा कोमल शरीर कैसा न दिखाई दिया । द्वार-
आजसे तुम इस तरह घूमने महाराज, आज रातको राज-

कुमार राजमहलसे एकाएक न जाने कहाँ निकल गये। सुनकर राजाका हृदय काँप गया । उन्होंने उसी समय नौकरोंको चारों ओर दौड़ाये। शहर, जंगल, नदी, वन आदि सब जगह उन्होंने कुमारको ढूँढ़ा, पर कहीं उसका पता न चला । जो लोग उस भयंकर मसानकी ओर गये थे उन्होंने एक मुर्देको आभूषण सहित जलते देखा और वहीं वसुदेवके घोड़ेको घूमते हुए देखा। इसके वाद उनकी नजर घोड़ेके गलेमें वँधे हुए कागजपर पड़ी। वे उस घोड़ेको पकड़कर राजाके पास लेगये । राजासे सब हाल कहकर वह पत्र उन्होंने राजाको दिया । पत्र पढ़ा गया। उसमें लिखा था–" महाराज, आप चिरकाल तक वर्द्धे, आपकी प्रजा खूब खुश रहे और भौजाई शिवदेवी सपरिवार आनन्द भोगे। प्यारा न होनेके कारण वसुदेवने अवसे यम-मन्दिरकी शरण लेना ही उत्तम समझा । इसलिए वह आपसे सदाके लिए विदा ग्रहण करता है।

(हतभाग्य–वसुदेव ।)"

पत्र सुनकर समुद्रविजय वगैरहको बड़ा शोक हुआ। वे सब मिलकर मसानमें गये। उस मुर्देको गहने सहित खाक हुआ देखकर सब रोने-पीटने लगे, शोक करने लगे। प्यारे कुमार, हाय! तूने यह क्या दुःखदायी कर्म करडाला! तेरे विना आज हमारा सब उत्साह दूरहीसे चल दिया । पानी न वरसने पर जैसे प्रजाका उत्साह चला जाता है । शिवदेवीने भी

बड़ा ही दुःख किया । कुमार, तुम्हारे विना हमारा सब महल सूना होगया—उसकी वह शोभा ही न रही । जैसे चाँद विना रातकी, आँख विना मुँहकी और कमल विना सरोवरकी शोभा नहीं रहती । इसप्रकार शोकाकुल होकर सबने बड़ा ही रुदन किया । इससमय किसी निमित्तज्ञानीने उन लोगोंसे कहा—प्रभो, आप व्यर्थ शोक न कीजिए । वसुदेव मरे नहीं हैं । वे कहीं चल दिये हैं । सौ वर्ष बाद वे अनेक लाभ और सम्पत्तिसहित लौटेंगे और आप लोगोंको आनन्दित और सुखी करेंगे । उस निमित्तज्ञानीके इसप्रकार वचन सुनकर सबको बड़ा ही सन्तोष हुआ । अच्छे वचन सुनकर कौन सुखी नहीं होता । तपा हुआ लोहेका गोला जैसे जलसे ठंडा हो जाता है उसीतरह उस नैमित्तिकके वचनोंसे सब शान्त होगये । समुद्रविजय तब नौकरोंको वसुदेवके ढूँढ़नेको भेजकर कुछ निश्चिन्तसे हुए ।

इधर वसुदेवकुमार अपनी इच्छाके अनुसार घूमता-फिरता ‥ । मनमें सुखके खजाने जिनभगवान्का ध्यान करता विजयपुरके बागमें पहुँचा । वहाँ वह एक अशोकवृक्षके नीचे बैठ गया । कुमारके पुण्यसे उस वृक्षकी न हिलती-डुलती छायाको भक्तिसे उसके आतिथि-सत्कारके लिए खड़ीसी जानकर उस बागका माली अपने राजाके पास गया और सिर झुकाकर बोला-महाराज, निमित्तज्ञानीजीका कहा सच हुआ। आज बागमें एक महापुरुष आये हुए हैं । उनके आते ही सूखे सब झाड़ कुलीन

वहूकी तरह नाना प्रकारके फल-फूलोंसे फल उठे हैं। जान पड़ता है आपके पुण्यसे खींचे हुए ही वे गुणवान्, नर-शिरोमणि महात्मा यहाँ आये हैं। महाराज, उनकी सुन्दरताका क्या वखान करूँ मानों वे पुण्यके पुंज ही हैं। वनमालीके मुँहसे यह खुश खबर सुनकर विजयपुर नरेश बड़े ठाट वाटसे वागमें आये। उस साक्षात्कामदेव वसुदेवको देखकर राजा बड़े खुश हुए। कुमारको बड़े आनन्दसे वे फिर शहरमें लाये। उनके श्यामला नामकी एक पुत्री थी। उन्होंने फिर वसुदेवके साथ उसका बड़े ठाट-वाटसे व्याह कर दिया। पुण्यवानोंको क्या प्राप्त नहीं होता। श्यामलाके साथ प्रसन्न-मना वसुदेवने वहुत दिनोंतक मनचाहा सुख भोगा और जिनभगवान्‌की खूब सेवा-भक्ति की। कुछ दिनों वाद आनन्दी वसुदेव यहाँसे भी चल दिया। थोड़े दिनोंमें वह देवदारु नाम वनमें पहुँचा। वह वन नाना प्रकारके खिले हुए फूलों, पके-हुए फलों और निर्मल पानीके भरे सरोवरोंसे युक्त था। मानों जिनभगवान्‌की भक्ति करनेको पृथिवीदेवीने उत्तम अर्घ हाथोंमें उठा रक्खा है। वहाँ मीठे पानीका भरा पद्म नाम सरोवर मुनिजनके निर्मल मनके समान जान पड़ता था। उस सरोवरमें वसुदेवने एक नीले रंगका हाथी देखा। वह हाथी अपने पाँवोंके आघातसे पृथ्वीको दल-मल रहा था। सूँड़में पानी भर-भरकर वनको सींच रहा था। अपनी भीम गर्जनासे उसने मेघोंको जीत लिया था, कानरूपी पंखोंकी तेज हवासे

सब झाड़ोंको हिला दिया था और बड़े बड़े दाँतोंकी चोटोंसे शिलाओंपर वह जोर जोरके आघात कर रहा था । उसे देखकर वसुदेवने कहा—मेरे सामने आ न ? वसुदेवका इतना कहना हुआ कि वह हाथी क्रोधसे लाल लाल आँखें करके वसुदेवके सामने दौड़ा । वसुदेव हाथीके वश करनेकी विद्यामें बड़ा होशियार था ही, सो उसने कभी हाथीकी बायीं ओर, कभी दाहिनी ओर तथा कभी आगे और कभी पीछे आने-जाने, कभी उसके पाँवोंमें होकर निकल जाने, कभी पत्थरादिकसे मारने, कभी धोखा देने, कभी मर्मभेदी वचन कहने, कभी लड़नेके लिए ललकारने और कभी उसके दाँतोंपर चढ़ जाने आदि अनेक तरहसे शिथिल कर सहजमें उस महान् मस्त हाथीको पुण्यकी सहायता पाकर अपने वश कर लिया । जैसे जिनभगवान् संसारको मथनेवाले कामको वश कर लेते हैं । उस नीले हाथीपर बैठे हुए वसुदेवने नीलगिरिपर स्थित सूरजकी शोभाको धारण किया । वसुदेवको उस हाथीपर बैठा देखकर एक विद्याधर उसे विजयार्द्धपर्वतके सम्पदासे भरे-पुरे किन्नरगीत नाम नगरमें लेगया । उसका राजा अशनिवेग नामका विद्याधर था । उसे नमस्कार कर वह विद्याधर बोला—महाराज, इस वीर पुरुषने बातकी बातमें एक भयंकर वनहस्तीको जीत लिया है । आपकी आज्ञासे मैं इस गुणवान्, श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त और पुण्यवान् महात्माको यहाँ लाया हूँ । सुनकर और वसुदेवको देखकर

अशनिवेग बड़ा खुश हुआ। जैसे घरमें धनका खजाना आनेसे खुशी होती है। अशनिवेगकी शाल्मलिदत्ता नामकी एक लड़की थी। राजाने बड़े उत्सवके साथ उसका व्याह वसुदेवसे कर दिया और दहेजमें उसे वहुतसी धन-दौलत दी। वसुदेवने अपनी इस नई प्रियाके साथ भी खूब सुख भोगा। वसुदेव यहाँसे भी जानेकी तैयारीमें था कि एक दिन शाल्मलिदत्ताके मामाका लड़का अगारवेग, जो वसुदेवपर क्रोधके मारे जल रहा था, सोते हुए वसुदेवको उठाकर आकाशमार्गसे चला। शाल्मलिदत्ताने उसे जाते देख लिया। सो वह भी तलवार लेकर उसके पीछे दौड़ी। यह उसे मारनेहीको थी कि अगारवेग डरके मारे वसुदेवको छोड़कर भाग गया। शाल्मलिदत्ताने तब वसुदेवको पर्ण-लघ्वी नाम विद्याके सहारे चम्पापुरीके तालाबके बीचमें बसे-हुए द्वीपमें उतार दिया। वसुदेवने उस द्वीपके निवासियोंसे पूछा--भाई, इस द्वीपसे पार होनेका रास्ता कहाँ है और यह कौन पुरी है? वसुदेवकी ये बातें सुनकर वे लोग हँसने लगे और बोले--भाई तू आकाशसे तो नहीं गिरा है जो इस पुरीका मार्ग पूछ रहा है। यह श्रीवासुपूज्यजिनके जन्मसे पवित्र जगत्प्रसिद्ध चम्पापुरी है; तू नहीं जानता क्या? वसुदेवने कहा--भाई आप लोगोंने ठीक कहा कि मैं आकाशहीसे गिरा हुआ हूँ। इसी कारण मैंने आपसे इस पुरीका रास्ता पूछा है। यह सुनकर उन लोगोंने वसुदेवको चम्पापुरीका रास्ता

वतला दिया । वसुदेव तालावसे निकल कर पवित्र चम्पा-पुरीमें आया ।

यहाँ चारुदत्त नामका एक बड़ा धनी सेठ रहता था । उसके गंधर्वदत्ता नामकी एक वड़ी सुन्दरी लड़की थी । वीणा वजानेमें वह वड़ी विदुषी थी । अपनी विद्याका उसे वड़ा अभिमान था और इसीलिए उसने प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि जो मुझे वीणा बजानेमें हरा देगा वही मेरा स्वामी होगा; अन्य जन नहीं ।

मनोहर नाम एक गानविद्याका वड़ा भारी विद्वान् यहाँ रहता था । वसुदेव इसीके पास आकर ठहर गया । गन्धर्व-दत्ताके प्राप्तिकी इच्छासे वहुतसे लोग इस विद्वान्के पास वीणा वजानेका अभ्यास करनेको आया करते थे । अपना हाल किसीपर प्रगट न होने देकर वसुदेवने एकदिन उन लोगोंसे कहा—मेरी भी इच्छा है कि मैं वीणा बजाना सीखूँ, यह कहकर उसने एक वीणाको हाथमें उठा लिया और धूर्ततासे उसे इधर उधरसे तोड़ डाला । वसुदेवकी यह मूर्खता देखकर उन लोगोंने हँसकर कहा—यह बड़ा अच्छा वीणा वजानेवाला आया । सचमुच ही यह कन्याको वीणा वजानेमें जीतकर वर लेगा । इन लोगोंकी वातपर वसुदेवको कुछ हँसीसी आगई, पर उसे उसने वाहिर न आने दिया । वह उसी गुप्त रूपसे वहाँ रहकर वीणा वजानेका अभ्यास करने लगा । इसी तरह कुछ दिन वीतने पर गन्धर्वदत्ताका स्वयंवर रचा

गया। बड़ी बड़ी दूरसे विद्याधरों तथा अन्य राजोंके यौव-नप्राप्त राजकुमार गन्धर्वदत्ताके प्राप्तिकी आशासे आये। आशा बहुत बड़ी चीज है। स्वयंवरमण्डपमें गन्धर्वदत्ताके साथ वीणा बजानेको एकके बाद एक राजकुमार उतरा। विदुषी गन्धर्वदत्ताने बातकी बातमें उन सबको हरा दिया। जब सब राजकुमार हारकर बैठ रहे तब सब कलाओंमें पारंगत वसुदेव अपने गुरुसे पूछकर गन्धर्वदत्ताके पास आया। वसुदेवको देखकर गंधर्वदत्ता बड़ी सन्तुष्ट हुई। पुण्य-वान्‌के आनेपर किसे प्रीति नहीं होती। इसके बाद वसुदेवने गन्धर्वदत्तासे कहा—एक अच्छी निर्दोष वीणा दीजिए। गन्ध-र्वदत्ताकी तीन चार वीणायें, जो उसके नौकरोंके पास थीं, नौकरोंने उन वीणाओंको गन्धर्वदत्ताके पास दे दिया। उन वीणाओंको देखकर वसुदेव बोला—इनमें तो एक भी वीणा अच्छी नहीं है। ये सब सदोप हैं। देखो, इस वीणा की तंत्री (दंड) में बाल लग रहे हैं, इसकी तूँबीमें ये कीलें लगी हुई हैं, इसके दंडमें ये पत्थरके टुकड़े हैं। इत्यादि वीणागत दोषोंको सुनकर गन्धर्वदत्ताने आश्चर्यके साथ वसु-देवसे कहा—हे सब वस्तुओंकी परीक्षा करनेमें कुशल, अच्छा बतलाओ तो वह निर्दोप वीणा कैसी होनी चाहिए जो तुम्हारे मनको हर सके। वसुदेव बोला—अच्छा सुनो, मैं अपनी मन-चाही वीणाके मँगानेका उपाय बतलाता हूँ। हस्तिनापुरमें मेघरथ नाम एक राजा हो गये हैं। उनकी रानीका नाम

पद्मावती था। उनके दो सुन्दर पुत्र हुए। उनके नाम थे विष्णु-रथ और पद्मरथ। कोई कारण पाकर मेघरथ राजा तो अपने विष्णुकुमार पुत्रके साथ जिनदीक्षा ले मुनि होगये। राज्य तब पद्मरथ करने लगे। एकवार आस-पासके राजोंने उनपर चढ़ाई करदी। उससे वे बड़े दुखी हुए। उनका बली नाम-का मंत्री बड़ा बुद्धिमान् और राजनीति-कुशल था। उसने साम-भेद आदि उपायोंसे शत्रुओंको समझा-बुझाकर लौटा दिया। मंत्रीकी इस बुद्धिमानीसे पद्मरथ राजा बड़े सन्तुष्ट हुए। उन्होंने मंत्रीसे मनचाही वस्तुके माँग लेनेको कहा। मंत्रीने राजासे कहा—महाराज, जब मुझे जरूरत पड़ेगी तब मैं आपसे माँग लूँगा। सीधे स्वभाववाले राजाने 'तथास्तु' कहकर मंत्रीके कहनेको मान लिया। सत्पुरुष दूसरोंके उपकारको नहीं भूल जाते। इसके बाद एक दिन अकंपनाचार्य अपने मुनिसंघको साथ लिये और जिनप्रणीत धर्मामृतकी वर्षासे भव्यजनोंको सन्तुष्ट करते हुए हास्तिनापुरके जंगलमें आये। वहाँ वे जीव-जन्तुरहित एक छोटेसे पर्वत पर ठहरे। उन्होंने वहाँ आतापनयोग धारण कर लिया। भव्यजन रोज रोज आकर उनकी अच्छे अच्छे द्रव्योंसे पूजा करते थे। खूब धन व्ययकर जिनधर्मकी प्रभावना करते थे। पद्मरथ राजाके मंत्री बलीको इन्हीं आचार्यने पहले एकवार विद्वा-नोंकी सभामें स्याद्वाद विषयपर शास्त्रार्थ कर हरा दिया था। उस समय बली मंत्रीको बड़ा शर्मिन्दा होना पड़ा था। इस-

समय उन्हीं अकम्पनाचार्यको आया सुनकर उस दुराचारीने उन्हें मार डालनेकी इच्छासे पद्मरथ राजाके पास जाकर कहा—प्रभो, आपके भण्डारमें मेरा एक 'वर' है। उसे याद कर मुझे सात दिनका राज्य दीजिए। राजाने मंत्रीके माँगे अनुसार उसे सात दिनका राज्य दे दिया। राज्य पाकर उस दुष्ट मंत्रीने उस पहाड़के सब ओर, जिस पर कि अकम्पनाचार्य ध्यान कर रहे थे, होम कराना आरंभ कर दिया। मंत्रीकी आज्ञासे ब्राह्मण लोग वेदोंका पाठ पढ़ते हुए पशुओंको मार मारकर उन्हें होमने लगे। इस तरह उन्होंने लाखों जीवोंको होम दिया। इन मारे हुए जीवोंका जो शेषभाग बचा हुआ था उसे उन लोगोंने खाया और झूठे सकोरे, पत्तल, तथा जूठन वगैरहको उस मुनिसंघ पर फैंककर उसे बड़ा कष्ट पहुँचाया। होममें जलते हुए जीवोंके दुर्गन्धित धुएँसे आकाश छागया। मुनियोंपर उससे बड़ा दुस्सह उपसर्ग हुआ। परन्तु जिनप्रणीत तत्वके जाननेवाले, शान्तिके समुद्र उन मुनियोंने उस कष्टको बड़े धीरजके साथ सहा। वे अपने योगमें निश्चल बने रहे। उस समय तीन ज्ञानधारी मेघरथमुनि और विष्णुकुमारमुनि एक पहाड़की गुफामें बैठे हुए थे। रातका समय था। उस समय आकाशमें श्रवण नाम नक्षत्रको कँपते हुए देखकर विष्णुमुनिने अपने पिता मेघरथमुनिसे पूछा—भगवन्, हवासे हिलते हुए पीपलके पत्तेकी तरह आज यह श्रवणनक्षत्र किस कारणसे ऐसा

हिल-डुल रहा है? सुनकर ज्ञानी मेघरथमुनि बोले—सुनो, इस समय हस्तिनापुरमें पापी बली मंत्री अकम्पनाचार्य और उनके संघपर अत्यन्त घोर उपसर्ग कर रहा है और साधुओंका कष्ट सभीको सन्ताप-कष्टका कारण है। आकाशमें भी श्रवणनक्षत्र कम्पित हो रहा है। सुनकर विष्णुकुमार मुनिने फिर पूछा—प्रभो, किस उपायसे मुनिसंघका यह कष्ट दूर हो सकता है? मेघरथ स्वामी बोले—तुम्हें विक्रियाऋद्धि प्राप्त है। उसके द्वारा यह उपसर्ग बहुत जल्दी मिट सकेगा। जैसे सूरजके उदय होते अंधकार मिट जाता है। इसके बाद विष्णुमुनि उन साधुओंकी भक्ति तथा प्रीतिके वश हो उसी समय पद्मरथ राजाके पास पहुँचे। उन्हें देखकर पद्मरथने नमस्कार किया और प्रार्थना की—प्रभो, ऐसा कौन कार्य है जिसके लिए आपको यहाँ आनेका कष्ट उठाना पड़ा। आज्ञा कीजिए, मैं आपका अनन्यदास सेवामें हाजिर हूँ। उत्तरमें विष्णुमुनि बोले—तुम्हारा मंत्री संसार-त्यागी मुनियोंको दुस्सह कष्ट क्यों दे रहा है? तुम उसे इस कार्यसे रोकदो। इसपर पद्मरथने कहा—मुनिनाथ, मुझे इस पापी दुष्टने वचन वद्धकर ठग लिया। सो मैं सात दिनके लिए अपना सब राज्याधिकार इसे दे चुका हूँ। इसलिए मैं इसे रोक नहीं सकता। सूर्यसे रोके गये अंधकारकी तरह इसे रोकनेको तो आप ही समर्थ हैं। पद्मरथके वचन सुनकर विष्णुमुनि उठे और वामन ब्राह्मणका रूप बनाकर वेदध्वनि द्वारा विद्वानोंके मनको मो-

हित करते हुए बली मंत्रीके पास पहुँचे। आशीर्वादकी तारीफ बलीसे बोले—राजन्, तुझे महान् दानी सुनकर मैं कुशल आया हूँ। इसलिए मुझे मेरा मनचाहा दान देकर सन्तुष्ट कर। विष्णुमुनिकी वेदध्वनिसे खुश होकर बली उनसे बोले—जय नाथ, मैंने तुम्हें 'वर' दिया, तुम्हें जो चाहना हो सो बहुत लीजिए। मैं देनेको तैयार हूँ। वामनरूप धारी देवके साथ बोले—राजन्, मुझे तीन पाँव इतनी जमीनकी जरूरत है, खूब कृपाकर वह दीजिए। इसपर बली मंत्रीने कहा—ब्रह्मपर्वत राज, यह आपने क्या माँगा? कुछ अच्छी वस्तु मांग कोई अस्तु, तुम्हें इतनी जमीनकी ही जरूरत है तो यहीं लीजिए। अपनी इच्छाके अनुसार उसे आप माप लीजिए। यह कहकर बलीने हाथमें जल लेकर संकल्प छोड़ दिया। विष्णुमुनिने तब विक्रियाऋद्धिके प्रभावसे अपना रूप बहुत ही बढ़ाकर एक पाँव तो मानुषोत्तर पर्वतपर और, दूसरा पाँव मेरु पर्वतपर रक्खा। तीसरा पाँव रखनेको जब स्थान न रहा तब उनने क्रोधसे उसे आकाशमण्डलमें घुमाना शुरू किया। उससे सुर, असुर, राजे, महाराजे बड़े संकटमें पड़े—सारी पृथ्वीमें हल-चल मच गई। तब देवता, विद्याधर, राजे, महाराजे आदि मिलकर विष्णुमुनिके पास आये और प्रार्थना करने लगे—हे करुणाके समुद्र, हम क्षुद्रोंपर दया करके क्रोधको छोड़ दीजिए और अपने पाँवोंको उठा लीजिए। उस समय देवतोंने गीत-संगीत, वीणागान आदि द्वारा मुनिकी स्तुति की। मुनिने अपने

हिल-डुल ... लेया । कुमारी, उस समय देवतोंने मुनि-पाद-
सु... लिए विद्याधर राजों और नर-राजोंको घोषा, सुघोषा,
महाघोषा, वसुन्धरा और घोषवती नाम वीणाओंमेंसे दो दो
साधु गयें प्रदान कीं। इसके बाद विष्णुमुनि पापी बलीसे बोले—
भी अब मुझसे व्यर्थ ही माँगलेनेको कहा। बतला अब मैं अपना
फिर पूंछा कहाँ रक्खूँ ? उसे कुछ उत्तर न देते देखकर मुनिने
सकत... बातें कहकर उसे उचित दंड दिया और बड़ी
है । ... मुनियोंका उपसर्ग दूरकर परमानन्द देनेवाला
सूरज ...य-प्रेम प्रगट किया । बलीकी यह सब लीला देख-
कर ...रथ राजाको बड़ा क्रोध आया । वे उसे मार डाल-
नेको तैयार होगये । विष्णुमुनिने राजाको ऐसा करनेसे
रोक दिया । अपने सदृश नीचपर भी मुनिकी इतनी दया
देखकर बली भक्तिकी प्रेरणासे उनके पाँवोंमें गिर पड़ा। विष्णु-
मुनि तब उसे श्रेष्ठ जिनधर्मकी दीक्षा देकर प्रभावना करके
अपने स्थान चले गये । कुमारी, उन वीणाओंमें जो घोषवती
नाम वीणा थी वह तुम्हारे घरमें वंशपरम्परासे चली आ रही
है । उसे लाकर मुझे दो । वही वीणा सबके चित्तको हरनेवाली
है । वसुदेवके द्वारा वीणाकी कथा सुनकर गन्धर्वदत्ता मनमें
खूब ही संतुष्ट हुई। इसके बाद गन्धर्वदत्ताका इशारा पाकर
उसके आदमियोंने वही घोषवती नाम वीणा लाकर वसुदेवको
दे दी। वसुदेवने उस सिद्धिविधायिनी वीणाको लेकर बहुत
ही बढ़िया सुन्दर संगीत किया। उसका वीणागान सुनकर लोग

वहुत आनन्दित हुए। सवने उसकी गानविद्याकी वड़ी तारीफ की। यह देखकर सन्तुष्ट हुई कुमारी गन्धर्वदत्ताने सव गुण-कुशल वसुदेवके गलेमें रत्नमाला डालदी। पुण्यवानों और गुण-वानोंको सव ही जगह: सुख-सम्पत्ति, यश-कीर्ति, जय-विजय आदिका लाभ हुआ करता है। चारुदत्त सेठ भी वहुत खुश हुआ। उसने फिर गन्धर्वदत्ताका व्याह वसुदेवके साथ कर दिया। यहाँ रहकर वसुदेवने गन्धर्वदत्ताके साथ खूव सुख भोगा। कुछ दिनों वाद वह यहाँसे फिर विजयार्द्धपर्वत पर चला गया। वहाँ सम्पदासे भरी विद्याधरश्रेणीमें कोई सात-सौ विद्याधर कन्यायें थीं। उन सवको भी व्याह कर वसुदेव पीछा भारतवर्पमें आगया।

अरिष्टपुरमें तव हिरण्यवर्मा नाम राजा राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम पद्मावती था। उनके रोहिणी नाम एक वड़ी सुन्दर और भाग्यवती कन्या थी। उसके स्वयं-वरके लिए वहाँ वहुतसे राजकुमार आकर जमा हुए थे। वसुदेव उन सवको पढ़ाने लग गया। जव रोहिणीका स्वयंवर रचा गया तव जरासंध आदि वड़े वड़े राजा, जो अपने प्रतापसे पृथ्वीमें सूर्यके समान गिने जाते थे, आये। स्वयंवरके दिन सव राजगण आकर सुशोभित हुए। सोलहों शृंगार किये हुई रोहिणी भी हाथमें वरमाला लिये 'वर' पसन्द करनेको मंडपमें आई। वह एक ओरसे सव राज-गणको देख गई। पर उनमें उसे कोई पसन्द न आया। अन्तमें उसकी नजर पड़ी इस

सर्वगुण-संपन्न वसुदेव पर । रोहिणी उसे देखकर मन ही मन बड़ी संतुष्ट हुई । और पास जाकर उसने उसके गलेमें वह रत्नमयी माला पहना दी । यह देखकर राज-गणमें बड़ा गुल-गपाड़ा होने लगा । अ-सहनशील जरासंधराजाने तब समुद्रविजय वगैरह राजोंको रोहिणीके हरणकी आज्ञा की । इसके पहले, कि वे रोहिणीके हरण करनेको तैयार हों, रोहिणीके पिता हिरण्यवर्मा राजासे कहा गया—तुमने यह बहुत ही अनुचित किया जो त्रिखण्डके राजोंको छोड़कर गर्वसे एक विदेशीके गलेमें अपनी पुत्रीको वरमाला डालने दी । कहीं मालती फूलोंकी सुगन्धित माला एक बन्दरके गलेमें शोभा देगी ? इसलिए राजा जरासंध जबतक तुम्हारे विरुद्ध न हो उसके पहले अपनी कन्याको लाकर तुम हमें सौंपदो। नहीं तो वृथा मारे जा आगे। उन राजोंके दुस्सह बचनोंको सुनकर हिरण्यवर्मा बोला— " माननीय राजगण, आप लोग जरा ध्यानसे सुनिए । देवता जिनके चरणोंकी पूजा करते हैं उन आदिजिनने इस हित-मार्गका उपदेश किया है कि " कन्या अपनी इच्छासे पसन्दकर जिसे वरमाला पहना दे वही उसका स्वामी है । " मैंने भगवान्के इन्हीं वचनोंको मान दिया है । दूसरोंकी प्रेरणासे उकसाये गये आप लोग चाहे इन वचनोंको मानें या न मानें। पर याद रखिए मैं आप लोगोंके इन कठोर वचनोंसे डरनेवाला नहीं हूँ। जुगनुके भयसे सूरज क्या उदय होना छोड़ देगा ? इसलिए मैं अपनी कन्याको, जिसे उसने वरा है, उसे छोड़कर, अन्य जनको हर्गिज नहीं दे सकता । "

जरासंधने हिरण्यवर्माके कहनेपर कुछ ध्यान न देकर सब राजोंको युद्ध करनेकी आज्ञा देदी। इस ओर सारा राज-मंडल और हिरण्यवर्माके पक्षमें केवल शूरवीर-शिरोमणि वसुदेव। वसुदेव राज-मंडलकी कुछ पर्वा न कर सोनेके रथपर चढ़कर युद्ध भूमिमें उतरा और अपने बन्धुओंसे लड़ने लगा। उसे यह ज्ञान न था कि इस युद्धमें मैं अपने भाइयोंके साथ लड़ रहा हूँ, सो वह बड़े भयंकर बाणोंको उनपर छोड़ने लगा। थोड़ी देरवाद उसे मालूम होगया कि वह अपने भाइयोंके साथ लड़ रहा है। तब वह उस ओरसे समुद्रविजयके जो बाण आते उन्हें अपनी बाणविद्याकी कुशलतासे बीचहीमें काट डालता और आप जो बाण छोड़ता वे बड़े धीरेसे छोड़े जाते थे। बन्धुपनका वह पूरा खयाल रखता था। इस प्रकार वह कौतूहलसे कुछ देरतक लड़ा किया। इसके बाद उसने सुख देनेवाले मित्रके समान अपने नामका बाण छोड़ा। वह जाकर समुद्रविजयके पाँवोंके आगे पड़ा। समुद्रविजयने उसे उठाकर उसमें लगे पत्रको पढ़ा। पत्रमें लिखा हुआ था—“लोगोंके कहनेमें आकर आपने जिसे कैद कर दिया था, वह रातको उस कैदसे निकल कर क्रोधवश कहीं चल दिया था। वही आपका प्यारा छोटा भाई वसुदेव सौ वर्ष कहीं बिताकर पुण्यसे पीछा आपके पास आगया। प्रभो, अपने प्रिय भाईके अपराध क्षमाकर उसे

छातीसे लगाइए।" पत्र पढ़कर वसुदेवके आठों भाइयोंको परम आनन्द हुआ। उन्होंने सोचा--सचमुच ही वसुदेव आगया है, और हिरण्यवर्माकी राजकुमारी रोहिणीने प्रेमसे वरमाला पहराकर जिसे वरा है, वही अपना वसुदेव है। यह विचारकर उन सबने उसी समय युद्ध रोक दिया। वे वसुदेवके पास जानेहीको थे कि इतनेमें खुद वसुदेव ही दौड़ा आकर अपने भाइयोंके पाँवोंपर गिरने लगा। भाइयोंने उसे गिरनेसे रोककर झटसे छातीसे लगा लिया। वे आनन्दित होकर बोले--भैया, आज हमारी सब इच्छा पूरी होगई। तुझे देखकर हमारा पुण्यवृक्ष फल उठा। सारा यादव-वंश ध्वजाकी तरह शोभित हुआ। चन्द्रमासे अलंकृत किये गये आकाशमंडलके समान तूने अकेलेने ही उसे विभूषित कर दिया। तुझे पाकर आज हम सचमुच बलवान् होगये। सौरीपुर आज वास्तवमें शूरवीरसे मंडित हुआ। इत्यादि मनको प्रिय मधुर मनोहर वचनोंको सुनकर सूरजकी किरणोंसे खिले हुए कमलके समान वसुदेव बड़ा प्रसन्न हुआ। इसके बाद वसु-देवने और और बन्धुओंको भी भक्तिसे नम्र होकर नमस्कार किया--विनय किया। रोहिणीने जिसे 'वरा' वह कौन है, इसका परिचय सबको होगया। इस वृत्तान्तसे सबहीको बड़ी प्रस-न्नता हुई। इसके बाद महान् उत्सवके साथ रोहिणीका वसु-देवसे ब्याह कर दिया गया। इसके सिवा वसुदेवने जो पहले और बहुतसी विद्याधर-राजों और नर-राजोंकी कन्या-ओंके साथ ब्याह किया था वे सब भी गुणवती सुन्दरी

कन्यायें ला-लाकर कुमारको सौंपदी गईं। इसके बाद ये सब भाई वसुदेवको साथ लिये बड़े ठाट-बाटसे सौरीपुर पहुँचे। वहाँ अब इन सब भाइयोंका समय पूर्व पुण्यके उदयसे बड़े आनन्द-उत्सवसे जाने लगा।

कुछ दिनों बाद रोहिणीके गर्भ रहा। जिन 'शंख' नाम मुनिका ऊपर पहले जिकर आचुका है, वे महाशुक्र नाम स्वर्गसे रोहिणीके गर्भमें आये। नौ महीने बाद शुभ मुहूर्त, शुभ लग्नमें रोहिणीने उन्हें जन्म दिया। 'पद्म' नाम नवमें बलदेव यही हैं। जन्म समय ये एक उज्ज्वल पुण्य-पुंजसे जान पड़े। ये सब श्रेष्ठ लक्षण, कला और गुणोंसे युक्त थे। सत्पुरुषोंको चन्द्रमाके समान प्रसन्न करनेवाले थे। इस प्रकार पुण्यके प्रभावसे समुद्रविजय वगैरह पुत्र-पौत्रादिकका सुख भोग करते हुए राज्य करने लगे। पुण्य सुखका कारण है। वह पुण्य जिन-पूजा, पात्र-दान, व्रत, उपवासादि द्वारा प्राप्त किया जाता है।

जो सब गुणोंके समुद्र हैं, देवता जिन्हें नमस्कार करते हैं, त्रिभुवनको जो सुख देनेवाले हैं, सब पापोंके नाश करनेवाले हैं, निर्मल केवलज्ञान जिन्हें प्राप्त है और जो अपनी वचनरूपी किरणोंसे सूरजकी तरह मिथ्यान्धकारको नाश करनेवाले हैं वे श्रीनेमिनाथ जिन सब जीवोंकी रक्षा करें।

इति चतुर्थः सर्गः।

पाँचवाँ अध्याय।

कंस-कृष्णका जन्म, कृष्ण द्वारा चाणूरमल्लकी मृत्यु।

जगत्का हित करनेवाले श्रीनेमिनाथ जिनको नमस्कार-कर यथागम कंसका वृत्तान्त लिखा जाता है।

फूले-फले नाना प्रकारके वृक्षोंसे युक्त गंगा और गंधवती नाम नदीके सुन्दर संगममें तापसियोंकी एक छोटीसी पल्ली थी। उसमें सब तापसियोंका स्वामी वसिष्ठ नाम तापसी रहता था। वह एकदिन पञ्चाग्नि-तपमें बैठा हुआ था। उस समय वहाँ गुणभद्र और वीरभद्र नाम दो आकाशचारी मुनि आये। वसिष्ठको पञ्चाग्नि-तपमें बैठा देखकर उन्होंने कहा—यह तप महा कष्ट देनेवाला और अज्ञानी जनका चलाया हुआ है। उनके इन वचनोंको सुनकर वसिष्ठको बड़ा क्रोध आया। वह उनके सामने खड़ा होकर बोला—तुमने जो मुझे अज्ञानी कहा, वह किस तरह? बतलाओ। उनमें बड़े गुणभद्रमुनि बोले—देखो, इस आगकी ज्वालामें कितने जीव आ-आकर गिरते हैं और बेचारे मर जाते हैं। इन लकड़ियोंमें कितने जीव होंगे। तुम जो रोज रोज नहाते हो, उससे तुम्हारी इन जटाओंमें छोटी छोटी कितनी मछलियाँ फँसकर अपनी जान गँवा चुकी हैं। बतलाओ-फिर तुम्हारी दया कहाँ गई? और धर्मका मूल

जीवदया बतलाई गई है। तब जहाँ दया नहीं वहाँ धर्म भी नहीं। और धर्मके बिना स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति नहीं। इस कारण हे सीधे स्वभावके धारक, तुम्हारा यह तप अज्ञान-तप है और हिंसाके सम्बन्धसे कर्मबन्धका कारण है। हिंसारहित तो है श्रीजिनप्रणीत धर्म और उसी द्वारा भव्यजन स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त करते हैं। इत्यादि अनेक दृष्टान्तोंसे वसिष्ठ ताप-सीको गुणभद्रमुनिने समझाया। उनका समझाना वसिष्ठके ध्यानमें आगया, सो वह उसी समय तापस वेषको छोड़कर दिगम्बर होगया। इसके बाद वसिष्ठमुनिने बहुत ही दुःसह तप करना आरंभ किया। वे एक एक महीनाके उपवास करने लगे। उन्होंने महान् आतापन योग करना शुरू किया। तपके प्रभावसे वश हुई सात व्यन्तर देवियाँ नुपूरोंका मधुर मनोहर शब्द करती हुई उनके पास आईं और नमस्कार कर बोलीं—प्रभो, तपके बलसे हम आपको सिद्ध हुई हैं। हमें बतलाइए कि हम क्या काम करें? उनकी सुन्दरता देखकर वशिष्ठमुनिने उनसे कहा—इस समय तो मुझे कोई ऐसा काम नहीं देख पड़ता, जिसके लिए मैं तुम्हें कष्ट दूँ। दूसरे जन्ममें मैं तुमसे काम लूँगा, उस समय अवश्य आना। इस समय तुम जाओ। वे देवियाँ वसिष्ठमुनिको नमस्कार कर वहाँसे चली गईं। इसके बाद वसिष्ठमुनि घोर तप करते हुए मथुराके जंगलमें पहुँचे। वहाँ तापनयोग धारणकर एक पर्वतपर वे ध्यान करने लगे। तप करते उन्हें एक महीना हो गया। उन्हें एक महीनाके उपवासे देखकर मथु-

राके राजा उग्रसेनने सारे शहरमें डौंड़ी पिटवादी कि " इन तपस्वी मुनिको मैं ही दान दूँगा, शहरमें और कोई दान न दे। " इसके बाद महीनाके उपवास पूरे कर वसिष्ठमुनि आहारके लिए मथुरामें गये। कर्मयोगसे उसी दिन राज-महलमें आग लग गई। मुनि उसे देखकर निराहार लौट गये और फिर एक महीनाका योग धारणकर तप करने लगे। योग पूरा होनेपर वे फिर आहारके लिए मथुरामें आये। उस दिन महायाग नाम राजाका हाथी सांकल तुड़ाकर भाग निकला और लोगोंको कष्ट देने लगा। राजा आज इस हाथीके पकड़वानेमें लग गये। इस कारण वे मुनिको आहार देना भूल गये और दूसरोंके लिए आहार देनेकी राजाकी ओरसे सख्त मनाई होनेसे और लोग भी वसिष्ठमुनिको आहार न करा सके। मुनि इस समय भी अन्तराय समझ लौट गये और फिर एक महीनाका उन्होंने योग धारण कर लिया। योग पूराकर वे फिर आहारके लिए मथुरामें गये। अबकी बार उग्रसेनपर जरासंधका पत्र आया था। उसमें कुछ ऐसे समाचार थे जिनसे उग्रसेनको बड़ा चिन्तित होना पड़ा। इस कारण उन्हें मुनिके आहारकी याद न रही। मुनि भूख-प्यासके कष्टसे बड़े क्षीण होगये थे। ऐसी अवस्थामें बिना आहार किये ही उन्हें लौटते हुए देखकर उनकी कष्ट मय दशापर लोगोंको बड़ी दया आई। वे परस्परमें बातें करने लगे—इन महामुनिको न तो राजा स्वयं दान देता है और न दूसरोंको ही देने देता है।

न जाने राजाको क्या सूझा है ? ये व्रती, तपस्वी महामुनि व्यर्थ ही कष्ट पा रहे हैं। उन लोगोंके वचनोंको सुनकर पापकर्मके उदयसे वसिष्ठमुनिको मनमें बड़ा ही कष्ट हुआ। क्रोधसे उनका हृदय तप उठा। उस क्रोधके वेगसे अन्धे बनकर तत्वज्ञान-रहित वशिष्ठमुनिने निदान कर डाला कि "दुर्मति उग्रसे-नने जो मेरे लिए दानमें विघ्न किया है, उसका बदला चुका-नेको मेरा जन्म, इस महातपके प्रभावसे इसीके यहाँ हो और मैं इसका राज्य छीनकर इसे उचित दण्ड दूँ।" इसके साथ ही वसिष्ठमुनि गश खाकर ज़मीनपर गिर पड़े, और मरकर उग्रसेनकी रानी पद्मावतीके गर्भमें आये। इस वैरानु-बंधसे रानीको दोहला भी ऐसा ही हुआ। उसकी इच्छा हुई कि मैं राजाकी छाती चीरकर उसका मांस भक्षण करूँ। इस आर्त्तध्यानसे वह बड़ी दुखी हुई; परन्तु राजासे वह अपने दोहलेका हाल कह न सकी। वह इस चिन्तासे दिनपर दिन दुबली होने लगी। मंत्रियोंको किसी तरह रानीके मनकी बात मालूम होगई। तब उन चतुर मंत्रियोंने अपनी बुद्धिसे एक कृत्रिम उग्रसेन बनाकर रानीका दोहला पूरा किया। इसके कुछ दिनों बाद पद्मावतीने पुत्र-रूपी शत्रु जना। उग्रसेन पुत्र-मुँह देखनेको गये। उन्होंने देखा—उनका पुत्र ओठोंको दाँतोंसे काट रहा है और भयंकर—क्रूर मुँह बनाकर दोनों हाथोंकी मुट्ठियोंको बाँध रहा है। उसकी वह भयानकता देखकर उग्रसे-नने सोचा—यह बालक अत्यन्त दुष्ट है, इसको रखना उचित

नहीं। यह विचारकर उन्होंने उसे एक काँसीके सन्दूकमें बन्द कर दिया और उसीमें उस बालकका परिचय करानेवाला पत्र लिखकर रख दिया। इसके बाद वह सन्दूक यमुना नदीकी धारमें बहादी गई। जिसका मूल अच्छा न हो उसे सत्पुरुष छोड़ देते हैं।

वह सन्दूक बहती बहती कौशाम्बीमें पहुँच गई। वहाँ एक कलालिन रहती थी। उसका नाम मन्दोदरी था। उसने उस सन्दूकको निकाल लिया। खोलकर देखा तो उसमें उसे एक बालक देख पड़ा। वह बालक काँसीकी सन्दूकमेंसे निकला, इस कारण उसका नाम उसनें 'कंस' रख दिया। वह उस बालकको बड़े प्यारसे पालने लगी। कंस धीरे धीरे बड़ा होकर खेलने-कूदने जाने लगा। वह स्वभावहीसे बड़ा क्रूर था, सो दूसरोंके लड़कोंको थप्पड़, लात, पत्थर आदिसे मारने-पीटने लगा। सत्य है क्रूर जन जहाँ जहाँ जाते हैं वे वहीं तपे हुए लोहेके गोलेकी तरह दूसरोंको कष्ट दिया करते हैं। जिन बालकोंको कंस मारता-पीटता था, उनके रोज रोजके रोने-धोने और कंसकी शैतानीको देखकर मन्दोदरी बड़ी दुखी हुई। आखिर बहुत ही तंग आकर उसने कंसको घरसे निकाल दिया। कंस कौशाम्बीसे चलकर सौरीपुर पहुँचा। वहाँ वह वसुदेवका नौकर होगया। इस समय इस प्रकरणको यहीं छोड़कर इसीसे सम्बन्ध रखनेवाला कुछ थोड़ासा दूसरा प्रकरण यहाँ लिखा जाता है।

उस समय राजगृहमें त्रिखण्ड-चक्रवर्ती जरासंध राज्य करता था। सुरम्य नाम देशके प्रसिद्ध शहर पोदनापुरके राजा सिंहरथकी जरासंधके साथ शत्रुता थी। सिंहरथ सदा उससे प्रतिकूल रहता था। वह जरासंधके हृदयमें काँटेकी तरह चुभा करता था। उससे दुखी होकर एकदिन त्रिखण्डेश जरासंधने सभामें वैठे हुए वीरोंसे कहा—"सिंहरथ बड़ा ही दुष्ट है। वह मेरी आज्ञाको कुछ भी नहीं गिनता है—मैं उससे बड़ा तंग आगया हूँ। जो बहादुर वीर रणमें उसे वाँधकर मेरे पास लावेगा, उसे मैं अपना आधा राज्य देकर अपनी प्रिय पुत्री जीवद्यशा भी व्याह दूँगा।" यह कहकर उसने इसी आशयका एक एक पत्र और और राजोंके पास भी भेजा। एक पत्र समुद्रविजयके पास भी आया। वसुदेव इस पत्रको देखकर समुद्रविजयके पास गये। उन्हें भक्तिसे नमस्कार कर सिंहरथपर चढ़ाई करनेकी उनसे आज्ञा ली। इसके बाद वे कंसको साथ लिये चतुरंग-सेनासहित पोदनापुरकी रणभूमिमें जाकर दाखिल हुए। वीर-शिरोमणि वसुदेव सिंहके मूत्रकी भावना दिये गये—घोड़े जिस रथके जुते हुए हैं ऐसे रथपर सवार होकर दुर्गम संग्राममें आगे आगे बढ़ते गये। सिंहरथके साथ उन्होंने घोर युद्धकर उसकी सब सेनाको मारडाला। इस तरह उन्होंने दुष्ट सिंहरथको पराजित कर कंससे उसके वाँध लेनेको कहा। इसके बाद वे सिंहरथको जरासंधके सामने लाकर नमस्कार कर बोले—प्रभो, यह आपका

शत्रु सिंहरथ आपके सामने उपस्थित है। त्रिखण्डाधीश जरासंधने सन्तुष्ट होकर वसुदेवसे कहा—महाभाग, तूने आज चन्द्रमासे भूपित आकाशमंडलकी तरह सारे यादव-वंशको भूपित कर दिया।:सूरज जैसे कमलोंको विकसित करनेमें समर्थ है उसी तरह इस कार्यमें तुझसे शूरवीर ही समर्थ थे। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मैं तुझे अपना आधा राज्य और जीवद्यशा पुत्रीको, जो कलिन्दसेनामें जिसने उत्पन्न हुई और अपनी सुन्दरतासे देवाङ्गनाओं जीत लिया है, देनेको तैयार हूँ। तू इसे स्वीकार कर। जीवद्यशामें कुछ ऐब था। उसकी वसुदेवको मालूम थी। इसलिए उस चतुरने जरासंधको नमस्कार कर कहा—महा-राज, आपके वलवान् शत्रुको मैंने नहीं वाँधा है, किन्तु मेरे इस नौकर कंसने वाँधा है। इसलिए पुरुषार्थसे प्राप्त किये दूसरेके यशोधनको मैं नहीं छीनना चाहता। आप जो कुछ देना चाहते हैं वह सब इसे दीजिए। कार्य और अकार्यके विचार करनेमें सत्पुरुष कभी मोहको प्राप्त नहीं होते। जरासंधने तब कंसकी ओर देखकर उससे उसके वंशका परिचय देनेकी इच्छा प्रगट की। कंस बोला—"देव कौशाम्बीमें मन्दोदरी नाम कलालिन रहती है। वही मेरी माता है। मेरा स्वभाव तीव्र होनेके कारण मैं अपने खेल-कूदके साथियोंको वड़ी तकलीफ दिया करता था, उन्हें मार-पीट भी देता था। लोगोंने उसके पास जाकर मेरी वे सब शिकायतें कीं। रोज रोजके मेरे इन लड़ाई-झगड़ोंसे अत्यन्त तंग आकर मुझे उसने घरसे निकाल

दिया। वहाँसे चलकर मैं सौरीपुर आगया और यहाँ इन महाभागका शरण लाभकर धनुर्विद्याका अभ्यास करने लगा। इसके बाद आपकी आज्ञा पाकर जब ये युद्धके लिए तैयार हुए तब इनके साथ मैं भी गया। युद्धमें आपके शत्रुपर विजय प्राप्तकर मैंने उसे बाँध लाकर आपके सामने हाजिर किया।" जरासंधने यह सब सुनकर उसके चेहरेकी ओर देखा। देखकर उसने मनही मन कहा—ऐसा तेजस्वी वीर नीच-कुलमें नहीं पैदा हो सकता। इसे अवश्य क्षत्रिय होना चाहिए। लोगोंका भव्य चेहरा ही उनके कुलादिकका परिचय दे देता है। और क्षत्रियोंके सिवा ऐसी वीरताका काम दूसरोंसे बन भी नहीं सकता। इतना विचार कर जरासंधने उसी समय अपना नौकर कौशाम्बीमें मन्दोदरीके पास भेजा। मन्दोदरी उस नौकरको देखकर मनमें बड़ी घबराई। उसने सोचा—जान पड़ता है उस पापीने वहाँ भी कुछ न कुछ बखेड़ा किया है। वह उस सन्दूकको लेकर राजाके पास पहुँची और उसे राजाके सामने रखकर बोली—महाराज, कंस मेरा लड़का नहीं, किन्तु इस सन्दूकका है। मुझे यह सन्दूक नदीकी धारमें बहती हुई मिली थी। इस काँसीकी सन्दूकमेंसे यह निकला, मैंने इसका नाम भी इसी कारण कंस ही रख दिया था। मैंनें इसको कुछ दिनोंतक पाल-पोसकर बड़ा किया। बालपनसे ही यह बड़ा दुष्ट था। लोगोंके बाल-बच्चोंको मारा-पीटा करता था। लोकनिन्दाके

डरसे तब मैंने इसे अपने घरसे निकाल दिया। यह सब सुनकर जरासंधने उस संदूकको खोला। उसमें एक पत्र निकला। उसमें लिखा हुआ था—" राजा उग्रसेनकी रानी पद्मावतीसे इसका जन्म हुआ है। पिताने अपने लिए इसे कष्टका कारण समझकर छोड़ दिया।" कंसका यह हाल सुनकर त्रिखण्डाधीश जरासंधको बड़ी खुशी हुई। फिर उसने बड़े ठाटके साथ कंससे जीवद्यशाकी शादीकर कहा—मेरे इतने बड़े राज्यका तुम जो हिस्सा पसन्द करो उसे अपनी खुशीसे लेलो। कंसने जब सुना कि मेरे पिताने मुझे नदीमें बहा दिया था, तब उसे उग्रसेन पर बड़ा क्रोध आया। उसीका बदला चुकानेके अभिप्रायसे उसने जरासंधसे मथुराका राज्य ले लिया। इसके बाद उसने अपने पितासे युद्ध किया जब उग्रसेनकी सेनाका बल घट गया और वह भागी तब कंसने हाथीके महावतको मारकर उसपर बैठे हुए उग्रसेनको पकड़ लिया और उनकी रानी पद्मावतीसहित उन्हें नागपाशसे बाँधकर लोहके पींजरेमें डाल दिया। और उस पींजरेको उसने शहर बाहरके फाटकपर रखवा दिया। वनमें उत्पन्न हुआ अग्नि जैसे वनहीको जला डालता है कुपुत्र उसी तरह अपने पिताको ही जला डालनेवाला होता है। पिताका राज्य पाकर कंस एकबार बड़े गौरवके साथ वसुदेवको मथुरामें लाया। कंसने इसके पहले अपने मामाकी लड़की देवकीको भी वहीं मँगवा लिया था। वह सुन्दरतामें

देवाङ्गना जैसी थी। इसके बाद उसने बड़े उत्सवपूर्वक देवकीका ब्याह वसुदेवसे कर दिया। वसुदेव देवकीके साथ मनचाहा सुख भोगते हुए सुखके कारण जिनप्रणीत धर्मका पालन करने लगे। उनके दिन बड़े आनन्दसे बीतने लगे।

अपने भाईके द्वारा ही पिताका इस प्रकार अपमान देखकर कंसके छोटे भाई अतिमुक्तकको बड़ा वैराग्य हुआ। वे दीक्षा लेकर मुनि होगये। जिसे देवता पूजते हैं उस जिन-प्रणीत कठिन तपको वे करने लगे। एक दिन वे आहार करनेको मथुराके राजमहलमें गये हुए थे। उस समय जवानीके मदसे मस्त हुई कंसकी रानी जीवद्यशा देवकीका वस्त्र लिये अतिमुक्तक मुनिके पास आई और मधुर मधुर मुसक्याती हुई बोली—योगिराज, इस वस्त्र द्वारा देवकी अपने मनोगत भावोंको आपपर जाहिर करती है। जीवद्यशाकी यह हँसी देखकर उन्हें क्रोध हो आया। वे बोले—अरी ओ मूर्ख, ऐसी हँसी करके क्यों वृथा ही पाप बाँधती है? सुन, जिस देवकीकी तू दिल्लगी उड़ा रही है थोड़े दिनों बाद उसीका पुत्र तेरे पतिकी जान लेगा। मुनिके वचनोंको सुनकर जीवद्यशाने क्रोधके मारे उस वस्त्रके दो टुकड़े कर डाले। मुनि बोले—और सुन, जैसे तूने इस वस्त्रके दो टुकड़े कर डाले हैं उसी तरह देवकी-का पुत्र तेरे पिताके दो टुकड़े करेगा। इसके बाद जीवद्यशा उस वस्त्रको जमीनपर डालकर पाँवोंसे रौंदने लगी। यह देखकर मुनि बोले, इसी तरह देवकीका पुत्र भी तीनखंड पृथ्वीको

पादाक्रान्त करेगा। इस प्रकार होनहार कहकर भविष्यवेत्ता अतिमुक्तक मुनि आहार किये विना ही लौट गये। जो मूर्ख पुरुष अभिमानसे मस्त होकर तपस्वी साधुओंको कष्ट देते हैं वे फिर पापके उदयसे अत्यन्त दुस्सह दुःखोंको भोगते हैं। इस लिए जो जिनप्रणीत तत्वके जानकार विद्वान् लोग हैं उन्हें कभी अभिमान न करना चाहिए। जीवद्यशा मुनिकी इन बातोंको सुनकर बड़ी दुखी हुई। उसने जाकर वे सब बातें अपने स्वामीसे कह दीं। अपनी प्रिया द्वारा उन सब बातोंको सुनकर मौतसे डरे हुए कंसने सोचा–मुनिके वचन तो कभी झूठे नहीं हो सकते, तब इसके लिए मुझे कोई उपाय करना ही चाहिए। यह सोचकर वह सुदीर्घ समयतक जीनेकी आशा कर वसुदेवके पास गया और नमस्कार कर बोला–हे प्रभो, हे सत्यवचनरूप समुद्रके बढ़ानेवाले चन्द्रमा, जब मैंने सिंहरथको युद्धमें बाँधा था तब आप पुण्यात्माने मुझे एक 'वर' दिया था। हे देव, उसकी मुझे अब जरूरत है। आप उसे याद कर कृपाकर दीजिए न? प्रभो, मेरी स्त्रीसे कष्ट दिये गये अभिमानी अतिमुक्तक योगीने निर्मयाद वचनों द्वारा कहा है कि–"तेरा पति देवकीके पुत्रसे मारा जायगा।" इसलिए मैं उससे उत्पन्न पुत्रोंको मार डालना चाहता हूँ। मुझे वचन दीजिए कि प्रसूतिके समय उसे आप मेरे घरपर भेज दिया करेंगे। सच है आशावान् प्राणी दूसरोंके दुखोंको नहीं देखता।

वह दुर्जन राक्षसकी तरह सदा अपना स्वार्थ-मतलव ही देखा करता है। वज्रकी साँकलसे वाँधे हुए सिंहकी तरह वसुदेव वचनरूपी साँकलसे वँध गये और उन्हें फिर कंसका कहना स्वीकार कर लेना ही पड़ा। यह सव हाल सुनकर देवकी वड़ी दुखी हुई। वह वसुदेवसे वोली—नाथ, आपके और वहुतसी स्त्रियाँ हैं और उनसे पैदा हुए पुत्रोंकी भी कमी नहीं है। तव आपके लिए तो कोई दुःखकी वात नहीं। दुख है मुझे—क्योंकि एक तो प्रसूतिका ही कितना कष्ट होता है, उसे मैं अच्छी तरह जानती हूँ। दूसरे मेरी आँखोंके सामने मेरे ही पुत्र शत्रु द्वारा मारे जायँगे। पुत्रोंके इस दुःखको नाथ, मैं न सह सकूँगी। इसलिए मुझे आज्ञा दीजिए, जिससे मैं जिनदीक्षा ग्रहण करलूँ। हाय, घर-वास वड़ा ही दुःखरूप है। सुनकर वसुदेव देव-कीसे वोले—प्रिये, यदि मैं कंसको अपने पुत्र मारने न देता हूँ तो मेरी प्रतिज्ञा टूटती है और मारने देता हूँ तो दुस्सह दुःख उठाना पड़ता है। इससे तो उत्तम यह है कि हम तुम दोनों इन पञ्चेन्द्रियके विषयोंको छोड़कर सवेरे जिनदीक्षा ग्रहण करलें। फिर दुष्ट कंस किसके पुत्रोंको मारेगा? प्रिये, ऐसा करनेसे मुझे कुछ दुःख न होगा। इस प्रकार निश्चय कर वे उस दिन घरहीमें सुखसे रहे। दूसरे दिन भाग्यसे अतिमुक्तक मुनि इन्हींके घर आहारके लिए आगये। उन्हें देखते ही देवकी और वसुदेव वड़ी भक्तिसे उठकर उनके सामने गये और वारवार नमस्कार कर नवधा भक्तिके साथ

उन्होंने उन्हें प्रासुक आहार कराया । आहारके बाद आशी-र्वाद देकर मुनि वहीं विराज गये । उन्हें बड़े प्रेमसे नमस्कार कर वसुदेव और देवकीने पूछा—प्रभो, हमें दीक्षा मिल सकेगी या नहीं ? जिनप्रणीत तत्वके जाननेवाले ज्ञानी मुनिने कहा—इस देवकी रानीके सात पुत्र निश्चय करके होंगे । उनमें तद्भव मोक्षगामी छह पुत्र तो पुण्यसे दूसरे स्थानपर पलकर बड़े होंगे और अन्तमें वे सब जन्म-जरा-मृत्युरहित मोक्षका सुख प्राप्त करेंगे । और सातवाँ जो कृष्ण नाम पुत्र होगा, वह नवमा नारायण होगा । वह कंस और जरासंधको मारकर त्रिखण्डेश—अर्द्धचक्रीका पद प्राप्त करेगा । इतना कहकर अतिमुक्तक मुनि अपने आश्रमको चले गये । इस भविष्यको सुनकर वसुदेव और देवकीको बड़ा सन्तोष हुआ ।

इसके बाद कुछ काल बीतनेपर देवकीने तीन बारमें चरम-शरीरी तीन श्रेष्ठ युगल प्रसव किये । इन्द्रकी आज्ञासे नैगम नाम देव उन युगलोंको भद्रिलपुरमें अलका नाम एक महाजन स्त्रीके यहाँ रख आया और उसके मरे हुए युगलोंको उसने छुपी रीतिसे देवकीके यहाँ लाकर रख दिया । उन मरे पुत्रोंको देखकर कंसने मनही मन कहा—बेचारे ये मुर्दे मुझे क्या मारेंगे ? मुनिका कहा झूठ हुआ । इसपर भी उसके मनमें थोड़ासा खटका—भय बना ही रहा । उसने निर्दयतासे उन मरे युगलोंको भी शिलापर दे मारा । मूर्खोंकी चेष्टाको धिक्कार है ।

इसके कुछ समय बाद देवकीके फिर गर्भ रहा। जिन निर्नामिक नाम मुनिका पहले जिकर आगया है, वे अबकी वार महाशुक्र नाम स्वर्गसे आकर देवकीके गर्भमें आये। देवकीने अवकी बार सातवें महीनेमें ही और अपने ही घरपर लक्षण युक्त और शत्रुओंका नाश करनेवाले नवमें कृष्ण नाम नारायणको सुखसे प्रसव किया। वसुदेव और बलदेवने देवकीके साथ विचार कर निश्चय किया कि इस बालकका पालन-पोषण नन्द नाम ग्वालके यहाँ होना अच्छा है। ऐसा करनेसे कंसको इस बातका पता भी न पड़ेगा। इसी निश्चयके अनुसार वसुदेव और बलदेव रातहीको उस बालकको छत्रीकी आड़में छुपाये हुए अपने महलेसे निकले। पुण्ययोगसे उस अँधेरेमें इन्हें प्रकाशकी भी सहायता मिल गई। पुरदेवी, जिसके सींगोंपर दीपक जल रहे हैं ऐसे बैलका रूप लेकर इनके आगे आगे होकर चलने लगी। पुण्यसे प्राणियोंका कौन उपकार नहीं करता! ये दोनों थोड़ी देर बाद शहर किनारेके फाटकपर पहुँचे। देखते हैं तो फाटकके किंवाड़ बन्द हैं। परन्तु आश्चर्य है कि उस बालकके पाँवोंका स्पर्श होते ही वे किंवाड़ भी उसी समय खुल गये। जैसा पहले जन्ममें किया है उसके अनुसार सभी साधन अपने आप ही मिल जाते हैं। दरवाजेपर ही उग्रसेनका पींजरा रक्खा हुआ था। उन्होंने किंवाड़ खुलते देखकर कहा—इतनी रातमें दरवाजेके किंवाड़ किसने खोले हैं? सुनकर

बलदेव बोले-महाभाग, आप जरा चुप रहिए। ये किंवाड़ उस महात्माने खोले हैं जो आपको इस बन्धनसे मुक्त करे-गा। सुनकर उग्रसेन बोले-'एवमस्तु'। इसके बाद उन्होंने-'चिरं जीयात्' कहकर उस बालकको आशीर्वाद दिया। यहाँसे आगे इन्हें बीचमें यमुना नदी पड़ी। बालकके पुण्यसे यमुनाने भी उन्हें जानेको रास्ता दे दिया। आश्चर्य है—जड़ाशय (मूर्ख—नदीपक्षमें जलसे भरी) नदीने भी इन्हें जानेको रास्ता दे दिया। पुण्यवानोंकी कौन सहायता नहीं करता। इससे उन्हें बड़ा अचंभा हुआ। वे नदी लाँघकर आगे बढ़े। साम्हने ही इन्हें नन्दगोप आता दिखाई दिया। वह उसी समय पैदा हुई अपनी लड़कीको हाथमें लिये हुए आ रहा था। उसे देखकर इन्होंने पूछा—भाई, इतनी रातमें तुम कहाँ जा रहे हो? नन्द उन्हें प्रणाम कर बोला—प्रभो, आपकी चाक-रनी मेरी स्त्रीने पुत्रके लिए इस पुरदेवीकी चन्दन, फूल वगैरहसे पूजा की थी; पर आज रातको पुत्रकी जगह उसके यह पुत्री हुई। उसने क्रोधित होकर मुझसे कहा—लो, इस लड़कीको पीछी देवीकी भेंट कर आओ। मुझे उसकी इस कृपाकी जरूरत नहीं। इसलिए मैं उसके कहनेके माफिक इस लड़कीको देवीके यहाँ रख आनेको आया हूँ। यह सुनकर वसुदेव और बल-देवको बड़ी खुशी हुई। इसके बाद उन्होंने नन्दसे अपना सब हाल कहकर कहा—भाई, इस होनेवाले त्रिखण्डेश बाल-कको तो तुम लो और अपनी कन्याको हमें देदो।

ऐसा कहकर उन्होंने उस बालकको नन्दके हाथोंपर रख दिया और आप उस लड़कीको लेकर छुपे हुए मथुरामें आगये। लड़कीको उन्होंने देवकीको सौंप दिया। पुण्यवानोंको सुबुद्धि झट पैदा हो जाती है।

उधर नन्द भी उस पुत्रको लेकर अपने घर पहुँचा। उसने अपनी स्त्रीसे कहा—प्रिये, यह लो, देवताने तुम्हारी भक्तिपर खुश होकर तुम्हें यह श्रेष्ठ पुत्र-रत्न दिया है। यह कहकर नन्दने उस बालकको यशोदाकी गोदमें रख दिया। उस श्रेष्ठ लक्षणयुक्त सुन्दर बालकको देखकर यशोदा तो मुग्ध हो गई। वह खुश होकर बोली—सचमुच देवताने मुझपर प्रसन्न होकर ही यह पुत्र दिया है। वह बड़े प्यारेसे उसका लालन-पालन करने लगी। भोली स्त्रियोंके मनमें कोई विशेष विचार पैदा नहीं होता?

इधर दुष्ट कंस देवकीके पुत्री हुई सुनकर उसी समय उसके घरपर आया। लड़कीको देखकर उस निर्दयीने अपने हाथोंसे उस बेचारीकी नाक काट डाली। दुष्ट पुरुष दुष्कर्म करनेमें सदा तत्पर रहते हैं। मोहवश होकर देवकीने उस लड़कीका भी लालन-पालन किया और उसे बड़ी की। माता अपनी लड़कीका हित ही करती है। जब वह लड़की बड़ी होकर जवान हुई और उसने अपनी नाक कटी देखी तब उसे बड़ी उदासीनता हुई। फिर वह सुव्रता नाम आर्यिकाके पास जिनदीक्षा लेगई। एक सफेद वस्त्र पहरे वह

विन्ध्यपर्वतके घोर जंगलमें जिनभगवान्‌का हृदयमें ध्यान करती हुई कायोत्सर्ग तप करने लगी । वह मेरुके समान ध्यानमें स्थिर खड़ी हुई थी। भीलोंने उसे कोई देवता समझ-कर उसकी फूलोंसे पूजा की । पूजा करके भील लोग तो चले गये । इसनेमें एक सिंहने आकर उसे खा लिया। वह मरकर तपसे स्वर्ग लोक गई । सिंहने उसके सारे शरीरको खा लिया था, पर उसके हाथोंकी सिर्फ तीन उँगलियाँ वच गई थीं । उस देशके भीलोंने उन उँगलियोंको देवता समझ पूजा । कुछ दिनोंमें वे उँगलियाँ नष्ट होगईं तो उन्होंने लोहे और लड़कीका उँग-लियोंकेसा आकार वनाकर और उसकी अपने अपने गाँवोंमे स्थापना कर वे उसे पूजने लग गये । उन मूर्खोंकी चलाई वह त्रिशूल-पूजा आज भी होती देखी जाती है ।

उधर नन्दके घरमें कृष्णका यशोदा तथा और और अड़ोस-पड़ोसमें रहनेवाली ग्वालिनोंके हाथों द्वारा वड़े लाड़-प्यारसे लालन-पालन होने लगा । बढ़ता हुआ वह वालक कृष्ण पुण्यसे कामरूपी वृक्षके पौधेके समान शोभा पाने लगा। ग्वालि-नोंके मनरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाला वह वाल-सू-रज कालेरंगके मणिके समान जान पड़ने लगा । (कृष्णका श्यामवर्ण प्रसिद्ध है।) इधर कृष्ण तो दिन दिन वढ़ता हुआ अपने नये नये खेलोंसे लोगोंसे मनको मोहने लगा। और उधर कंसकी राजधानी मथुरामें नक्षत्रपात, कंप, दिशादहन, उल्का-आदि भयंकर उपद्रव होने लगे । इन उत्पातोंसे

कंस डरा। उसने वरुण नाम निमित्तज्ञानीको बुलाकर पूछा—आप होनहारको जान सकते हैं, तब बतलाओ कि ये जो उपद्रव हो रहे हैं इनका क्या फलाफल है? निमित्तज्ञानीने साररूपमें यह कहा कि राजन्, तुम्हारा महान् शत्रु उत्पन्न होगया है। निमित्तज्ञके वचन सुनकर कंस बड़ा चिन्तातुर और दुखी हुआ। भयंकर शत्रुके पैदा होनेपर किसे चिन्ता नहीं होती। कंसको चिन्तासे घिरा देखकर वे पूर्व जन्मकी सातों देवियाँ, जो कंसके पूर्वजन्ममें वसिष्ठमुनिको तपके प्रभावसे सिद्ध हुई थीं, उसके पास आईं और बोलीं—प्रभो, हम आपकी दासियाँ हाजिर हैं। बतलाइए, हम आपकी क्या सेवा करें? उत्तरमें कंसने कहा—बड़ा अच्छा हुआ जो इस समय तुम आगईं। अच्छा अब जाओ, और जहाँ मेरा शत्रु पैदा हुआ हो उसे जानसे मार डालो। उन्होंने विभंगावधिज्ञान द्वारा कंसके शत्रु कृष्णको जान लिया। उनमेंसे पहले पूतना नाम देवी यशोदाका रूप लेकर नन्दके घर गई और अपने स्तनोंमें विष रखकर कृष्णको दूध पिलाने लगी। इतनेमें किसी दूसरी देवीने उस पूतनाके स्तनोंमें इतनी सख्त तकलीफ पहुँचाई कि उसे न सह सकनेके कारण पापिनी पूतना, प्रभातकी ताड़ना पाकर नष्ट हुई रात्रिकी तरह भाग खड़ी हुई। दूसरी देवी गाड़ी-कासा रूप धारणकर कृष्णके मारनेको दौड़ी। कृष्णने उसे पाँवोंकी ठोकरोंसे मार भगाया। एक दिन यशोदा कृष्णकी

कमरमें रस्सी बाँधकर पानी भरने चली गई। उसके पीछे कृष्ण अपनी बाल-सुलभ चंचलतासे उसे निकाल 'मा' 'मा' पुकारता हुआ लोगोंके मनको हरने लगा। उस समय दो देवियाँ बड़े ऊँचे अर्जुन वृक्षका रूप लेकर कृष्णको मारनेके लिए उसपर गिरने लगीं। कृष्णने उन दोनों वृक्षोंको जड़से उखाड़ कर तिनकेकी तरह कहीं फैंक दिया। इसके बाद एक देवी तालवृक्षका रूप लेकर कृष्णके सिरपर ताल फलोंको पटकने लगी। निर्भय कृष्ण उन फलोंको गेंदकी तरह हाथोंमें झेलकर रास्तेमें उनसे खेलने लगा। इसी समय एक दूसरी देवी गधीकी रूप लेकर कृष्णको मारनेको आई। कृष्णने उसे पाँवोंसे दाबकर उस तालवृक्षको उखाड़ा और निर्दयतासे उस गधी-देवीको ऐसा मारा कि वे दोनों देवियाँ चिल्लाकर बिजलीकी तरह भाग गईं। इसके बाद एक देवी घोड़ा बनकर कृष्णको मारनेके लिए आई। कृष्णने उसका गला पकड़कर मरोड़ दिया। कृष्णके हाथसे जान बचाकर वह देवी भी भाग गई। इस प्रकार निष्फल प्रयत्न होकर वे सब देवियाँ कंससे जाकर बोलीं-प्रभो, आपके शत्रुको मार डालनेकी हममें ताकत नहीं है। इतना कहकर वे सब बिजलीकी तरह अदृश्य होगईं। पुण्यवान् पुरुषका देवता भी कुछ नहीं कर सकते। रास्तेमें कृष्णकी ये सब लीलायें देखती हुई गाँवकी स्त्रियाँ नदीपर पानी भरने चली जा रहीं थीं। उन्होंने जाकर कृष्णकी माता यशोदासे कहा-यशोदा, तू तो कृष्णको बड़े जोरसे

बाँधकर पानी भरने चली आई और वहाँ वह वृक्ष, गधे, घोड़े आदि द्वारा कष्ट पा रहा है। इतना सुनते ही यशोदा बड़ी घबराई। वह 'बेटा' 'बेटा' चिल्लाती हुई झटसे दौड़ी आई और कृष्णको देखते ही उठाकर उसने छातीसे लगा लिया। घर लेजाकर बड़े आदर-प्यारसे वह उसे रखने लगी। सब देवतोंका जीतनेवाला कृष्ण एक दिन गलीमें खेल रहा था। उस समय क्रोधसे जले हुए कंसका भेजा हुआ अरिष्ट नाम देव कृष्णको मारने आया। वह दुष्टके समान एक ऊँचे बैलका भयानक रूप बनाकर महा क्रूर गर्जना करता हुआ कृष्णके मारनेको दौड़ा। कृष्णने उसकी गरदन पकड़कर मरोड़ दी। दाँतरहित हाथीकी तरह वह बातकी बातमें मुर्दासा हो गया। कृष्णके सामने ऐसा बलवान् बैल भी निर्बल बन गया, यह आश्चर्य है। सत्य है बलवानोंसे कष्ट पाकर कौन अभिमानको नहीं छोड़ देता। उस गर्जना करते हुए महाभीम बैलको कृष्ण द्वारा पराजित देखकर लोगोंमें बड़ा शोर मच गया। इस हल्लेको सुनकर यशोदा किसी भारी डरकी शंकासे 'क्या हुआ' 'क्या हुआ' करती दौड़ी आई। कृष्णको देखकर उसने कहा—बेटा, तू रोज रोज इन गधे, घोड़े, बैल आदिके साथ क्यों ऊधम किया करता है? रातदिनके इन झगड़े-टंटोंको अब तो छोड़दे। अरे तू राक्षस तो नहीं है?

कृष्णके इस प्रकार विक्रमकी सब ओर खूब चर्चा होने लगी। उसे सुनकर वसुदेव और देवकीकी कृष्णको देख-

नेकी बड़ी उत्कण्ठा हुई। वे एक दिन गोमुखी नाम उप-वासका बहाना बनाकर बलदेवको साथ लिये गोकुल गये। वहाँ जाकर उन्होंने कृष्णको देखा कि वह गरदन मरोड़े बैलको पकड़े हुए स्थिर खड़ा हुआ है। उन्होंने तब बड़े प्यारसे कुल-भूषण कृष्णको फूलोंकी माल पहराई और उसके विशाल भालपर तिलक कर उसे दिव्य भूषण पह-नाये। इतना करके देवकी उसकी प्रदक्षिणा करने लगी। उस समय पुत्र-मोहसे उसके स्तनोंसे दूध झरने लगा। वह दूध कृष्णके माथेपर पड़ा। बलदेव वगैरहने यह देखकर, कि कहीं सब बातें प्रगट न हो जाँय, इस डरके मारे, कहा- इसने आज उपवास किया है, जान पड़ता है, उसकी अशक्तिके कारण यह मूर्छित होगई है। इतना कहकर उन्होंने एक दूधका भरा घड़ा देवकीपर डाल दिया। उससे देवकीके स्तनोंसे दूध झरनेकी बात किसीको न जान पड़ी। बड़े पुरुष पुण्य-उद-यसे चतुर हुआ करते हैं। इसके बाद उन्होंने और बहुतसे ग्वाल तथा कृष्णको वस्त्र वगैरह प्रदान कर भोजन करा-या और इसके बाद स्वयं खा-पीकर वे मथुराको लौट आये।

कृष्ण दूजके चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगा। लोग उसे देखकर बड़ा प्यार करते थे। एकदिन खूब पानी बरस रहा था। गोकुलकी गौएँ उससे बड़ी घबरा रहीं थीं। यह देखकर श्रीकृष्णने गोवर्द्धन नाम पर्वत उठाकर उन गौओंपर उसका छातासा बना दिया। कष्टमें फँसे हुए जीवोंकी रक्षा

करना सत्पुरुषका काम ही है। इन सब बातोंसे कृष्णकी यशरूपी बेल सारे संसार-रूप मंडपपर छाकर खूब ही फैल गई।

मथुरामें जिनमन्दिरके पास पूरबकी ओर एक देवीका मंदिर था। एकदिन कृष्णके पुण्यसे उसमें नागशय्या, शंख, और धनुष ये तीन देव-रक्षित रत्न उत्पन्न हुए। उनसे डरकर कंसने नैमित्तिकको पूछा—इनकी उत्पत्ति भविष्यके संबंधमें क्या कहती है? सुनकर उसी वरुण नामके नैमित्तिकने कहा—सुनिए महाराज, जो इस नाग-शय्यापर सोकर एक हाथसे बड़े जोरसे शंख पूरेगा और दूसरे हाथसे धनुष चढ़ायगा वह आपका प्राण-हारी शत्रु है। इसमें कोई सन्देह: नहीं। और वही अर्द्धचक्री जरासंधको भी मौतके मुखमें भेजेगा। नैमित्तिकके वचनोंको सुनकर दुर्बुद्धि कंस चिर जीनेकी आशासे स्वयं इन तीनों बातोंके करनेको तैयार हुआ। पर उनमें वह सफलता लाभ न कर सका। पुण्यके विना असाध्य काममें किसीको सिद्धिलाभ नहीं होता। इस कामको न कर सकनेके कारण कंसको बड़ा अपमानित होना पड़ा। अपने ऐसे बड़े शत्रुको जाननेके लिए कंसने डौंड़ी पिटवाई कि "जो वीर शास्त्रानुसार इन तीनों बातोंको सिद्ध कर लेगा, उसे मैं अपनी लड़की ब्याह दूँगा।" इस समाचारको सुनकर बड़ी बड़ी दूरके राजे लोग आये। राजगृहसे चक्रिपुत्र सुभानु अपने भानु नाम पुत्रके साथ बड़े ठाट-बाटसे रवाना

हुआ । रास्तेमें उसने एक सरोवरपर ठहरनेका विचार किया । उस सरोवरमें गोदावन नाम एक महान् सर्प रहता था । ग्वालोंने सुभानुसे कहा—इस तालावका पानी कृष्णके सिवा कोई नहीं लेजा सकता है । यह सुनकर उसने गौकुलसे कृष्णको बुलाकर वहीं पड़ाव डाल दिया । समय पाकर कृष्णने सुभानुसे पूछा—आप कहाँ जा रहे हैं ? उत्तरमें सुभानुने कृष्ण-से कहा—मथुरामें जिनमंदिरके पास एक पूर्वदिग्देवीका मन्दिर है, उसमें नागसेज, धनुष और शंख ये तीन देवता-रक्षित महारत्न उत्पन्न हुए हैं । जो वीर-शिरोमणि नागसेजपर चढ़कर एक हाथसे तो धनुष चढ़ायगा और दूसरे हाथसे शंख पूरेगा, कंसराज उसे अपनी लड़की ब्याह देंगे । इस कामके लिए बहुतसे राजे लोग मथुरा पहुँच हैं और मैं भी वहीं जा रहा हूँ । सुनकर कृष्ण बोला—तो प्रभो, क्या हम लोग भी इस कामको कर सकेंगे ? सुभानुने कृष्णकी अलौकिक सुन्दरता देखकर मनमें विचारा—यह कोई साधारण बालक नहीं जान पड़ता । बड़ा ही पुण्यवान् महात्मा है । इसके बाद उसने कृष्णसे कहा—भैया, तुम्हें भी उस कार्यमें अवश्य शामिल किया जायगा । तुम हमारे साथ चलो । यह कहकर सुभानु कृष्णको साथ लिये मथुरा पहुँचा ।

नियत समयपर सब राज-गण उपस्थित हुए । क्रम क्रमसे वे नागसेज पर चढ़ने आदिके लिए तत्पर हुए । पर उनमेंसे एक भी सफल प्रयत्न नहीं हुआ । इसके बाद कृष्णकी पारी आई । वह स-

बके देखते देखते बड़ी निर्भयताके साथ नागसेजपर चढ़ गया और धनुष चढ़ाकर शंख भी उसने पूर दिया। उसके धनुष चढ़ाने और शंख पूरनेके बिजलीके समान भयंकर शब्दसे पृथ्वी काँप गई। पर्वत चल गये। समुद्रने मर्यादा छोड़ दी। डरके मारे बड़े बड़े वीरोंके प्राण मुट्ठीमें आगये। प्रजा बड़ी घबरा गई। सिंह, हाथी सदृश पशु भयसे इधर उधर भागने लगे। कृष्णकी यह वीरता देखकर किसी भावी शंकासे सुभानुने आँखोंके इशारेसे उसे चले जानेके लिए कह दिया। कृष्ण सुभानुका इशारा पाकर उसी समय गोकुलको चल दिया। कुछ लोगोंने जाकर कंससे कहा—महाराज, राजगृहके राजकुमार सुभानुने नागसेजपर चढ़कर धनुष चढ़ा दिया, और शंख भी पूर दिया। कुछ लोगोंने कहा—नहीं महाराज, यह सब काम नन्दके लड़केने किया है। कंस यह सब सुनकर भी अपने शत्रुको न जान पाया। उसने तब यह बात चलाई कि—जिस महा साहसीने यह काम किया है, वह किस कुलका है, किसका लड़का है, कहाँ रहता है और उसका क्या नाम है? मैं उसे अपनी लड़की ब्याहूँगा। वह जहाँ हो उसका पता लगाया जाय। इतना कहकर उस मूर्खने अपने नौकरोंको सब ओर ढूंढ़नेको भेजे। सत्य है पापियोंके मनमें कुछ और होता है और वचनमें कुछ और ही होता है।

इधर जब नन्दको जान पड़ा कि मथुरामें कृष्णने नागसे-ऊपर चढ़कर धनुष चढ़ा दिया और शंख भी पूर दिया। पुत्रके इस कर्मसे नन्द बड़ा घबराया। राजाके डरसे वह अपनी गौओंको लेकर कहीं अन्यत्र चल दिया। रास्तेमें एक जगह कंसकी आज्ञासे महल बनवाया जा रहा था। वहाँ एक बड़ा भारी पत्थरके खंभेको कुछ लोग उठा रहे थे। वह बहुत ही अधिक बजनी होनेसे उनसे न उठ सका। यह देखकर वीर कृष्णने उसे बातकी बातमें गेंदकी तरह उठा दिया। कृष्णकी इस वीरतासे वे लोग बड़े खुश हुए। उन्होंने वस्त्र वगैरह देकर कृष्णका बड़ा मान किया। लोग पुण्यवान्का मान करें इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। कृष्णको ऐसा महा पराक्रमी वीर जानकर नन्दको भी बड़ी खुशी हुई। वह मनमें यह विचार कर कि ऐसे पुत्रके रहते मुझे अब कोई भय नहीं है, पीछा गोकुल लौट गया और निडर होकर सुखसे रहने लगा। एक पुत्र द्वारा भी क्या पिताको सुख नहीं होता-होता है।

कुछ दिनों बाद कंसको यह ज्ञात होगया कि यह सब काम कृष्णने किया है। परन्तु फिर भी थोड़ा बहुत जो सन्देह खटकता रहता है वह भी दूर हो जाय, इसके लिए उसने नन्दसे आज्ञा की कि "महानाग नाम सरोवरके हजार दलवाले कमलोंको शीघ्र ही मँगवाओ।" यह समाचार लेकर एक सिपाही नन्दके पास पहुँचा। सिपाहीके द्वारा राजाका

यह फरमान सुनकर नन्दको बड़ा खेद हुआ। उसने कहा—राजे लोग तो प्रजाके पालन करनेवाले कहे जाते हैं, पर आज पापके उदयसे वे ही प्रजाके मारनेवाले होगये। इसके बाद उसने कृष्णसे कहा—बेटा, जाओ और महानाग सरोवरसे कमल लाकर अपने राजाको दो। पिताकी आज्ञा सुनकर कृष्णने कहा—पिताजी यह तो कोई बड़ी बात नहीं। आप चिन्ता न कीजिए। मैं अभी कमलोंको ले आता हूँ। यह कहकर कृष्ण चल दिया। नागसरोवरपर जाकर वह निर्भयतासे उसमें घुस गया। पानीमें कृष्णको उतरा देखकर उसमें रहनेवाला क्रूर नाग क्रोधसे फुँकार करता हुआ कृष्णको खानेको दौड़ा। उसकी चलती हुई दो जबानको देखकर कालसे भी कहीं वह भयंकर जान पड़ता था। जहरको उगलता हुआ उसका मुँह बड़ा विकराल हो रहा था। फणपरकी मणिके प्रकाशसे चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश हो गया था। आँखें उसकी दोनों लाल सुर्ख हो रही थीं। दांत उसके बड़े तीखे थे। दाढ़ उसकी बड़ी वक्र थी। देखकर यह भान होने लगता था कि प्राणोंका हरनेवाला वह काल तो यह नहीं है। ऐसे नागको अपने सामने आता देखकर सिंहके समान प्रचण्डबली और लक्ष्मीके होनेवाले भावी स्वामी कृष्णनें कमरसे पीला वस्त्र निकालकर और उसे पानीमें भिगोकर नागके सिरपर निर्भयतासे उस वस्त्रकी वज्रके समान मार मारी। कृष्णके पुण्यसे उस मारसे डरकर

वह नाग किसी बिलमें जाकर घुस गया। फिर बड़ी देरतक पानीमें खेल-कूद कर कृष्ण, कमलोंको शत्रु-कुलकी तरह उखाड़ कर ले आया। नन्दने उन कमलोंको कंसके पास भेज दिया। कंस उन कमलोंको देखकर बड़ा दुखी हुआ। जैसे किसीने उसके हृदयमें कील ठोक दी हो। अब उसे खूब निश्चय हो गया कि नन्दका लड़का ही मेरा शत्रु है। उसने सोचा-देखूँ वह क्षुद्र मेरे आगे कहाँ तक जीता रहता है? उस उद्धतको तो मैं बातकी बातमें कालके घर पहुँचा दूँगा। इस प्रकार विचारकर कंसने एकदिन नन्दके पास अपने सिपाहीके द्वारा कहला भेजा कि "शीघ्र ही यहाँ एक पहलवानोंका बड़ा भारी दंगल होनेवाला है। उसमें तुम भी अपने पहिलवानोंको साथ लेकर जल्दी आना।" दंगलका नाम सुनते ही नन्द अपने कृष्ण सरीखे महा पहलवानोंको साथ लिये बड़ी निर्भीकताके साथ गोकुलसे निकला। सिंहके ऐसा जिसका बल है उस पुत्रके रहते पिताको किसका भय। कृष्ण और उसके साथी ग्वाल-गण काले रंगके थे। रास्तेमें वे मस्त हुए शब्द करते चले आ रहे थे—जान पड़ता था काले मेघ गर्जना करते जा रहे हैं। उनमें लँगोट बाँधे हुए, चन्दनादिसे चर्चित और कान्तिसे जिसका शरीर चमक रहा है वह कृष्ण वीर-लक्ष्मीका स्वामीसा जान पड़ता था। वे सब लड़ाईकी इच्छासे ताल ठोकते हुए और आकाशमें उछल-कूद करते हुए निर्भयताके साथ मथुरामें आकर दाखिल होगये। उनके

परस्परके कोलाहलको सुनकर इसी समय रुद्रघोष नाम मद-मस्त हाथी खंभेको उखाड़कर भाग खड़ा हुआ। लोगोंको कष्ट पहुँचाता वह कृष्ण वगैरहके सामने दौड़ा। उस समय सिंहके समान निर्दय श्रीकृष्णने हाथीके सामने जाकर अपने बलसे उसका एक दाँत उखाड़ लिया और फिर उसी दाँतसे एक ऐसी जोरकी हाथीके मारी कि उससे वह उसी समय भाग गया। कृष्णने स्याद्वादियों द्वारा एक ही वाक्यसे जीते गये कुवादियोंकी तरह एक ही प्रहारसे उस हाथीको जीत लिया। उसकी इस वीरतासे सन्तुष्ट हुए ग्वालोंको कृष्ण, 'शहरमें घुसते ही पहले मुझे जय मिल गई' यह कहता हुआ कंसकी सभामें पहुँचा। सभामें कंसकी आज्ञासे चाणूरमल्ल आदि प्रसिद्ध पहलवान लड़नेकी इच्छासे पहलेहीसे आचुके थे। कृष्णको कंसकी इस दुष्टताका पता पड़ गया था। इस लिए वह बड़ी सावधानीसे अपने लोगोंके साथ एक ओर बैठ गया। कंसकी आज्ञा पाकर जब दोनों ओरके पहलवान लड़नेको तैयार हुए उस समय बलदेव छलसे कृष्णको लड़नेके लिए ललकार कर अखाड़ेमें उतरा। कपटसे कृष्णके साथ लड़ता हुआ बलदेव कृष्णके कानमें यह कहकर, कि कंसको मारनेके लिए बड़ा अच्छा समय उपस्थित हुआ है, चूकना नहीं, शीघ्र अखाड़ेसे बाहर होगया।

उस समय लँगोट बाँधे हुए कृष्णकी ओरके वीर ग्वालगण कठोर ध्वनि करते हुए यमके समान जान पड़ने लगे।

नाना बाजोंके शब्दोंके साथ रंगभूमिमें वे उछलने लगे—कूदने लगे—जान पड़ा वे अपने पाँवोंके आघातसे पृथ्वीको नीचेकी ओर दबा रहे हैं। कृष्णवर्ण, अत्यन्त ऊँचे और शरीर पर केसर-चन्दन लगे हुए वे वीरगण इधर-उधर घूमते हुए हाथीके समान जान पड़ते थे। आवर्तन, निवर्तन, वल्गन, प्लुवन आदि नाना प्रकारकी कसरतोंसे वे बड़े उद्धतसे हो रहे थे। कृष्ण सरीखे वीर नायकको पाकर मानों उन्होंने संसारके सब पहलवानोंको नीचा दिखा दिया। इस प्रकार लड़नेकी इच्छा कर वे तैयार खड़े हुए थे। उधर कंसकी ओरके चाणूरमल्ल आदि बड़े बड़े पहलवान वीर भी अपने विरोधियोंसे लड़नेकी गर्जसे सजे हुए तैयार खड़े थे।

उस समय उस अनेक वीर पहलवानोंसे सुशोभित रंगभूमिमें वीर-शिरोमणि कृष्ण लँगोट बाँधकर उतरा। उस समयकी उसकी शोभा देखते ही बनती थी। उसने पहले अनेक पहलवानोंको हराकर विजयलाभ किया था। उसकी कमरमें बँधा हुआ पीला वस्त्र एक सुन्दर भूषणसा जान पड़ता था। अपने चमकते दिव्य तेजसे वह दूसरा सूरजसा था। उसका शरीर वज्रसरीखा और बड़ा उन्नत था। उछलता हुआ और नीचे गिरता हुआ वह बिजली गिरनेके समान दिखाई देता था। सिंहनाद करता हुआ वह ठीक सिंहसा भासता था। क्रोधरूपी अग्निसे वह जल रहा था।

अखाड़ेमें उतरकर कृष्णने चाणूरमल्लको लड़नेके लिए ललकारा। कृष्णकी ललकार सुनते ही वह अखाड़ेमें उतरा। सामने आते ही कृष्णने उसे, हाथीको उठाये हुए सिंहकी तरह उठाकर बड़े जोरसे जमीनपर देमारा और देखते देखते उसे आटेकी तरह पीस दिया। वेचारा उसी समय कालके घर पहुँच गया।

अपने मल्लको मरा देखकर कंसके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। मौतकी प्रेरणासे वह स्वयं तव कृष्णके मारनेको उठा। उसे सामने आता हुआ देखकर महाबली कृष्णने एक काँसेके वरतनकी तरह उसकी टाँग पकड़कर क्रोधसे उसे खूव आकाशमें घुमाया—मानों वह उसकी यमके लिए वालि दे रहा है। इसके वाद कृष्णने उसे ऐसा जमीनपर पटका कि वह उसी समय मर गया। वातकी वातमें कृष्णने कंसको मारडाला। राग-द्वेषकर कौन जन नष्ट नहीं हो जाता। इस लिए हे भव्यजनो, राग-द्वेषको दूरहीसे छोड़कर सुख देनेवाले जिनप्रणीत धर्ममें अपनी बुद्धिको लगाओ।

कृष्णकी इस वीरतासे देवता लोग भी बड़े खुश हुए। उन्होंने कृष्णका जयजयकार कर उसपर फूलोंकी वर्षा की। उस समय आनन्दसे फूले हुए वलदेवने भी कृष्णकी जय-ध्वनि कर बड़े प्यारसे सबके देखते हुए कृष्णको छातीसे लगा लिया। वसुदेवने तब मौका पाकर सब राज-गणके बीचमें खड़े होकर कहा—"राज-गण, जिस वीर-शिरोमणिने

अपनी वीरतासे आप लोगोंको आश्चर्यमें डाला है वह शूरवीर कृष्ण मेरा पुत्र है । पृथ्वीसे उत्पन्न हुए रत्नकी तरह मेरी प्रिया देवकीसे इस नर-रत्नकी उत्पत्ति हुई है । शत्रुके भयसे इसका लालन-पालन बड़ी गुप्त रीतिसे गोकुलनिवासी नन्द ग्वालके घर हुआ है । यह शत्रु-कुलका नाश करनेवाला, मित्ररूपी कमलोंको सूरजकी तरह प्रफुल्ल करनेवाला और पृथ्वीके महा भारको उठा लेनेमें एक श्रेष्ठ बैलके समान-है ।" इस प्रकार सब राजोंको कृष्णका परिचय कराकर वसुदेवने उसे स्वीकार किया । इस मनोहर सम्बन्धको सुनकर सब राज-गणने वसुदेव और कृष्णको बड़ी भक्तिसे नमस्कार किया और उत्तम उत्तम वस्त्र, आभूषण, आदिसे उनका सम्मान किया । पुण्यवानका आदर कौन नहीं करता । इस प्रकार अनन्त यश लाभकर महामना कृष्ण जिन-चरण-कमल-भ्रमर उग्रसेन महाराजके पास गया । बड़े मधुर शब्दोंसे उन्हें उसने धीरज दिया और बन्धन-मुक्तकर फिर उत्सवके साथ पीछा उन्हें मथुराके राज्य सिंहासनपर बैठा दिया । सत्य है सत्पुरुष कल्पवृक्षके समान सदा परोपकार करनेवाले ही हुआ करते हैं ।

इसके बाद श्रीकृष्णने अपने पिता नन्द तथा अन्य ग्वाल-गणको वस्त्र, धन-दौलत आदि देकर उनका सत्कार किया । उनके, दरिद्रता आदि कष्टको दूर किया । प्रिय और मधुर वच-नोंसे पिताको उसने मंगलवाद दिया कि "जबतक मैं सब शत्रुओंका जड़मूलसे नाश न करदूँ तबतक मेरा हित करने-

वाले आप लोग सुखसे रहें।" इस प्रकार उनका खूब आदर-सत्कारकर कृष्णने उन्हें विदा किया। सत्पुरुष विना कारण ही जव परोपकार करते हैं तब जिन्होंने उनका जन्मसे लालन-पालन किया है, उन्हें वे कैसे भूल सकते हैं। इसके वाद कृष्ण अपने पिता वसुदेव, भाई बलदेव तथा और और प्रिय बन्धुओंके साथ वड़े ठाटसे सौरीपुरके लिए रवाना हुआ। वन्दीजन उसका यश गाते हुए जा रहे थे। उसके चारों ओर सेना चल रही थी। कृष्णके आगमन समाचार सुनकर प्रजाने सौरीपुरको खूब सजाया। घर-घरपर धुजायें टाँगी गईं। सारे शहरमें आनन्द-उत्सव होने लगे। कृष्णने पहुँचकर समुद्रविजय आदि गुरुजनको वड़ी भक्तिसे नमस्कार किया। अव कृष्ण वड़े सुखसे रहने लगा। उत्सव-आनन्दके साथ उसके दिन बीतने लगे। जिनप्रणीत शुभ कर्म द्वारा उत्पन्न किया गया थोड़ा भी पुण्य जब अनन्त सुखको देता है तब जो मन-वचन-कायसे निरन्तर शुभ कर्म करते हैं उनके सुखका तो क्या ठिकाना है?

देवगण जिनके चरणोंको पूजते हैं, जो भव्यजनोंको मनचाही वस्तु देनेवाले और संसार-सागरसे पार करनेमें जो जहाजके समान हैं, जो वाल ब्रह्मचारी और जिनकी महिमा जग-विख्यात है, वे श्रेष्ठ केवलज्ञानसे प्रकाशित त्रिजद्गुरु नेमिजिन सत्पुरुषोंको मनोवांछित दो।

इति पंचमः सर्गः।

छठा अध्याय।

जरासंधकी मृत्यु और नेमिजिनका गर्भावतरण।

नेमिजिनको नमस्कारकर उनका चरित जिस प्रकार हुआ और उसे गणधरने जैसा कहा, उसीके अनुसार मैं भी कहता हूँ। बुद्धिवान् जन उसे सावधान होकर सुनें।

कंसके मर जानेसे जीवद्यशाको दावानलसे घबरा हुई हरिणीकी तरह बड़ा ही दुःख हुआ वह सब अलंकारोंको फैंककर कुकविके मुँहसे निकली हुई कथाकी तरह घरसे निकल गई। रास्तेमें वह गिरती-पड़ती अपने पिता जरासंधके पास पहुँची। उसे देखकर वह रोने लगी। उसे इस प्रकार दुखी देखकर जरासंधने कहा-बेटी, तू ऐसी दुःखी क्यों है? बतला तुझे दुःख देनेवाला कौन है? जीवद्यशा बोली-पिताजी, सुनिए। मैं सब हाल आपसे कहती हूँ। "वसुदेवका एक कृष्ण नाम लड़का है। वह बड़ा बलवान् है। जन्मसे उसका लालन-पालन बड़ी छुपी रीतिसे नन्दके यहाँ हुआ है। पिताजी, बचपनमें ही उसं कालके समान भयंकर मूर्तिने पूतना नाम देवीके स्तनोंको निर्दयतासे काटकर उसे भगा दिया। शकटका रूप धारण करनेवाली दूसरी देवीको उसने पावोंसे उछालकर हरा दिया। मायामयी वृक्षका रूप धारण करनेवाली देवीको उसने जड़से उखाड़ फैंक दिया। गधी नाम देवीको

उसने पाँवोंके नीचे दबाकर मसल दिया । दो देवियाँ उसकी चंचलता देखकर डरकर भाग गईं । उसने दो बड़े बड़े बैलोंकी गरदन मरोड़कर उन्हें जीत लिया । पानीकी बरसासे अत्यन्त घबराई हुई गौओंकी उसने स्वयं उठाये हुए गोवर्द्धन पर्वतको उनपर छत्रीसा खड़ाकर रक्षा करली । उसने नाग-सेजपर चढ़कर धनुष चढ़ा दिया और शंख भी पूर दिया । उसके शब्दसे भूतल चल-विचल होगया । जिसने अपनी बलवान् भुजाओंसे एक बड़े भारी खंभेको सहजमें उठाकर शूरवीरों द्वारा वस्त्र, आभूषण वगैरह लाभकर बड़ा भारी मान पाया; जिसने कालके सदृश बड़े भारी नागको जीतकर नाग-सरोवरसे सहस्रदल कमल प्राप्त किये; जिसने चाणूरमल्ल सरीखे भारी पहलवानको मौतके मुखमें फेंक दिया; उस बलवान, यादव-वंशकी कीर्ति फैलानेवाले कृष्णने, सिंह जैसे हाथीको मार डालता है उसी तरह आपके जमाईको रणभूमिमें मारडाला है । ” अपनी लड़की द्वारा यह सब हाल सुनकर जरासंध क्रोधरूपी आगसे तप गया । उसने उसी समय अपने पुत्रोंको बुलाकर यादवोंपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा देदी । पिताकी आज्ञा पाकर उसके मद-मस्त पुत्रोंने जाकर सौरीपुरको चारों ओरसे घेर लिया । इधर कृष्णकी ओरके समुद्रविजय आदि वीर योद्धा भी वीरश्रीसे विभूषित होकर हाथी, घोड़े, रथ और पैदल-सेनाको लेकर मथुराके बाहर निकले । दोनों सेनामें बड़ी देरतक घनघोर युद्ध हुआ । कितने

ही मर-कट गये । कितने कण्ठगत प्राण होगये । जो शूरवीर थे उन्होंने अपनी वीरता मरते दमतक बतलाई और जो कायर-डरपोंक थे वे युद्धभूमिको छोड़कर भाग गये । इस घोर युद्धमें कृष्णने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंको मार भगाकर जयश्री लाभ की । इस युद्धमें मारे गये वीर जो जिनभगवान्के सेवक थे वे तो संन्यास धारण कर स्वर्गमें गये और कितने दुर्बुद्धि आर्त्त-रौद्रध्यानसे रणमें जन-संहार कर पापके उदयसे दुर्ग-तिमें गये । इस युद्धमें हारकर जरासंधके लड़के सिंहके शब्दसे भागे हुए हाथीकी तरह भाग गये । अपने पुत्रोंको इस प्रकार अपमानित होकर आये हुए देखकर अबकी वार जरासंधने अपने अपराजित नाम पुत्रको लड़नेके लिए भेजा। क्रोधसे लाल आँखे किये हुए अपराजितने जल्दीसे सौरीपुर पहुँचकर उसे घेर लिया। उसने अबकी वार समुद्रविजय आदि यादव-वंशीय बड़े बड़े राजोंके साथ कोई ३४६ लड़ाइयाँ लड़ीं, पर तब भी उसे विजय न मिली । उसे भी आखिर युद्धभूमिसे अपमानित होकर भाग जाना पड़ा । पुण्यहीनोंको लक्ष्मी और जय कहाँ ? इसलिए बुद्धिवानोंको पुण्यके कारण जिनप्रणीत दान, पूजा, व्रत, उपवास आदि शुभकर्म कर पुण्यका संचय करना चाहिए ।

अपराजितको भी असफलता प्राप्त किये हुए लौटा देकर जरासंधने अबकी वार कालके समान कालयवन नाम पुत्रको लड़ाईपर भेजा । पिताकी आज्ञा पाकर कालयवन क्रोधसे

लाल आँखें करता हुआ बड़ी भारी सेनाके साथ यादवोंसे लड़नेको चला। जासूस द्वारा यह समाचार पाकर यादव-राजोंने इस विषयपर विचार करनेके लिए अपने मंत्रियोंकी एक सभा बुलाई। उसमें मंत्रियोंने कहा—महाराज, बलवानोंके साथ विरोध हो जानेपर दो तरह शान्ति हो सकती है। या तो शत्रुओंकी शरण चले जाना या देश त्याग देना। इसमें पहली वातका प्रतीकार हो सकता है, पर उसके लिए हमारे पास उचित साधन नहीं है। इसलिए हमें तो इस हालतमें देश-त्याग ही उचित जान पड़ता है। अपना कृष्ण भी अभी वालक है—युद्ध करने समर्थ नहीं है। इसलिए यह लड़ाई लड़नेका समय नहीं। इस प्रकार उन अनुभवी मंत्रियोंके वचनोंको सुनकर उनपर समुद्रविजय वगैरहने विचार किया। उन्हें मंत्रियोंका ही कहना उपयुक्त जान पड़ा। राजे लोग मंत्रियोंके वताये मार्गपर चलते ही हैं। कृष्णने जब मंत्रियोंकी यह सलाह सुनी तब उस वीर-शिरोमणिने उनसे कहा—हे देव, हे मथुराधीश, मैं जरूर वालक हूँ, पर तो भी समर्थ हूँ। वहुत कहनेसे लाभ क्या? पर आप मुझे छोड़कर देख लीजिए कि मैं अकेला ही चन्द्रमाके समान शत्रु-रूपी अंधकारका नाश कर डालता हूँ या नहीं? आपकी चरण-कृपासे मैं कार्य करनेमें वालक नहीं हूँ। इस प्रकार वोलता हुआ कृष्ण—जान पड़ा वह शत्रुरूपी हाथियोंके सामने सिंहके समान गर्जना कर रहा है। उसी समय वलदेवने

कृष्णसे कहा—इसमें कोई शक नहीं कि तू शत्रुओंके नाश करनेमें समर्थ है । इस समय त्रिलोकमें तेरे समान दूसरा मनुष्य नहीं है । किन्तु मेरे हितकारी वचन सुन । इस समय सिंह-सदृश तुझे शत्रुओंपर शान्ति ही धारण करना चाहिए । इस प्रकार युक्तिसे समझाकर बलदेवने आग्रहसे कृष्णको युद्ध करनेसे रोक दिया । बलवान् कृष्णको भी बलदेवने विचलित कर दिया ।

इस प्रकार निश्चय कर दूरदर्शी यादव-गण सौरीपुर, हस्तिनापुर और मथुराको छोड़कर पाण्डवोंके साथ चल दिये । उनके साथ उनका सारा परिवार, वीरगण, हाथी, घोड़े, रथ, धन-दौलत, हीरा-मोती, सेना आदि सभी उपयोगी सामग्री थी । उनके इस दल-बलके साथ चलनेसे पृथ्वी काँप उठी । वे निकलकर जब कुछ दूर चले गये तब कुलदेवीने उनकी रक्षाके लिए रास्तेमें आगकी एक बड़ी भारी ढेरी लगादी । उसमें सैकड़ो ज्वालायें निकलने लगीं । इस प्रकार यादवकुलकी रक्षाका उपाय कर देवीने दूसरी ओर मायामयी कुछ रोती हुई स्त्रियोंको बैठा दिया । वे रो-रोकर शोक करने लगी । उन स्त्रियोंमें स्वयं देवी भी एक बूढ़ी स्त्रीका रूप लेकर बैठ गई ।

जरासंधका लड़का कालयवन क्रोधित यमकी तरह यादवोंपर चढ़ाई करके आया । उसे जब मालूम हुआ कि यादव लोग मथुरा छोड़कर चले गये, तब उसने उनका पीछा

किया। वह उन रोती हुई स्त्रियोंके पास पहुँचकर देखता है तो एक बड़ी भारी आगका ढेर जल रहा है और कुछ स्त्रियाँ उसके आस-पास बैठी हुई बड़े जोर जोरसे रो रही हैं। हे यादवराज, हे सब राजोंमें श्रेष्ठ महाराज समुद्रविजय, हाय! आज तुम्हारी यह क्या कष्टदायक दशा होगई? हे प्रजापाल स्तिमितसागर, हे हिमवन् महाराज, हे विजय और अचल प्रभो, प्रजापालनमें धीर हे धारण और पूरण महाराज, हे अभिनन्दन राज, हे गुणोज्ज्वल वसुदेव, हे छल-कपटरहित बलदेव, हे पूतनाके शत्रु कृष्ण महाराज, हे उग्रसेन महाराज, हे देवसेन राजन्, गुणरूपी रत्नोंकी खान पृथ्वीके समान हे महासेन, हे महीनाथ, और सारी पृथ्वीका पालन करनेवाले हे पांडव-राज, हाय! आज आप नर-रत्नोंकी यह क्या दुखदाई हालत होगई? सब सुखोंके देनेवाले आप लोगोंको अब हम कहाँ देखेंगी? हाय! आज हमारी सब आशा नष्ट होगई। हम बड़ी दुखिनी होगईं। इस प्रकार वे स्त्रियाँ यादव-पाण्डवोंका नाम ले-लेकर महा शोक कर रहीं थीं। कालयवनको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। तब उसने उन स्त्रियोंके पास जाकर पूछा—तुम क्यों रोती हो? और कौन इस अग्निमें जल मरे हैं? यह सुनकर वह बूढ़ी देवी बोली—चक्रवर्ती जरासंधको अपनेपर क्रोधित देखकर और कोई शरण न देखकर यादव लोग अपने बाल-बच्चोंसहित इस आगमें गिरकर खाक होगये। जो सत्पुरुष परोपकारी होते हैं वे किसी न किसी

प्रकार दूसरोंका हित ही करते हैं। यह हाल सुनकर कालयवनने समझा कि शत्रुगण मेरे ही डरसे मौतके मुँहमें पड़े हैं। वह बड़े अभिमानके साथ पीछा लौटा। पिताके पास पहुँचकर उसने कहा—देव, आपके डरके मारे सब यादवगण अपने कुटुम्ब-परिवारसहित सूखे वृक्षकी तरह आगमें जलकर मर गये। जिनप्रणीत धर्मसे उलटा चलनेवाला जरासंध यह वृत्तान्त सुनकर बड़ा खुश हुआ। दुष्ट जन दूसरोंको दुख देनेमें ही खुश होते हैं।

इधर यादवगण, सेना और राज-ठाट-बाट सहित चलते हुए कुछ दिनोंमें समुद्रके सुन्दर किनारे पर पहुँचे। कृष्णने देखा कि समुद्र अपने निर्घोषरूपी शब्द द्वारा पुकार कर कल्लोलरूपी हाथोंके इशारेसे हम लोगोंको बुला रहा है और कहता है—हे मनुष्यरूप-धारी देवतो, हे समुद्रविजय महाराज, आओ और मेरे सुख देनेवाले किनारेपर ठहरो। आप लोग तो पुण्यके साधन हैं। इसके बाद यादव-कुल-भूषण समुद्रविजयकी आज्ञासे उस लम्बे-चौड़े, सत्पुरुषोंके मनके समान निर्मल और नाना प्रकारके सुन्दर फल-फूलोंसे शोभा धारण किये हुए वृक्षोंसे युक्त, समुद्रके किनारेपर पड़ाव डाल दिया गया। राजा लोगोंके बड़े बड़े ऊँचे पँचरंगी डेरे वहाँ तान दिये गये। उनपर धुजायें फहराने लगीं। उनमें जो सफेद डेरे थे वे ऐसे जान पड़ते थे—मानों उन राजोंके यशके ढेर हैं। समुद्रविजय वगैरह यादव कुछ दिन उस समुद्र-किनारेपर

रहकर किसी दुर्गम गढ़ वगैरह स्थानकी खोजमें लगे। यहाँ रहते इन्हें कुछ दिन बीत गये। एक दिन विचार कर समुद्र-विजयने कृष्णसे कहा—बेटा, तुम बड़े पुण्यवान् हो। तुम जिस वस्तुकी मनमें इच्छा करते हो वह तुम्हें उसी समय प्राप्त हो जाती है। तब तुम ऐसा कोई उपाय करो न, जिससे समुद्र अपनेको रास्ता दे दे। कृष्णने यादवेश्वर समुद्रविज-यको नमस्कार कर 'तथास्तु' कहा। इसके बाद वह आठ उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर दर्भासनपर विधिपूर्वक मंत्र जपने लगा। उसके पुण्यसे रातमें एक नैगम नाम देव घोड़ेका रूप लेकर कृष्णके पास आया और बोला—प्रभो, सब सम्पदाके देनेवाले जिनभगवान्‌को नमस्कार कर आप मेरी सुखदाई पीठ पर बैठकर चलिए। आपके पुण्यसे तब समुद्रमें बारह योजन-प्रमाण एक सुन्दर शहर बस जायगा। इतना सुनकर वीर-शिरोमणि कृष्ण आनन्दसे उठा और नाना बाजोंके शब्द तथा जयजयकारके साथ उस रत्नमय खोगीर और ढुरते हुए चँवरसे सुन्दर शोभा धारण किये हुए घोड़ेपर सवार होकर चला। उस दिव्य घोड़ेपर बैठा हुआ कृष्ण—जान पड़ा नाना प्रकारके आभूषणोंको पहरे लक्ष्मीका भावी 'वर' जा रहा है। नाना प्रकारके बाजोंकी ध्वनिके साथ उस देवमयी घोड़ेने समुद्रमें प्रवेश किया। समुद्रमें बड़ी ऊँची ऊँची अनन्त लहरें उठने लगीं। उनसे जलके हाथी घबरा गये। आकाशमें चाँद-तारे न दिखाई

पड़ने लगे । महान् शब्द होने लगा । कृष्णके पुण्यसे इतना विशाल समुद्र उसी समय दो भागोंमें बँट गया । यादवोंके जानेको उसमें रास्ता होगया । उस रास्तेमें वह दिव्य अश्व इस तरह जाने लगा जैसे पृथ्वीपर आरामके साथ लोग चला करते हैं । उस घोड़ेके पीछे पीछे यादवोंका सारा सैन्य भी बड़े आनन्द और निर्विघ्नतासे चला । उस समय भावी तीर्थंकर श्रीनेमिजिन और कृष्णके पुण्यसे सौधर्मस्वर्गके इन्द्रने कोई खास चिह्नों द्वारा जग-हितकारी जिनभगवान्का पवित्र आगमन जानकर कुबेरसे कहा—कुबेर, यक्षेश, सुनो—प्रसिद्ध जम्बूद्वीपके पवित्र और श्रेष्ठ सम्पदासे भरे-पुरे भारतवर्षमें जो समुद्रका एक छोटा हिस्सा है उसमें, हरिवंश-शिरोमणि, दानी, उदार और विचारवान् समुद्रविजय महाराज सकुटुम्ब-परिवार आये हुए हैं । उनकी रानी महासती शिवदेवी बड़ी सुन्दरी, भाग्यवती, पुण्यवती, और सरस्वतीकी तरह विदुषी है । छह महीने बाद उसके गर्भमें जगत्के स्वामी भावी तीर्थंकर श्रीनेमिजिन वैजयन्त विमानसे आवेंगे । उनके जन्मसे सारे संसारमें आनन्द-सुख बढ़ेगा । इसलिए तुम जल्दीसे उस समुद्रपर, जिसने स्वयं रास्ता देकर उन महापुरुषोंका आदर किया है, जाओ; और उनके लिए वहाँ एक पुरी बनाओ । जिसे देखकर संसार आश्चर्य करने लगे और वह भव्य जनोंको जन्म देनेवाली तथा लोगोंको शान्ति देनेवाली हो । इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेरने ‘ तथास्तु ’ कहा । इसके बाद

वह कुछ देवोंको साथ लेकर उस समुद्रपर आया। कुबेरने पहले ही काचका जिसका तल है ऐसी बड़ी चौड़ी और निर्मल पृथ्वी बनाई। इसके बाद उसने एक हजार शिखरोंवाला, बड़ा ऊँचा सोनेका जिनमन्दिर बनाया। उसपर सुन्दर ध्वजायें लगाईं। भव्यजनोंके मनको प्रसन्न करनेवाले और संसार भ्रमण हरनेवाले उस मन्दिरमें कुबेरने स्वर्ग-मोक्षकी कारण जिनप्रतिमायें विराजमान कीं। इतना करके उसने बारह योजन-प्रमाण परम-पवित्र द्वारिका नाम पुरी रची। जिस पुरीको जिनभक्तिके वश हो कुबेरने रचा उस पुरीका मुझ-सरीखे तुच्छ कैसे वर्णन कर सकते हैं। गढ़, कोट, खाई, दरवाजे और घर-घरपर टँगे गये तोरणोंसे वह पुरी स्वर्गको भी हँस रही थी। उसकी चारों दिशामें जो सरोवर, बावड़ियाँ, बाग आदि बनाये गये थे उनमें देव-देवाङ्गना आकर क्रीड़ाँ-विनोद किया करते थे। उसमें ऊँचे सुन्दर और नाना फलोंसे सुन्दरता धारण किये हुए वृक्ष कल्पवृक्ष सदृस जान पड़ते थे। उसमें निर्मल जलके भरे तालाब ऐसे ज्ञात होते थे मानों जहाँ तहाँ भव्य-जनोके पुण्योंकी खानें हैं। द्वारिकाके ठीक बीचमें बड़ा ऊँचा और जिसमें नाना प्रकारके रत्न, मोती, माणिक आदि जवाहरात द्वारा पच्चीकारीका काम हो रहा है ऐसा, राजमहल बनाया गया था। इस राजमहलसे लगाकर बड़ी ऊँची सात सात मंजिलवाली घरोंकी श्रेणियाँ बनाई गई थीं। उन सबमें भी

रत्नोंका काम बना हुआ था । वे पँचरंगी ध्वजाओं और तोरणोंसे ऐसी शोभित होती थीं—मानों लोगोंके पुण्यसे देवोंको बुला रही हैं । उनके रत्नमयी आँगनमें केसरका तो कीचड़ था, कपूरकी रज धूल थी और चन्द्रकान्तमणिसे बहा पानी था । वहाँके बाजार कपूर, अगुरु, केसर, चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओंसे सदा भरे रहते थे । अच्छे अच्छे रेशमी वस्त्र और दिव्य मोती-माणिक आदि जवाहरातसे वे सदा लोगोंके मनको खुश करते थे । द्वारिका सुन्दर और श्रेष्ठ वस्तुओंसे युक्त चौराहोंसे पुण्यवान् पुरुषोंको सब सुखोंकी खान जान पड़ती थी । इत्यादि श्रेष्ठ ऐश्वर्य-वैभवसे द्वारिका युक्त थी । उसमें जिनप्रणीत धर्म-कर्ममें तत्पर और चित्त प्रसन्न करनेवाले सत्पुरुष थे और सुन्दर वस्त्राभूषण पहर कर लोगोंके मनको हरनेवाली, शीलवती पवित्र स्त्रियाँ थीं । परम सुख देनेवाली इस पुरीमें यादवेश्वर समुद्रविजयने अपने वीर स्तिमितसागर आदि भाई, निष्कपट बलदेव, बुद्धिमान् तथा शत्रुओंका नाश करनेवाले कृष्ण और अन्य यादवगण आदि बन्धु-बान्धवों-के साथ बड़े गाजे-बाजे और चारण लोगों द्वारा किये गये जयजयकारको सुनते हुए प्रवेश किया । वे वहाँ सुखसे रहने लगे । पुण्यसे उन्हें सब मनचाही वस्तुयें प्राप्त हुईं । उनका वे परम आनन्दसे उपभोग करने लगे ।

इसके बाद काश्यप-गोत्रमें जन्मे हुए, हरिवंश-शिरोमणि इन समुद्रविजय महाराजकी गुणवती रानी शिवदेवीके

महलपर प्रतिदिन रत्नोंकी वर्षाकर कुबेर बड़ी भक्तिसे उसकी पूजा—आदर-सत्कार करने लगा। जो भावी तीर्थंकरकी माता होनेवाली है उसे कौन न पूजेगा। शिवदेवीके आँगनमें जो रत्नवर्षा होती थी—जान पड़ता था कि होनेवाले पुत्रके पुण्योंकी वह सुख देनेवाली वर्षा है।

इसी समय अपना कर्त्तव्य पूरा करनेको श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी तथा और भी बहुतसी देवियाँ शिवदेवीके गर्भ-शोधन आदि क्रियायें करने निमित्त आईं। बड़े प्रेम और भक्तिसे उन्होंने जगदम्बा शिवदेवीकी सेवा की। इस प्रकार छह महीनेतक वे देवियाँ शिवदेवीकी सेवा करती रहीं।

कार्तिक सुदी छठ—उत्तराषाढ़-नक्षत्रकी रातको गुणोज्ज्वला शिवदेवी अपने महलमें रत्नके पलंगपर सोई हुई थी। समय प्रायः रातका अन्तिम भाग था। उस समय उसने कोई सोलह स्वप्न देखे। वे सब स्वप्न यहाँ भी लिखे जाते हैं। पहले स्वप्नमें उसने जिससे मद झरता है ऐसे कैलासके समान सफेद ऐरावत हाथीको, दूसरेमें तीखे सींगोंसे पृथ्वीको खोदते हुए और सुन्दर शब्द करते हुए श्रेष्ठ बैलको, तीसरेमें आकाशमें उछलते हुए, सुन्दर कान्तिके धारण करनेवाले और गर्जना करते हुए अतएव सफेद मेघके समान जान पड़नेवाले बड़े भारी सिंहको और चौथेमें निर्मल पानीके भरे हुए सोनेके घड़ोंसे नहाती हुई लक्ष्मीको देखा। पाँचवेंमें

आकाशमें लटकती हुई और भ्रमर जिनपर गूँज रहे हैं ऐसी दो कल्पवृक्षोंके फूलोंकी मालाओंको, छठेमें अपनी कान्तिसे जगत्में उत्तमताका मान पाये हुए और सबका हित करने-वाले सुपुत्रकी तरह सारे संसारको प्रकाशित करनेवाले कलापूर्ण चन्द्रमाको, सातवेंमें अपनी किरणोंसे विश्वको प्रकाश करनेवाले और स्याद्वादी विद्वान्की तरह मिथ्यान्धकारको नाश करनेवाले सूरजको और आठवेंमें निर्मल पानीमें विलास करती हुई दो मछलियोंको उस महादेवी शिव-देवीने देखा । नवमेमें जिनपर केसर-चन्दन लगा है और मुँहपर एक एक सुन्दर कमल रक्खा हुआ है ऐसे, घरमें आई हुई निधिकी तरह दो भरे घड़ोंको, दसवेंमें बहुत बड़े, निर्मल पानीके भरे हुए अत एव सत्पुरुषोंके मनके समान पवित्र सरोवरको, ग्यारहवेंमें चमकते हुए रत्नोंसे पूर्ण, शब्द करते हुए और अपनी लहरोंसे मुनिकी तरह मलको साफ करनेवाले समुद्रको और बारहवेंमें सोनेके बने हुए और जिसपर नाना प्रकार रत्नोंकी पच्चीकारीका काम हो रहा है ऐसे मेरुके श्रेष्ठ शिखरके समान ऊँचे सिंहासनको देखा । तेर-हवेंमें रत्नोंसे जड़े हुए, और मोतियोंकी मालायें जिसपर लटक रही हैं ऐसे देव-देवाङ्गनाओंसे शोभित इन्द्रके स्वर्गीय विमानको, चौदहवेंमें पृथ्वीको चीरकर निकले हुए और धरणेन्द्र वगैरहसे युक्त धरणेन्द्रके आते हुए उन्नत, सुन्दर भवनको, पन्द्रहवेंमें जिसकी उज्ज्वल कान्तिकी शिखायें सब

ओर फैल रही हैं और दिशारूपी स्त्रियोंके मुख-कमलको प्रसन्न करनेवाली पँचरंगी रत्न-राशिको तथा सोलहवेंमें जिसमें सैकड़ों ज्वालायें निकल रही हैं अत एव जो कर्मशत्रुओंके नाश करनेवाले भावी पुत्रके प्रतापके समान जान पड़ती है ऐसी अग्निको देखा। इस प्रकार सोलह स्वप्नोंको देखनेके बाद अन्तमें शिवदेवीने अपने मुँहमें प्रवेश करते हुए हाथीको देखा। उसी समय जयन्तविमानके अहमिन्द्रने, जिसका जिकर पहले आगया है, माता शिवदेवीके कमल समान कोमल गर्भमें प्रवेश किया। त्रिलोकपर कृपा करनेवाले भगवान् सब प्रकारके कष्टरहित सुखसे गर्भमें स्थित रहे।

प्रातःकाल हुआ। चारण लोक जयजयकार करने लगे। प्रातःकालके बाजे बजना आरंभ हुए। शिवदेवी जाग्रत हुई। प्रसन्नताके साथ उठकर शौच-मुख मार्जनके बाद उसने मंगल स्नान किया। दिव्य वस्त्राभरण पहरे। केसर-चन्दन लगाया। फूलोंकी माला पहरी। इसके बाद वह अपने ऊपर चँवर ढोरती हुई दासियोंसे मंडित होकर महाराजके पास गई। महाराज सिंहासनपर विराजे हुए थे। राज-गण उनकी सेवामें लगे हुए थे। खिले हुए कमल-समान प्रसन्न मुँह शिवदेवी महाराजको नमस्कार कर उनके दिये आधे सिंहासन बैठ गई। इसके बाद उसने रातमें जो स्वप्न देखे थे उन सबको महाराजसे कहकर कहा—प्राणेश्वर, रातके अन्तिम समयमें मैंने इन स्वप्नोंको देखा है, कृपाकर आप इनका फल कहिए।

यह सुनकर आगमके ज्ञाता, बुद्धिवान् समुद्रविजय महाराज मनमें कुछ विचारकर बोले—अच्छा प्रिये, इन स्वप्नोंका फल मैं तुम्हें कहता हूँ, उसे सुनो। हाथीके देखनेका फल यह है कि तुम्हारा पुत्र सर्वोत्तम ज्ञानी, तीर्थंकर होगा। उसकी स्वर्गके देवगण पूजा करेंगे। बैलके देखनेका फल यह है कि वह संसारमें सबसे श्रेष्ठ होगा, जगत्का ज्ञान देने-वाला गुरु होगा और उसे संसारके सभी बड़े लोग पूजेंगे। सिंहके देखनेका फल यह है कि वह अनन्तशक्तिका धारक होगा। बलमें उसके समान अबतक न कोई हुआ है और न होगा। लक्ष्मीके देखनेका फल यह है कि वह बड़ा महिमा-शाली होगा। उसे जन्म लेते ही स्वर्गके देवगण मेरु पर्वत-पर लेजाकर उसका महान् अभिषेकोत्सव करेंगे। फूलोंकी माला देखनेका फल यह है कि धर्मतीर्थके प्रचारसे उसकी उज्ज्वल कीर्त्तिरूपी बेल बहुत फैल जायगी। पूर्णचन्द्रमाके देखनेका फल यह है कि वह चन्द्रमाके समान संसारको आल्हादित करनेवाला और शान्तिका कर्त्ता होगा। सूरजके देखनेका फल यह है कि वह कोटि-सूर्यके समान प्रभावाला और लोगोंको प्रिय होगा। जलमें सुखसे क्रीड़ा करते हुए मछली युगलके देखनेका फल यह है कि वह सदा उत्तम उत्तम सुखोंका भोगनेवाला होगा। पूर्णकुंभके देखनेका फल यह है कि वह बड़े भारी धन-वैभवका स्वामी होगा। सरोवरके देखनेका फल यह है कि

वह एक हजार आठ श्रेष्ठ लक्षणोंका धारी होगा। लहराते हुए समुद्रके देखनेका फल यह है कि वह लोकालोकका प्रकाशक केवलज्ञानी होगा। सिंहासनके देखनेका फल यह है कि वह त्रिलोक-साम्राज्यकी लक्ष्मीका भोगनेवाला और जगत्का हितकारी होगा। देव-विमानके देखनेका फल यह है कि वह स्वर्गसे आवेगा और बड़ा सुन्दर तथा पुण्यसे लोगोंका मनोरंजन करनेवाला होगा। नाग-भवनके देखनेका फल यह है कि वह गर्भमें ही तीन ज्ञानका धारक और त्रिलोक-शिरोमणि होगा। रत्न-राशिके देखनेका फल यह है कि वह श्रेष्ठ गुणोंका धारी होगा। अग्निके देखनेका फल यह है कि वह तपरूपी आगसे कर्मरूपी ईंधनको भस्मकर मोक्षमें जायगा। मुँहमें प्रवेश करते हुए हाथीके देखनेका फल यह है कि वह अहमिन्द्र स्वर्गसे आकर तुम्हारे पवित्र, कोमल और निर्मल गर्भमें ठहरा है। स्वामी द्वारा इस प्रकार स्वप्नका फल सुनकर शिवदेवी बहुत सन्तुष्ट हुई।

इसी समय अपने अपने चिह्नोंको धारण किये हुए स्वर्गसे देव-गण आगये। उन्होंने शिवदेवीसहित समुद्रविजय महा-राजको रत्नमयी सिंहासनपर बैठाकर देव, विद्याधर, राजे, महाराजे, और देवाङ्गनाओंके साथ तीर्थके जलसे भरे हुए, सोने-रत्नोंके कलशोंसे बड़ी भक्तिपूर्वक उनका अभिषेकोत्सव किया और श्रेष्ठ वस्त्राभूषण भेंटकर उनकी स्तुति की—महाराज, आप त्रिलोकके पिताके भी पिता हैं, अतएव बड़े पवित्र हैं।

आप निर्मल गुणरूपी रत्नोंके समुद्र हैं। प्रभो, आपके समान इस लोकमें दूसरा कोई नहीं है, कारण आपके पुत्र भावी तीर्थंकर और तीन जगत्के महान् गुरु हैं। सब पर्वतोंमें सुमेरु पर्वत और समुद्रोंमें क्षीरसमुद्र जैसे महान् और प्रसिद्ध हैं उसी तरह हे समुद्रविजय महाराज, हे देव, आप सब क्षत्रियराजोंमें तिलक समान हैं। और हे मा शिवदेवि, संसारकी सच्ची माता आप ही हैं। कारण आप जिस पुत्रको पैदा करेंगीं वह जगत्का हितकर्त्ता और संसार-समुद्रका पार करनेवाला होगा। हे शुभानने, जैसे मोती सीपसे पैदा होता है उसी तरह आपसे तीर्थंकर जिन उत्पन्न होंगे। इस प्रकार उन देवतोंने उनकी स्तुति कर नृत्य किया, उन्हें प्रणाम किया। इस तरह वे जिन भगवान्की गर्भावतार क्रिया समाप्त करके पुण्य प्राप्तकर बड़े आनन्दके साथ अपने अपने लोकको चले गये। कुबेर इसके बाद भी नौ महीनेतक शिवदेवीके यहाँ रत्नवर्षा करता रहा। इसके सिवा इन्द्रकी आज्ञासे स्वर्गकी देवियाँ सोलहों सिंगार किये जगन्माता शिवदेवीकी सेवा करती रहीं। जिनका जो जो नियोग था—जिनके जिम्मे जो काम था उन्हें वे बड़े प्यारसे करती थीं। कितनी देवियाँ शिवदेवीको पवित्र जलसे स्नान कराती थीं; कितनी उसके पाँवोंको धोया करती थीं; कितनी उसे सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहराती थीं; कितनी सुगंधित केसर-चन्दनका उसके लेप करती थीं; कितनी उसें अच्छे अच्छे बहुमूल्य

आभूषण पहराकर सिंगारती थीं; कितनी उसे भोजन कराती थीं; कितनी उसे बड़े प्रेमसे पान वगैरह देती थीं; कितनी उसकी सेज बिछा देती थी; कितनी उसके बैठनेको आसन वगैरह ला-दिया करती थीं—जैसी जैसी शिवदेवीकी इच्छा होती थी उसे जानकर वे उसी प्रकारकी वस्तु उनके लिए ले आती थीं। कोई उसे काच दिखाती थी, कोई उसपर छत्र किये खड़ी रहती थी, कोई आनन्दके साथ कथा-वार्ता कहकर उसके चित्तको खुश करती थी और कोई उसे हँसी-दिल्लगीमें उलझाये रहती थी। इस प्रकार सदा वे देवियाँ गुण-रत्नोंकी खान सुन्दरी शिवदेवीकी बड़े प्रेम और भक्तिसे आराधना करती थीं। निर्मल काचमें पड़े हुए प्रतिविम्बकी तरह भगवान्को गर्भमें रहनेसे माता शिवदेवीको कोई कष्ट न हुआ। स्फटिक—बिल्लौरके भवनमें रखी हुई कपूरकी राशिकी तरह भगवान् माताके गर्भमें मणिके समान बड़े सुखसे रहे। भगवान् तीर्थंकर नामके प्रभावसे गर्भमें ही तीन ज्ञानके धारक थे, बड़े महिमाशाली थे और पवित्रताकी एक मूर्ति थे। इस प्रकार पुण्यसे शिवदेवीके गर्भमें भगवान् नौ महीनेतक सुखपूर्वक रहे।

जिनके गर्भमें स्थित रहते इन्द्रोंने देवतोंके साथ आकर निरंतर सोने और रत्नोंकी वरसा की, जिनके माता-पिताको अमृतसे स्नान कराया और श्रेष्ठ वस्त्राभरण भेंटकर जिनेका मान बढ़ाया वे नेमिजिन रक्षा करें।

इति षष्ठः सर्गः।

सातवाँ अध्याय ।

देवों द्वारा नेमिजिनका जन्म-महोत्सव ।

शुद्ध रत्न-भूमि जैसे सुन्दर रत्नको उत्पन्न करती है उसी तरह शिवदेवीने श्रावण सुदी छठको चित्रा नक्षत्रमें तीन ज्ञान विराजमान, परमानन्दमय-मोक्षके देने वाले और श्रेष्ठ गुणोंकी खान पवित्र नेमिनाथ जिनको उत्पन्न किया। कविकी बुद्धि जैसे सब लक्षणोंसे युक्त श्रेष्ठ काव्यको जन्म देती है उसी तरह शिवदेवीने इन श्रेष्ठ लक्षणोंके धारक नेमिजिनको जन्म दिया। भगवान्‌का दिव्य शरीर सब लक्षणों और व्यंजनों—प्रगट चिह्नोंसे युक्त था—जान पड़ता था जैसे देवतोंने भक्ति-वश हो उस सुन्दर शरीरकी फूलोंसे पूजा की है। भगवान्‌के जन्मसे त्रिभुवनमें एकाएक आनन्द छा-गया। लोगोंको वाणीसे न कहा जानेवाला सुख हुआ। सुखरूप 'तीर्थंकर' नाम पुण्य-वायुसे देवतोंके आसन हिल गये। मानों वे इस बातकी सूचना करने लगे कि त्रिलोकनाथ जिनको पृथ्वीपर रहते तुम्हें ऊपर बैठना योग्य नहीं है। उनके मुकुट अपने आप झुक गये—मानों वे यह कहते हैं कि तुम जिन भगवान्‌के महलपर जाओ। नेमिजिनके जन्मसे भव्यजनकी प्रवृत्तिकी तरह सब दिशायें निर्मल और सुखरूप होगईं। भगवान्‌के जन्मसे स्वर्गके कल्पवृक्षोंको भी बड़ी भारी खुशी हुई। सो वे

अपने आप फूलोंकी वरसा करने लगे। स्वर्गमें घण्टा बजने लगा—मानों वह त्रिलोकमें जिनजन्मकी सूचना दे रहा है। ज्योतिष्कदेवोंके विमानोंमें सिंहनाद होने लगा—जान पड़ा, वह जिनके आकस्मिक जन्मकी घोषणा कर रहा है। व्यन्तरदेवोंके यहाँ नगाड़े बजने लगे—मानों वे अपने इन्द्रोंको भगवान्के श्रेष्ठ जन्मकी खबर दे रहे हैं। नागभवनोंमें शंख-ध्वनि होने लगी—मानों उसने नागकुमारोंको नेमिजिनके जन्मकी सूचना कर दी। इस प्रकार अपने अपने स्थानोंमें प्रगट हुए चिह्नों द्वारा जिनजन्म जानकर सब देवगणने परम आनन्दके साथ 'हे देव, आपकी जय हो, आप खूब फलें-फूलें' इत्यादि कहकर भगवान्को परोक्षमें नमस्कार किया। और इसके बाद वे जिनके यहाँ आनेको तैयार हुए। उस समय इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने ऐरावत हाथीको सजाया। उस हाथीका मुनिजनोंने जैसा वर्णन किया है वैसा थोड़ेमें यहाँ भी लिखा जाता है।

वह हाथी बहुत ऊँचा और बड़े जोरकी गर्जना करनेवाला था। बड़ी शीघ्रतासे चलनेवाला और बहुत मोटी सूँड़वाला था। चलते समय वह कैलास पर्वतके समान जान पड़ता था। गलेमें जिसके दो बड़े बड़े घंटे लटक रहे हैं और लाख योजन लम्बा-चौड़ा वह ऐरावत जब जोरसे चिंघाड़ता था तब जान पड़ता था मेघोंको नीचा दिखानेकी कोशिश कर रहा है। उसके बत्तीस मुँह थे। एक एक मुँहमें आठ आठ दाँत थे। एक एक दाँतपर निर्मल पानीका भरा

सुन्दर तालाब था । जैनतत्वके जाननेवाले मुनिजनोंने उस एक एक तालावमें एक एक कमलिनी बतलाई है । उस एक एक कमलिनीपर बत्तीस बत्तीस कमल थे । एक एक कमल तीस तीस पत्तोंसे युक्त था । पत्ते-पत्तेपर एक एक जिनभक्ति तत्पर देवाङ्गना बड़े हाव-भाव-विलास-विभ्रमके साथ नृत्य कर रही थी । उनका नृत्य देखकर देवोंका मन भी मोहित हो जाता था । इस प्रकार सुन्दर उस हाथीपर रत्नमयी अम्बाड़ी शोभा दे रही थी । उससे वह ऐसा जान पड़ता था—मानों बिजली जिसमें चमक रही है ऐसा शरद्-ऋतुका मेघ है । सोनेका सिंहासन उसपर सजाया गया था । चँवर, झूल, आदिसे वह अलंकृत था । छोटी छोटी घंटियोंके सुन्दर आवाजसे वह लोगोंके मनको मोहित कर रहा था । सौधर्मेन्द्र, इन्द्रानी और अपने अनुचर देवोंके साथ उस हाथीपर सवार हुआ । उसपर चँवर दुर रहे थे । चँदोवा तन रहा था । देवगण छत्र लिये खड़े थे । इसी समय इन्द्रके साथ चलनेको नागेन्द्र, चन्द्र और सूर्य-विमानके इन्द्र, व्यंत-रोंके इन्द्र आदि भी अपने अपने हाथी, घोड़े, मोर, तोते वगैरह आकारके बने हुए विमानोंमें बैठ-बैठकर इन्द्रसे आकर मिल गये । सबके आगे इन्द्रको करके देवगण नगाड़े आदि बाजोंको बजाते हुए, फूलोंकी बरसा करते हुए, गाते हुए, नृत्य करते हुए, जयजयकार बोलते हुए, और सुन्दर स्तुतियोंसे जगत्को शब्दमय बनाते हुए,

सब देव-देवाङ्गनाओंके साथ द्वारिका पहुँचे । वहाँ वे इन्द्र-गण और सारी देवसेना ध्वजाओंसे शोभित द्वारिकाकी प्रदक्षिणा देकर उसे घेरकर ठहर गई। इसके बाद सौधर्मेन्द्र अन्य इन्द्रोंके साथ तोरणोंसे सजे हुए राजमहलमें प्रवेश कर जयजयकार करता हुआ शिवदेवीके आँगनमें पहुँचा । वहाँसे फिर उसने अपनी इन्द्रानीको शिवदेवीके महलमें भेजा । इन्द्रानी बड़े आनन्दसे प्रसूति-घरमें चली गई । वहाँ उसने कल्पवेलकी समान उज्ज्वल शिवदेवीको जिनसहित सोती हुई देखकर उसकी स्तुति की । माता, तुम तीन जगत्के स्वामी जिनकी माता हो, त्रिलोक पूज्य हो, और सारे स्त्री-संसारका एक सुन्दर अलंकार हो। जैसे खान रत्नोंको उत्पन्न करती हैं उसी तरह तुमने जिनरूप रत्न उत्पन्न किया है। अत एव तुम सारे संसारकी हितकर्त्ता हो । माता, पवित्रता और सौभाग्यमें तुम सबसे बढ़कर हो। क्योंकि त्रिलोकप्रभु जिन तुम्हारी ही कूँखमें जन्मे हैं। इस प्रकार स्तुति कर इन्द्रा-नीने शिवदेवीको बड़ी भक्तिसे मस्तक नवाया । इसके बाद उसने जिनमाताको सुख-नींदमें सुलाकर और मायामयी बालक उसके पास रखकर हँसते हुए त्रिलोकनाथ जिन-बालकको हाथोंमें उठा लिया। उन बालक जिनका स्पर्शकर इन्द्रानीको जो प्रेम, जो आनन्द हुआ वह वाणी द्वारा नहीं कहा जा सकता। इन्द्रानीने उन दिव्य शरीरके धारक बालक जिनको प्रसूति-घरसे लाकर अपने स्वामीको अर्पण कर दिया। इन्द्रने उन

त्रिलोक-श्रेष्ठ जिनको देखकर प्रणाम किया और भक्ति वश हो बड़े जोरसे उनका जयजयकार किया। इसके बाद उसने उन कमल-समान कोमल जिनको निर्मल निधिकी तरह हाथोंमें लेकर कोमल गोदमें बैठा लिया। ईशानेन्द्रने उस समय जिननाथके सिरपर भक्तिसे चन्द्रमाके समान निर्मल छत्र किया। सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गके इन्द्रोंने आनन्दित होकर भगवान्के ऊपर चँवर ढोरना शुरू किया। इनके सिवा और सब देव-देवाङ्गनायें भी अपने अपने नियोगके अनुसार जिनकी सेवा करनेको तत्पर हुईं।

इसके वाद सौधर्मेन्द्रने जयजयकारके साथ मेरुकी ओर चलनेके लिए हाथका इशारा कर उस पर्वत समान हाथीके अपने पाँवका अँगूठा लगाया। सौधर्मेन्द्रका इशारा पाकर हाथी चला। खूब वाजे वजने लगे। देवगण 'जय' 'नन्द' आदि कहकर भगवान्का जयघोष करने लगे। देवाङ्गनायें आनन्दित होकर गाने और नृत्य करने लगीं। कितनी देवाङ्गनायें आकाशमें गा रही थीं, नाच रही थीं। कितने देवगण प्रसन्नताके मारे आकाशमें उछल रहे थे। कितने भगवान्का चन्द्र-समान निर्मल यश गा रहे थे। कितने भगवान्की स्तुति-प्रार्थना ही करते जाते थे कि हे देव, हे जिनराज, आज सचमुच हमारा देव-जन्म सार्थक हुआ जो हमने आँखोंसे आपको देखा। इस प्रकार परम आनन्दसे वे भगवान्के सामने कह रहे थे—मानों जैसे उनके हाथमें निधि ही

आगई हो। कितने देवगण ताल ठोकते हुए कूद रहे थे। कितने भगवान्‌के ऊपर फूलोंकी वरसा करते जाते थे। इस प्रकार सौधर्मेन्द्र अन्य सव देवगणके साथ जिनभगवान्‌को कुवेरके वनाये मणिमय रास्तेसे ज्योतिषचक्रको लाँघता हुआ मेरुपर लेगया। मेरुकी उसने प्रदक्षिणा दी। इसके बाद उसने मेरु-सम्वन्धि नाना प्रकारके फले-फूले वृक्षोंसे युक्त और चारों दिशाओंमे वने हुए सुन्दर जिनमान्दिरोंसे शोभित, पाण्डुक नाम वनमें जो पाण्डुकशिला है, उस पर जिनभगवान्‌को विराजमान किया। पाण्डुक वनके ईशानकोणमें रखी हुई वह पवित्र पाण्डुकशिला अर्ध चन्द्रके समान आकारवाली और वड़ी ही सुन्दर है। वह पूरवसे पश्चिमकी ओर सौ योजन लम्वी, पचास योजन चौड़ी और आठ योजन ऊँची है। शिलाका मुँह दक्षिणकी ओर है। उसे देवगण पूजते हैं। जिनको धारण करनेसे वह भी जिनमाताके समान पवित्र गिनी जाती है। उसके चारों ओर वन है। वह वेदी, रत्नोंके वने तोरण आदि मंगल द्रव्योंसे शोभित है। उसपर जिनभगवान्‌के वैठनेका पाँचसौ धनुष ऊँचा गोलाकर एक उत्तम सिंहासन है। उसकी चौड़ाई भी पाँचसौ ही धनुषकी है; और उसका मुखभाग अढ़ाईसौ योजनका है।

इसी सिंहासनपर दुःखरूप अग्निके वुझानेको मेघ समान जिन विराजमान किये गये। इन्द्र द्वारा सिंहासनपर विराजमान किये हुए जिन ऐसे शोभने लगे—मानों उदयाचलपर वाल

सूरज उगा है । भगवान्‌के सिंहासनके पास ही दक्षिण और उत्तरकी बाजूमें सौधर्मेन्द्र और ईशानेन्द्रके दो सुन्दर सिंहासन थे । इसके बाद इन्द्रने परम प्रसन्न होकर जिनकी भक्तिसे अपने हजार हाथ किये और इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत्य वरुण आदि दिग्देवतोंको यज्ञभागके अनुसार यथास्थान स्थापित किया ।

इतना करके इन्द्र जिनका अभिषेक करनेको तैयार हुआ। उसने, नाना रत्नोंसे जड़े हुए, क्षीरसमुद्रके पवित्र जलके भरे हुए, चन्दन आदि सुगंधित वस्तुओंके रससे छींटे गये, मोतियोंकी मालाओंसे शोभायमान, आकाश-लक्ष्मीके स्तनसे जान पड़नेवाले, श्रेणी बाँधकर खड़े हुए देवतों द्वारा एक हाथसे दूसरे हाथमें दिये गये अतएव हाथरूपी डालियोंसे उठाये हुए सुन्दर कल्पवृक्षके फलोंके समान जान पड़नेवाले, नाना प्रकारकी शोभाओंसे शोभित, सत्पुरुषोंके मनके समान निर्मल, भव्यजनोंको मनचाहे सुखके देनेवाले, सम्यग्दर्शनके समान निर्मल, आठ योजन ऊँचे और एक योजन चौड़े मुँहवाले सोनेके कलशोंसे गीत, संगीत, वादित्र, जय-जयकार आदि पूर्वक शास्त्रोक्त महामंत्रका उच्चारण कर जिनभगवान्‌का अभिषेक किया । उस समय वह जलपूर भगवान्‌के नीले शरीरपर ऐसा जान पड़ा—मानों इन्द्रनील-गिरिपर मेघ बरस रहा है । इसके बाद वह सफेद जलपूर सुमेरुपर गिरा—जान पड़ा नेमिजिनके उज्ज्वल यशने सुमेरुको ढक दिया। उस जलपूरसे परस्परको छींटते हुए देवगण ऐसे देख पड़ने लगे—

मानों वे समुद्रमें क्रीड़ा कर रहे हैं । देवोंको क्रीड़ा करते देखकर देवाङ्गनायें भी अपने मनको न रोक सकीं, सो वे भी उस जिनशरीरके स्पर्शसे पवित्र जलपूरमें क्रीड़ा करने लगीं । वह जलपूर उन असंख्य देवतोंसे रोका जानेपर भी अक्षीण-ऋद्धिके प्रभावसे बहुत होगया । वह सारे पर्वतके चारों ओर फैल गया—जान पड़ा कि जिनकी संगति पाकर उसे इतना आनन्द हुआ कि वह लोट-पोट हो रहा है । वह जलपूर जिनके शरीरसे नीचे गिरता हुआ भी ऐसी शोभाको प्राप्त हुआ—मानों पृथ्वीको पवित्र बना रहा है । जो पूर जिनके शरीरका संग पाकर खूब पवित्र हो गया, भला, फिर वह किसे पवित्र न बना देगा । इन्द्रने जो अभिषेकोत्सव मेरुपर किया उस महान् उत्सवका मुझ सदृश बुद्धिहीन कैसे वर्णन कर सकते हैं । इस अभिषेकोत्सवको देखकर कई मिथ्यात्वी देवोंने मिथ्यात्व छोड़कर सम्यग्दर्शन ग्रहण कर लिया । इस प्रकार आनन्द और उत्सवके साथ जिनाभिषेकोत्सव समाप्तकर इन्द्र और इन्द्रानीने स्वभाव-सुगन्धित जिनदेहमें केसर, कपूर, चन्दन, अगुरु आदि सुगन्धित वस्तुओंका लेप किया । इन्द्रनीलमणि-समान कान्तिके धारक नेमिजिनके शरीर-पर वह लेप ऐसा जान पड़ा—मानों नीलगिरिपर सन्ध्याकालकी ललाईकी झाँई पड़ रही है । इसके बाद इन्द्रने उन्हें सुन्दर वस्त्र पहराये—उनसे भगवान् ऐसे जान पड़े मानों शुभलेश्या-ओंने, अधिकताके कारण भीतर न समा सकनेसे बाहर आकर

भगवान्का आश्रय लिया है। भगवान्के कानोंमें पहराये हुए सुवर्ण-रत्नमयी कुण्डल सेवामें आये हुए सूरजके समान जान पड़े। छातीपर पड़े हुए सुन्दर हारने भावी केवलज्ञान-रूपी लक्ष्मीके झूलनेके लिए झूलेकीसी शोभा धारण की। हाथोंमें पहराये हुए पँचरंगी रत्नजड़े सोनेके कड़े जीवके उपयोग ज्ञान-दर्शनसे जान पड़े। जिसमें मणि चमक रही है ऐसी जिनकी कमरमें पहराई हुई करधनी उनके बहुत अर्थवाले सूत्रके समान शोभाको प्राप्त हुई। छम छम शब्द करते हुए पाँवोंके झाँझर ऐसे जान पड़े—मानों भगवान्के पूज्य चरणोंका आश्रय पाकर वे बड़े सन्तुष्ट हुए। जिनके गलेमें सुगन्धित फूलोंकी मालाने शरीर धारण किये हुए निर्मल कीर्तिकी शोभाको धारण किया। इसके बाद इन्द्रानीने भी त्रिलोक-भूषण जिनको भक्तिके वश हो खूब सिंगारा। इस प्रकार इन्द्र और इन्द्रानीने श्रेष्ठसे श्रेष्ठ वस्त्राभरणसे भगवान्को अलंकृत कर बारम्बार नमस्कार किया। "ये भगवान् दसलक्षणरूप धर्मरथके चक्रको चलानेमें नेमि—धारके समान हैं," यह कहकर इन्द्रने उनका नाम 'नेमिनाथ' रख दिया। उस समय सब देव-देवाङ्गनाओंने "हे नेमिनाथ जिन, आपकी जय हो," कहकर भगवान्का जयजयकार किया। देवोंके इस जयजयकारसे सारा मेरु पर्वत गूँज उठा—जान पड़ा वह भी नेमि-जिनका जयजयकार कर रहा है। इतना उत्सव करके इन्द्र पहलेकी तरह गाजे-बाजेके साथ भगवान्को द्वारिका लाया।

वहाँ उसने समुद्रविजय महाराज और शिवदेवीको मन-वाणी-कायसे नमस्कार कर भगवान्को उनके हाथोंमें रख दिया । इसके बाद उस नट-शिरोमणि इन्द्रने परम आनन्दित होकर उनके सामने हजार भुजायें, हजार आँखें और एकसौ पाँच मुँह करके सुन्दर अभिनय किया। सुन्दरताकी अवतार देवाङ्गनाओंने भी बड़े सुन्दर गान-रस-भाव-लय आदिके साथ नृत्य किया । इन्द्रने जब लोगोंके मनको मोहित करनेवाला नृत्य शुरू किया तब बाजोंके शब्दसे दसों दिशायें भर गईं । नृत्य करता हुआ इन्द्र क्षणभरमें आकाशमें इतना उछलता था—मानों चाँद-सूरजको तोड़ लेना चाहता है और उसीके दूसरे क्षणमें जमीनपर आकर लोगोंको रंजायमान करने लगता था । नृत्य करते समय उसके पाँवोंके आघातसे पृथ्वी काँप उठती थी । पर्वत हिल जाते थे । समुद्र खोलने लगता था । वह अपने हाथकी उँगलीके इशारेसे जब स्वर्गकी उन सुन्दर अप्सराओंको नचाता और वे भी हाव-भाव-विलास-विभ्रमके साथ नाचती तब ऐसा जान पड़ता था—मानों सोनेकी पुतलियोंको वह नचा रहा है । उन अप्सराओंके त्रिलोक-सुन्दर गानेको सुनकर लोगोंका मन बड़ा ही मोहित हो जाता था । जिस अभिनयके प्रधान दर्शक समुद्रविजय महाराज, त्रिजगत्स्वामी नेमिनाथ जिन, और महासती शिवदेवी तथा अन्य बड़े बड़े यादव जन थे और अभिनय करनेवालोंमें इन्द्र तो नटाचार्य, नाचनेवाली देवाङ्गना,

गानेवाले स्वर्गीय गन्धर्व और जयजयकार करनेवाले देव-गण थे उस जगत्को आनन्दित करनेवाले अभिनयका कौन वर्णन कर सकता है? इस प्रकार महान अभिनय कर और बड़ी भक्तिसे भगवान्के गुणोंको लोकमें प्रगट कर, इन्द्र उन त्रिजगके हितकर्त्ता नेमिजिनको नमस्कार कर अपने देवगणके साथ स्वर्गलोक चला गया ।

जगच्चूड़ामणि श्रीनेमिनाथ जिन नमिनाथ तीर्थंकरके पाँच लाख वर्ष बाद हुए । इनकी आयु एक हजार वर्षकी थी । इनका रंग श्याम था—पर बड़ा सुन्दर था । भगवान्का जन्मकल्याण कर इन्द्रको चले जानेपर समुद्रविजय महाराजने फिर और बड़े ठाट-बाटसे नेमिजिनका जन्मोत्सव मनाया । लोगोंको उन्होंने कल्पवृक्षके समान मनचाही धन-दौलत, वस्त्राभरण आदि दानकर सन्तुष्ट किया । उस समय सुखदेनेवाले निधिकी तरह उनके महादानसे दुःख, दारिद्र्य आदिका नाम भी न रहा । द्वारिकाकी धनी प्रजाने भी आनन्दसे फूलकर घर-घरमें खूब उत्सव किया । स्त्रियोंने आनन्दसे विह्वल होकर इस उत्सवमें खूब गाया, बजाया और नृत्य किया । इस प्रकार जिनजन्मसे त्रिलोकके सब जीवोंको चिन्ता-मणिके लाभ समान बहुत ही सुख हुआ ।

नेमिजिन अब दिनोंदिन उत्सव-आनन्दके साथ बढ़ने लगे । दान-मानादिसे जगत्को खुश करने लगे । स्वर्गके देव-देवाङ्गना-गण त्रिलोक-पूज्य नेमिजिनके लिए स्वर्गीय,

दिव्य वस्त्राभरण भेंट लाकर उनकी सेवा करने लगे, और हर समय नौकरकी तरह बड़े प्रेमसे उनके लिए छहों ऋतुके नये नये फल-फूल लाकर उन्हें सन्तुष्ट करने लगे । नेमिजिन रत्नमयी आँगनमें देवकुमारोंके साथ नाना तरहके खेल खेलकर लोगोंके मन खुश किया करते थे । उनकी इस बाल-लीलासे उनके माता-पिताको जो आनन्द होता था वह अपूर्व था । खेलते खेलते कभी नेमिजिन रत्न-धूलकी मुट्ठी भरकर देवकुमारोंके सिरपर डाल देते थे । उससे वे प्रसन्न होकर अपने जन्मको सफल मानते थे । कभी देवकुमार-गण मोर, तोते आदिका रूप लेकर भगवान्‌को खिलाया करते थे । इस प्रकार आनन्द-उत्सवके साथ नेमिजिनने कुमार-काल पूराकर जवानीमें पैर रक्खा । कोई पैंतीस हाथ ऊँचा नेमि-जिनका वस्त्राभूषणसे अलंकृत शरीर ऐसा जान पड़ता था— मानों महादानी चलने-फिरनेवाला कल्पवृक्ष है । भगवान्‌के पवित्र शरीरमें तीर्थंकर नाम पुण्य-प्रकृतिके उदयसे कभी पसीना नहीं आता था। तपे हुए लोहेके गोलेपर जैसे पानीकी बूँद उसी समय जल जाती है उसी तरह भगवान्‌के शरीरमें कोई प्रकारका मल नहीं होता था । उनके शरीरमें खून दूधके जैसा सफेद था । उनके शरीरका संस्थान—आकार समचतुरस्र था । वे सुदृढ़ वज्रवृषभनाराचसंहननके धारक थे और इसी कारण उनका शरीर शस्त्रवगैरहसे कभी नहीं छेदा जा सकता था । उनकी रूप-सुन्दरता सर्वश्रेष्ठ और इन्द्र

धरणेन्द्र आदि सभीका मन मोहित करनेवाली थी। भगवान्का शरीर स्वभावसे ही इतना सुगन्धित था कि केसर, कपूर, अगुरु, चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुयें उसमें कुछ भी विशेषता न कर सकीं। भगवान्का शरीर छत्र, चँवर, कमल आदि एक सौ आठ लक्षण[1] और कोई नौ-सौ तिल आदि व्यंजन[2]—प्रगट चिह्नोंसे बड़ा ही शोभित हुआ। भगवान्के जो तीर्थंकर नाम पुण्य-प्रकृतिका उदय था उससे ये लक्षण और व्यंजन उनके शरीरमें हुए थे। उन एक-सौ आठ लक्षणोंके नाम ये हैं—श्रीवृक्ष, शंख, कमल, सातिया, कुश, तोरण, चँवर, छत्र, सिंहासन, धुजा, दो मछलियाँ, दो कलश, कछुआ, चक्र, समुद्र, तालाब, विमान, गृह, धरणेन्द्र, स्त्री, पुरुष, सिंह, बाण, धनुष, मेरु, इन्द्र, सुरगंगा, चाँद, सूरज, पुर, दरवाजा, वीणा, पंखा, वेणु, तपला, दो फूलमाला, हार, रेशमी वस्त्र, कुण्डल वगैरह आभूषण, पका हुआ शालका खेत, फलयुक्त वन, रत्नद्वीप, वज्र, पृथ्वी, लक्ष्मी, सरस्वती, कामधेनु, बैल, मुकुट, कल्पवेल, निधि, धन, जामनका झाड़, अशोकवृक्ष, नक्षत्र, गरुड़, राजमहल, तारा, ग्रह, आठ प्रातिहार्य, आठ मंगलद्रव्य, और ऊर्द्ध रेखा—आदि। जिनके इन लक्षणोंकी भावना भव्यजनोंको सम्पदा, सौभाग्य, सुख और यशको

१ जन्मसे मृत्युपर्यन्त शरीरमें रहनेवाले चिह्न लक्षण कहे जाते हैं। जैसे छत्र, चँवर आदि। २ और जो शरीरमें पीछेसे प्रगट होते हैं उन्हें व्यंजन कहते हैं। जैसे तिल आदि।

करती है । ब्रह्मचर्यव्रतके प्रभावसे होनेवाली भगवान्की शक्ति, त्रिकालमें उत्पन्न देवोंकी शक्तिसे अनन्तानन्त गुणी थी। भगवानके मुख-कमलमें विराजी हुई सरस्वती जीवोंके लिए प्रिय, हितकारी और बहुत थोड़ेमें समझानेवाली, थी । इत्यादि गुणरूप रत्नोंके भगवान् जन्महीसे खान थे। उन इन्द्रादि-पूज्य नेमिजिनके सौभाग्य-सम्पदाका वर्णन गणधर देव भी नहीं कर सकते तब और कौन उसका वर्णन कर सकता है। आकाश जैसे बिलस्त द्वारा और समुद्र जैसे चुल्लु द्वारा नहीं मापा जा सकता उसी तरह परमानन्द देनेवाले और चन्द्र-माकी कान्तिसे भी कहीं अधिक निर्मल नेमिजिनके श्रेष्ठ गुणोंकी किसी तरह गणना नहीं की जा सकती। इस प्रकार दाता, दयानिधि, अत्यन्त निस्पृह, ज्ञानी, सबको प्यारे, धीर, मोक्ष जिनसे बहुत ही निकट है और इन्द्रादि देवता-गण बड़े प्रसन्न हो-होकर जिनकी सेवा करते हैं ऐसे नेमिजिन-कुमार लोगोंके मनको खुश करते हुए अपने सम्पदासे भरे-पुरे राजमहलमें सुखके साथ समय विताने लगे।

जन्ममहोत्सवके समय इन्द्रने जिन्हें स्नान कराया, सुमेरु-पर जिनका स्नान हुआ, जिनके स्नानके लिए समुद्रका जल लाया गया, देवता-गणने जिनकी बड़े आदरके साथ सेवा की, जिनके उत्सवमें अप्सरायें नाचीं, और गन्धर्व देवोंने जिनकी कीर्ति गाई वे नेमिजिन सबको सुख दें।

इति सप्तमः सर्गः ।

आठवाँ अध्याय ।

कृष्ण-बलदेवकी दिग्विजय-यात्रा ।

एक वार मगधदेशके रहनेवाले कुछ महाजनोंके लड़कोने व्यापारकी इच्छासे समुद्रयात्रा की। कर्मयोगसे वे रास्ता भूलकर, पँचरंगी धुजाओंसे स्वर्गकी शोभाको नीची दिखानेवाली द्वारिकामें आगये। द्वारिकाको सब श्रेष्ठ सम्पदासे भरी-पुरी देखकर वे बड़े खुश हुए। यहाँसे उन्होंने कुछ वहुमूल्य रत्न खरीद किये। उन रत्नोंको राजगृह जाकर उन्होंने चक्रवर्त्ती जरासंधकी भेंट किये। अपनी कान्तिसे चारों ओर प्रकाश करदेनेवाले उन रत्नोंको देखकर जरासंध वड़ा खुश हुआ। उसने उन महाजन पुत्रोंको पान-सुपारी देकर पूछा—आप इन रत्नोंको कहाँसे लाये हैं? सुनकर वे महाजन-पुत्र बोले—महाराज, सुनिए।

हम लोग समुद्र-मार्गसे किसी दूसरे देशको जा रहे थे। रास्तेमें दिग्भ्रम हो जानेसे हम द्वारिकामें पहुँच गये। महाराज, द्वारिका बड़ी सुन्दर नगरी है। सब श्रेष्ठ सम्पदासे वह परिपूर्ण है। घर-घरपर फहराती हुई धुजाओंसे वह बड़ी शोभा देती है। उसमें वड़ा सुन्दर जिनमन्दिर है। दरवाजे दरवाजेपर टँगे हुए तोरणों और सब प्रकारकी उत्तमसे उत्तम वस्तुओंसे वह लोगोंके मनको वड़ा आकर्षित

करती है। यादव-वंश-शिरोमणि श्रीसमुद्रविजय महाराज, उनकी रानी शिवदेवी और उनके सुरासुर-पूज्य, जगच्चूड़ामणि पुत्र श्रीनेमिनाथ जिनके सम्बन्धसे वह रत्न-खानके समान जान पड़ती है। जिसने अपनी सुन्दरतासे देव-देवाङ्गना आदि सभीको जीत लिया है और जो बड़ी मनोहर है। और महाराज, शूरवीर-शिरोमणि कृष्ण अपने भाई बलभद्रके साथ वहीं रहता है। वे दोनों भाई ऐसे तेजस्वी वीर हैं कि शत्रु तो उनके सामने सिरतक नहीं उठा पाते—शत्रुकी बढ़वारीको उन्होंने दबा दिया है। महाराज, द्वारिका नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी है। धन-धान, सुख-सम्पदा आदिसे वह भरी-पुरी और सब जनकी इच्छाओंको पूरी करनेवाली है। इस प्रकार द्वारिकाकी बड़ी ही सुन्दर शोभा है महाराज,। देव, हम लोग इन मनोहर और पुण्य-समूहके समान उज्ज्वल रत्नोंको उसी द्वारिकासे लाये हैं। यह सब हाल सुनकर क्रोधके मारे जरासंधकी आँखें लाल होगईं। वह क्रोधभरी आँखोंसे अपने बड़े पुत्र कालयवनके मुँहकी ओर देखकर बोला—क्या मेरे शत्रु यादव-गण अबतक पृथ्वीपर जीते हैं? यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है। तुमसे तो मैंने सुन पाया था कि वे मेरे डरसे आगमें जलकर मर गये! अस्तु, जो हो, उन उद्धत लोगोंको मैं अभी ही जाकर मारूँगा। इस प्रकार क्रोधमें आकर जरासंधने उसी समय युद्ध-घोषणा दिलवा दी। उसे सुनकर वीरगणमें

बड़ी हलचल मच गई। इसके बाद उसने हाथी, घोड़े, रथ, पैदल-सेना तथा विद्याधर, देवतागण आदिके साथ युद्धके लिए कूच किया। उसके साथ भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, रुक्मी, शल्यराज, वृषसेन, कृप, भूमिनाथ, कृपवर्मा, रुधिर, सेन्द्रसेन, जयद्रथ, हेमप्रभ, दुर्योधन, दुश्शासन, दुर्मर्ष, दुर्धर्ष, भगदत्त–आदि बड़े बड़े राजे-महाराजे, तथा नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रसे सजे हुए वीरगण थे। इस प्रकार षड़ङ्ग-सेनासे युक्त जरासंध बड़ी तैयारीके साथ यादवोंके ऊपर चढ़ाई कर कुरुक्षेत्रमें आया। उसकी विशाल सेनाको देखकर यह जान पड़ता था कि कहीं प्रलय कालके कुपित वायुसे समुद्र तो नहीं चल गया है।

इसी समय कलह-प्रिय नारदने युद्धका सब कारण जानकर कृष्णसे आकर कहा–आप ऐसे निर्भय होकर क्यों बैठे हुए हैं? जान पड़ता है आपको कुछ मालूम नहीं है। अच्छा तो सुनिए–मदान्ध जरासंध शत्रु बड़ी भारी सेनाको साथ लेकर आपसे युद्ध करनेको कुरुक्षेत्रमें आ रहा है। और वह कहता है कि मेरे चाणूर पहलवानको मार डालनेवाले कृष्णको मैं भी अब किसी तरह जीता न छोड़ूँगा। उसे सारे कुटुम्बसहित जमीनमें मिला दूँगा। नारद द्वारा यह हाल सुनकर कृष्ण श्रीनेमिनाथके पास गये और उन्हें नमस्कार कर बोले–प्रभो, मगधका राजा जरासंध अपने विरुद्ध चढ़ाई कर युद्ध करनेके लिए आगया है। इस कारण द्वारिकाकी रक्षा तो

आप कीजिए और मैं आपकी कृपासे उसे जीतकर बहुत शीघ्र पीछा लौट आता हूँ। यह सुनकर नेमिनाथने अपना प्रफुल्ल मुख-कमल उठाकर प्रेमभरी आँखोंसे, हँसते हुए कृष्णकी ओर देखकर कुछ मुसकाया और अवधिज्ञानसे कृष्णकी विजय तथा उस योग्य उसका पुण्य जानकर 'ॐ' कहा। अर्थात् देवता-पूज्य नेमिजिनने 'ॐ' कहकर कृष्णकी बातको मान लिया। भगवान्‌की आज्ञा पाकर कृष्ण मनमें बहुत खुश हुए। भगवान्‌को हँसते हुए देखकर उन्हें निश्चय हो गया कि इस युद्धमें मैं अवश्य जयलाभ करूँगा। इसके बाद कृष्ण, भगवान्‌को प्रणाम कर बलभद्र, जय, विजय, सारण, अंगद, धव, उद्धव, सुमुख, अक्षर, जरराज, पाँच-पांडव, सत्यक, द्रुपद, विराट, धृष्ट, अर्जुन, उग्रसेन--आदि यादव-गण, शत्रुका नाश करनेवाले अन्य बड़े बड़े राजे-महाराजे तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे सजी हुई हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि सेना-से सजकर बड़ी तैयारीके साथ जरासंधपर विजय-लाभ करनेको कुरुक्षेत्रमें आ उपस्थित हुए। उनकी सेनामें बजते हुए बाजोंसे सब दिशायें शब्दमय होगईं। वीर योद्धा-ओंका उत्साह खूब बढ़ गया। डरपोक लोग भागने लगे। उस समय शत्रु-नाशकी इच्छा करनेवाले; कमर कसे हुए, महा बलवान् और संग्राम-शूर कृष्णवर्ण-धारी श्रीकृष्ण यमके समान देख पड़ते थे।

इसके बाद यमसेना-समान देख पड़नेवाली दोनों ओरकी सेना

खूनके प्यासे कुरुक्षेत्रमें आ-डटी। पहले कृष्णकी सेनामें युद्धके नगाड़ोंकी महान् ध्वनि उठी। उसे सुनकर कितनेही धर्मात्मा वीरगणने बड़ी भक्तिसे सुखकर्त्ता जिनभगवान्‌की पूजा की। कितनोंने दान दिया। कितनोंने अपने योग्य व्रतोंको धारण किया। इसके बाद दोनों ओरकी सेनाओंके राजोंने अपने सेवक-वर्गको आज्ञा दी कि घोड़े तैयार किये जायँ; मद-मस्त और चलने फिरनेवाले पर्वत समान बड़े बड़े हाथी ध्वजा, अम्बाड़ी आदिसे सजाये जायँ; युद्धोपयोगी सब वस्तुओंसे परिपूर्ण अत एव पूर्णताको प्राप्त मनोरथके समान जान पड़ने-वाले रथोंके घोड़े जोते जायँ; वीरगग जयश्रीके कुण्डल-सदृश और शत्रुओंके खूनके प्यासे धनुप चढ़ावें; योद्धागण हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र धारणकर सावधान होवें और सुभट लोग मिलकर रणमें भूखे कालको तृप्त करें। अपने अपने प्रभुकी आज्ञा पाकर रण-प्रिय वीरगण अपने अपने काममें लग गये। कृष्णने अपने सेनापतियोंको व्यूह-रचनाके लिए आज्ञा दी। उनकी आज्ञानुसार उसी समय व्यूहरचना होगई। उधर जरासंधने भी युद्ध-भूमिमें आकर बड़े गर्वके साथ अपनी सेनाको सजाया। इस प्रकार परस्प-रके खूनकी प्यासी दोनों ओरकी सेना अच्छी तरह सजकर तैयार हुई। रणके जुझाऊ बाजे बजने लगे। आकाश और पृथ्वी शब्दमय होगई। दोनों सेनाकी मुठभेड़ होते ही वीर-गण परस्परमें तीखे, प्राणोंके प्यासे, निर्दय, और दुर्जनके

सदृश वाणोंको छोड़ने लगे। उन धनुर्धारियोंके हाथोंसे छूटे हुए असंख्य वाणों द्वारा मिथ्यान्धकारसे ढक गये जगत्की तरह आकाश छा-गया। और कितने, बाणोंसे वींधे गये वीरगणके शरीरसे जो रक्त वहा उससे वे ऐसे जान पड़े मानों ढाक-पलाश फूला है। बड़े वेगसे एकके बाद एक वाण जो छोड़ा गया उससे गाढ़ अँधेरा हो गया। उसमें खड़े हुए वीरगणकी दृष्टिका कहीं संचार न होनेसे—एक ही जगह रुक जानेसे वे मिथ्यादृष्टिके समान देख पड़ने लगे। इस लिए स्वामीके सत्कारकी ओर चित्त देनेवाले वे महापराक्रमी धनुर्धारी-गण क्षणभर ठहरकर युद्ध करते थे। कितने शत्रुओंके खूनके प्यासे यम-समान वीर योद्धाओंने हाथमें धारण किये शस्त्रोंसे शत्रुओंको खूब ही काटा। कितने कटे हाथवाले योद्धाओंके हाथ फैलते न थे—जान पड़ता था पापके उदयसे वे दरिद्र होगये। कितने पाँव कट जानेसे रास्तेमें पड़ गये थे—अपने स्थानपर नहीं जा सकते थे। वे ऐसे जान पड़ते थे—मानों विना पाँवके मनुष्य हैं। प्राण निकलनेसे इधर उधर पड़ते हुए हाथी पर्वतसे देख पड़ते थे। उस युद्धका क्या वर्णन किया जाय। वहाँ जो खूनकी नदी वही वह जीवोंकी प्राण-हारिणी वैतरणीके समान देख पड़ती थी। गहरी चोट लगनेसे मूर्छित हुए कितने वीरगणोंकी आँखें मिच गईं। वे न बोल सकते थे और न जा सकते थे अतएव वे योगियोंसे जान पड़ते थे। कितने योद्धाओंने अपने शस्त्रोंसे शत्रु-

ओंके शस्त्रोंके काटनेमें बड़ी ही कुशलता दिखलाई । कितने वीरोंके गहरा घाव लग चुका था तो भी वे साहस कर सावधान होकर जिनका ध्यान स्मरण करने लगे और अन्तमें संन्यास धारण कर स्वर्गमें गये । कितने मिथ्यात्व-विष चढ़े हुए मोही योद्धा शस्त्रकी चोंटको न सह सकनेके कारण त्राह त्राह कर मरे और पापके उदयसे दुर्गतिमें गये । जिन मानी योद्धाओंको मालिकने बड़े आदर-मानके साथ रक्खा था उन्होंने उस ऋणको चुकानेके लिए ही मानों जी झोंककर लड़ाई लड़ी । कितने वीर योद्धाओंने अपने शूरताके गर्व और जीवन-रक्षाके वश होकर शत्रु-संहारक बड़ा ही घोर युद्ध किया । नाना तरहके शस्त्रों द्वारा जो इन दोनों ओरकी सेनाका घनघोर संग्राम हुआ वह राम-रावणके युद्धसे कम नहीं हुआ । इस युद्धमें जरासंघकी सेनाने कृष्णकी सेनाको पीछा हटा दिया । यह देखकर कृष्ण क्रोधसे काँप उठे । वे सब सेनाको लेकर यमकी तरह लड़नेको तैयार होगये । उनकी सेनाके घोड़ोंकी टापसे जो धूल उड़ी उससे आकाश छा-गया । युद्धके नगाड़ोंके शब्दसे दिशायें भर गईं । कृष्णने हाथी, घोड़े और योद्धाओंको खूब काट डाला और बड़े बड़े रथोंको बातकी बातमें छिन्न भिन्न कर दिया । इस प्रलयको देखकर शत्रुसेनामें त्राह त्राह मच गया । स्याद्वादी जैनी जैसे अपनी विद्या द्वारा मिथ्या मतोंका खण्डन कर उन्हें जीत लेता है उसी तरह कृष्णने जरासंघकी सेनाको बड़ी जल्दी जीत लिया । यह देखकर जरा-

संधको वड़ा क्रोध आया। उसने कृष्णसे कहा—अरे ओ ग्वालके छोकरे! गोकुलमें दूध पी-पीकर तू हाथीकी तरह मस्त होगया है, पर जान पड़ता है तू मेरे प्रभावको नहीं जानता। अपनी चंचलतासे तू समुद्रमें घुस गया है, पर अव तू मेरे सामनेसे जीते जी नहीं जा सकता। यदि तू मेरे पाँवोंमें पड़कर प्राणोंकी भीख माँगे तो मैं कह सकता हूँ कि तू जाकर तेरे विना रोती हुई गौओंको धीरज वँधा। जरा-संधके ये अभिमान भरे वचन सुनकर सिंह समान निर्भय कृष्णने उससे कहा— ओ अन्धे जरासंध! तू देखकर भी नहीं देखता है, यह वड़ा आश्चर्य है। देख, जिसने काँसेके वरतन समान कंसको टुकड़े टुकड़े कर दिया, जिसने चाणूर सदृश भयंकर मल्लको वातकी वातमें चूर डाला, उसे तू ग्वालका छोकरा वतलाता है? अस्तु, मैं छोकरा ही सही, पर याद रख आज मैं भी प्रतिज्ञा करता कि जवतक मैं तेरे टुकुड़े टुकड़े न कर दूँगा तवतक अपने भाई वलदेवके चरणोंको न देखूँगा—उन्हें अपना मुँह न दिखलाऊँगा। तू वृथा वकवाद क्यों कर रहा है? तुझमें यदि शक्ति है—वल है तो मुझपर आक्र-मण कर। इस प्रकार परस्पर अपनी अपनी तारीफ करते हुए जरासंध और कृष्ण मस्त हाथीपर वैठकर यमके समान एकपर एक झपटे और वाण-वरसा करने लगे। जरासंधने तव महा वलवान् श्रीकृष्णके प्राण-संहारक तीखे वाणोंको न सह सकनेके कारण वहुरूपिणी नाम विद्याको याद किया।

उस विद्याने अपनी मायासे तव एक वड़ी भारी भूतोंकी भयंकर सेना तैयार की । उसके दाँत तीखे, बड़े और आँखें लाल थीं । बाल ऊपरकी ओर उड़ते हुए और पीले थे । वह भयंकर हँसी हँस रही थी । मायासे उसने अनेक तरहके रूप धारण कर रक्खे थे । उस सेनाने कृष्णकी सारी सेनामें खलबली डाल दी—बड़ा कष्ट दिया । शूरवीर कृष्ण यह देखकर उस भूतोंकी सेनामें घुस गये और उसे चारों ओरसे मार मार कर भगाने लगे । कृष्णके ऐसे बलको देखकर वह विद्या जी बचाकर सूर्योदयसे नष्ट हुई-रातकी तरह भाग छूटी । यह देख-कर जरासंधने क्रोधित होकर कृष्णसे कहा— ओ ग्वालके अजान बालक ! इन भूतोंको भगाकर शायद तू अभिमानसे फूल गया होगा । ये चंचल भूत भाग जायँ या रहें इनसे मुझे कुछ लाभ या हानि नहीं । पर अब देख मैं अपने हाथोंसे तेरा सिर काटता हूँ । यह सुनकर वीररस चढ़ा हुआ कृष्ण निर्भय होकर यमकी तरह जरासंधके सामने जा खड़ा होगया । जरा-संधने तब क्रोधमें आकर कालचक्रके समान चक्रको घुमाकर कृष्णके ऊपर फैंका । सूर्य सदृश चमकता हुआ वह चक्ररत्न पुण्यसे कृष्णकी प्रदक्षिणा कर उनके हाथमें आगया । उस चम-कते हुए चक्ररत्नको हाथमें लेकर कृष्णने जरासंधसे कहा-अब भी मेरे हाथमें बात है, इसलिए मैं कहता हूँ कि सब पृथ्वी मुझे सौंपकर तू छल-कपटरहित प्रभु बलदेवकी शरणमें चला आ । तू वृथा जीव-संहारक कालके मुँहमें पड़कर कष्ट मत उठा ।

कृष्णके इन मर्मभेदी वचनोंको सुनकर जरासंध बोला–अरे ओ ओछे कुलमें पैदा हुए नीच! तू सियाल होकर मेरे सदृश विकराल सिंहको डर दिखलाता है? मैं जानता हूँ कि तू, तेरा क्षुद्र पिता और तेरा दादा कौन था। इसीलिए मैं तुझे पृथ्वी अवश्य दूँगा। माँगते हुए तुझे शर्म भी न लगी? और क्योंरे, जान पड़ता है इस कुम्हारके चक्र-समान चक्रको पाकर तू फूल गया है। बहुत कहनेसे कुछ लाभ नहीं। देख, इसी तलवारसे मैं तुझे अभी ही मौतके मुँहमें पहुँचा देता हूँ। यह सुनकर कृष्णके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। उन्होंने तब उसी समय चक्रसे जरासंधका सिर काट डाला। उस मदान्ध जरासंधके मरते ही कृष्णकी सेनामें जयजयकारकी महान् ध्वनि उठी। नगाड़े बजने लगे। उससे लोगोंको बड़ी खुशी हुई। देव-देवाङ्गनाओंने 'नन्द' 'जीव' आदि कहकर कृष्णके ऊपर फूलोंकी बरसा की।

इसके बाद कृष्ण चक्ररत्नको आगे करके बलदेव आदिके साथ दिग्विजय करनेको निकले। उनके आगे आगे बजते हुए नगाड़े सबको दिग्विजयकी सूचना देते जा रहे थे। मार्गमें उन्होंने अनेक देशों और बड़े बड़े राजोंको अपने वश किया। इस-प्रकार विजय करते हुए कृष्ण, यादवगण, अन्य बड़े बड़े राजे-महाराजे तथा सेनासहित पीठगिरि नाम पर्वत पर आये। उस पर्वतपर कोटिशिला नामकी एक बड़ी भारी शिला थी। बलदेव वगैरहने भक्तिसे उसकी पूजा की। उस समय

कृष्णके बलकी सब राजोंको प्रतीति हो, इस लिए बलदेवने कृष्णसे उस शिलाके उठानेको कहा। उनकी आज्ञा पाते ही कृष्णने बड़े सहजमें उतनी बड़ी शिलाको झटसे उठा दिया। हाथोंसे उपर उठाई हुई वह शिला उस समय छत्र-सदृश जान पड़ी। कृष्णके ऐसे बलको देखकर खुश हुए बलदेवने बड़े जोरका सिंहनाद किया। उसे सुनकर आये हुए पर्वत-निवासी सुनन्द नाम यक्षने कृष्ण और बलदेवकी पूजा की तथा कृष्णको एक नन्दक खड्ग (तरवार) भेंट किया। इसके बाद देवों, विद्याधरों तथा अन्य राजोंने तीर्थजलके भरे सोनेके एक हजार आठ कलशोंसे " ये नवमें नारायण और प्रतिनारायण हैं," ऐसा कहकर बड़े प्रेमसे उनका अभिषेक किया और बादमें अच्छी अच्छी वस्तुयें उन्हें भेंटकर उनकी पूजा-सत्कार किया।

यहाँसे गंगाके किनारे किनारे होकर पूर्वकी ओर जाते हुए चक्रवर्ती कृष्ण गंगाद्वारके पासवाले बागमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने जयजयकारके साथ अपनी सेनाका पड़ाव किया। इसके बाद कृष्ण रथपर चढ़कर दरवाजेके रास्ते निर्भयताके साथ समुद्रमें घुसे। वहाँ कुछ दूर खड़े रहकर उन्होंने एक अपने नामका बाण मागध नाम व्यंतर देवताको लक्ष्य कर चलाया। वह मागधव्यन्तर उस बाणको देखकर बड़े जोरसे चिल्लाया। इसके बाद जब उसे जान पड़ा कि पुण्यवान् कृष्ण यहाँ आये हुए हैं, तब उसने एक रत्नहार, मुकुट, कुंडलकी जोड़ी और

वह बाण इन सबको लाकर कृष्णकी भेंट किया और स्तुति की। समुद्रवासी बलवान् देवता भी कृष्णका नौकर होगया, यह कम आश्चर्यकी बात नहीं। पुण्यसे क्या नहीं होता।

यहाँसे प्रसन्नताके साथ निकलकर वह उदयशाली जितशत्रु कृष्ण सब सेनाको लेकर 'वैजयन्त' नाम द्वारपर पहुँचा। वहाँ उन्होंने वरतनु नाम देवको पराजित किया। उसने रत्नोंके कड़े, अंगद, चूड़ामणि नाम हार, और एक करधनी श्रीकृष्णके भेंट की और प्रणाम कर वह अपने स्थान चला गया। पुण्यसे कौन नहीं पुजता। यहाँसे कृष्ण पश्चिमकी ओर 'सिन्धुद्वार' पर गये। वहाँ समुद्रमें प्रवेश कर उन्होंने प्रभास नाम देवको जीता। उसने संतानक नाम एक मोतियोंकी माला, सफेद छत्र, तथा और भी बहुतसे वस्त्राभरण श्रीकृष्णके भेंट किये।

यहाँसे सिन्धुनदीके किनारे किनारे जाते हुए कृष्णने पश्चिमके राजोंको जीता और उनसे अनेक प्रकारके जवाहरात भेंट लेकर वे पूर्वकी ओर बढ़े। इधर उन्होंने विजयार्द्धपर्वतकी दोनों श्रेणीके राजोंको जीतकर उनसे नाना धन रत्न तथा देवाङ्गनासी सुन्दरी कन्याओंको प्राप्त किया।

इसके बाद रास्तेमें अन्य अनेक राजोंको जीतते हुए और उनसे भेंटमें प्राप्त रत्नादि श्रेष्ठ वस्तुओंको लेते हुए वे म्लेच्छ खंडमें आये। म्लेच्छखण्डको भी जीतकर वहाँके राजोंसे उन्होंने खूब धन-दौलत प्राप्त की। इस प्रकार नवमें नारायण,

प्रतिनारायण कृष्ण और बलदेव पुण्यके उदयसे विद्याधर और नर-राजोंको अपने वश करते हुए आधी पृथ्वीकी लक्ष्मीके स्वामी हुए ।

इस प्रकार विजयलाभ कर दोनों भाई यादव-राजों और अपनी सब सेनाके साथ बड़े आनन्द और सन्तोषसे द्वारिकाकी ओर लौटे । उनके आगमनसे द्वारिका बड़ी सजाई गई । घर-घरपर धुजायें और तोरण टाँगे गये । बड़े भारी उत्सवके साथ उन्होंने द्वारिकामें प्रवेश किया । उस समय वे दोनों भाई ऐसे जान पड़ते थे—मानों चलते-फिरते नीलगिरि और कैलासपर्वत हैं । मोतियोंकी माला जिनपर लटक रही है ऐसे छत्र और धुजाओंसे वे शोभित थे । उनपर सुन्दर चँवर ढुरते जाते थे । चारण लोग उनके उज्ज्वल यशका बखान करते जा रहे थे । देव, विद्याधर तथा अन्य बड़े बड़े राजे-महाराजे उनकी सेवामें उपस्थित थे । उनके मुख-कमल खिल रहे थे । धुजायें उनकी सिंह और गरुड़के चिह्नसे शोभित थीं । उन्हें देखकर लोग बड़े खुश होते थे । सुन्दर और बहुमूल वस्त्राभरण पहरे तथा खूब दान करते हुए वे ऐसे देख पड़ते थे—मानों दो नये और चलने-फिरनेवाले कल्पवृक्ष आये हैं ।

इसके बाद द्वारिकामें सब राजे, देव तथा विद्याधरोंने मिलकर बड़े प्रेमसे उन्हें दिव्य सिंहासनपर बैठाया और फिर जयजयकार, गीत, संगीत, गाजे-बाजेके साथ पवित्र जलके भरे एक हजार आठ सोनेके सुन्दर कलशोंसे उनका अभि-

षेक किया। इसके बाद "इन त्रिखण्ड-पृथ्वीमण्डलके स्वामीको हम अपना प्रभु स्वीकार करते हैं," ऐसा कहकर उन सबने बड़े आनन्दसे उन्हें वस्त्राभूषण धारण कराये और इनके पट्ट-बन्ध बाँधा। पुण्यसे जीवोंको क्या प्राप्त नहीं होता।

अब उनके वैभवका कुछ वर्णन किया जाता है। उनकी आयु एक एक हजार वर्षकी थी। उनका शरीर दस धनुष—कोई पैंतीस हाथ ऊँचा था। कृष्णका शरीर नीला और बलदेवका सफेद था। गणबद्ध नामके कोई आठ हजार देवता और सब विद्याधर, तथा सोलह हजार मुकुटबन्ध राजे और त्रिखण्डमें रहनेवाले अन्य सब देवगण उनकी सदा सेवा किया करते थे। महात्मा बलदेवके रत्नमाला, गदा, हल और मूसल ये चार महान् रत्न थे। इनके एक एक हजार देवता रक्षक थे। और आठ हजार बड़ी खूबसूरत, पुण्यवती और शील वगैरह गुणोंसे युक्त स्त्रियाँ थीं।

श्रीकृष्णको चक्र, शक्ति, गदा, शंख, धनुष, दंड और सुदण्ड ये सात रत्न प्राप्त थे। शत्रुओंको ये क्षणभरमें नष्ट कर-नेवाले थे। इनके भी एक एक हजार देव रक्षक थे। कृष्णके आठ मनोहर पट्टरानियाँ थीं। उनके नाम थे—सत्यभामा, रुक्मणी, जांबवती, सुशीला, लक्ष्मणा, गौरी, गान्धारी और पद्मावती। कृष्णकी सोलह हजार रानियोंमें ये ही आठ प्रधान रानियाँ थीं। इन हाव-भाव-विलास तथा रूप-सौभाग्यकी खान

अपनी सब रानियोंसे कृष्ण लता-मण्डित कल्पवृक्षकी तरह शोभा पाते थे।

अब इन दोनों भाइयोंके इकट्ठे वैभवका वर्णन किया जाता है। श्रेष्ठ सम्पदासे भरे हुए कोई सोलह हजार तो बड़े बड़े इनके देश थे; ९८५० द्रोण थे; नानारत्नोंसे भरे २५०० पत्तन थे; पर्वतोंसे घिरे हुए और मनचाही वस्तु जहाँ प्राप्त हो सकती है ऐसे १२००० कर्वट थे; और बावड़ी तालाब, बाग आदिसे शोभित १२००० ही मटंव तथा ८००० खेटक थे; लोगोंके पुण्यसे सदा छहों ऋतुके फल-फूलोंसे युक्त ४८००००००० क्रोड़ गाँव थे; सुन्दर और बड़े बड़े ऊँचे ४२००००० हाथी थे; और ४२००००० लाख ही रथ थे; अनेक देशोंके पँच-रंगी ९००००००० क्रोड़ घोड़े और ४२०००००००० क्रोड़ खड्गधारी वीरगण थे। इत्यादि पुण्यसे प्राप्त सम्पदाका सुख भोगते हुए कृष्ण-बलदेव बड़ी कुशलतासे प्रजा-पालन करते थे। उन्होंने सब शत्रुओंको जीत लिया था। यादव-वंश रूपी आकाशके वे बड़े प्रतापी सूरज और चाँद थे। सब सुर-असुर जिनके पाँव पूजा करते हैं उन नेमिजिनसे मण्डित

जिसके चारों ओर वाढ़ लगी हुई हो उसे 'ग्राम' या 'गाँव' कहते हैं। जिसके चारों ओर चार बड़े दरवाजेवाला कोट हो उसे 'नगर' कहते हैं। नदी और पर्वतसे जो घिरा हो वह 'खेट' कहाता है। पर्वतसे घिरे हुएको 'कर्वट' कहते हैं। पाँच गाँवोंसे युक्त 'मटंव' कहाता है। जिसमें रत्न उत्पन्न होते हों वह 'पत्तन' है। समुद्र-किनारेसे घिरे हुएको द्रोण कहते हैं। पर्वतपर बसे हुएको 'संवाहन' कहा है।

होकर वे बड़ी शोभाको प्राप्त होते थे। एकको एक प्राणोंसे अधिक प्यारे थे। त्रिखण्डका राज्य वे बड़ी अच्छी तरह करते थे। उनका परिवार बहुत बड़ा था। दिव्य-रत्नमयी मुकुटको पहरे हुए वे बड़े शोभते थे। श्रेष्ठसे श्रेष्ठ धन-दौलत उन्हें प्राप्त थी। वे बड़े सुन्दर और भाग्यवान् थे। इस प्रकार पूर्व पुण्यसे प्राप्त भोगोंको वे बड़े आनन्दसे भोगते थे। वे दोनों भाई ऐसे जान पड़ते थे—मानों बलवान् दिव्य शरीर-धारी इन्द्र और उपेन्द्र पृथ्वीको भूषित करनेको स्वर्गसे आये हुए हैं।

ऊपर जिस श्रेष्ठ सम्पदाका वर्णन किया गया वह तथा अन्य भी जगत्के हितकी सामग्री जिसके द्वारा प्राप्त हो सकती है वह जिनशासन चिरकाल तक बढ़े।

जो त्रिलोकके गुरु हैं, जिन्हें देवता नमस्कार करते हैं, जिनने मोक्ष देनेवाले धर्मका भव्यजनोंको उपदेश किया, मुनि लोग जिन्हें प्रणाम करते हैं, जिनके द्वारा सत्पुरुष सुख-लाभ करते हैं, जिनका सुयश जगत्में व्याप्त है और जो अच्छे अच्छे निर्मल गुणोंके धारक हैं वे नेमिजिन सुख देते हुए संसारमें चिरकाल तक रहें।

इति अष्टमः सर्गः।

नौवाँ अध्याय।

नेमिजिनका निष्क्रमण-कल्याण।

शरद ऋतुका समय था। सरोवर सत्पुषोंके वचन समान निर्मल जलसे भरे हुए थे। उनमें कमल फूल रहे थे। कृष्ण अपनी रानियोंके साथ मनोहर नाम सरोवरपर जल-विहार करनेको गये। वहाँ उन्होंने बड़ी देर-तक जलक्रीड़ा की। कृष्ण द्वारा जल छींटी गई स्त्रियाँ ऐसी देख पड़ती थीं—मानों नीले मेघमें विजलियाँ चमक रही हैं। और उधर जो रानियोंने कृष्णपर जल छींटा उससे वे ऐसे देख पड़े जैसे मेघमालाने नीलगिरिको सींचा हो। जल छींटनेके कारण किसी रानीके मोतियोंके हारसे टपकती हुई जलकी बूँदें रत्न-वर्षाके सदृश जान पड़ती थीं। कृष्ण द्वारा छींटे गये जलकी चोंटसे किसी रानीके कर्णफूल गिर पड़े—मानों जड़ कृष्णकी मारसे वे शर्मिन्दा होकर गिर पड़े हैं। संस्कृतमें 'ड' 'ल' में भेद नहीं माना जाता। इस कारण ऊपर एक जगह 'जल' और एक जगह 'जड़' अर्थ किया गया है। जो रानियाँ बहुत महीन वस्त्र पहरे हुई थीं वे जल छींटनेसे फेनसहित कमलिनियोंके समान देख पड़ती थीं। उनके वक्षस्थलोंपर जो केसर वगैरह लगी हुई थी, वह सब सरोवरमें धुल गई। जान पड़ा—सरोवर पीले वस्त्रसे ढक दिया गया। चन्द्रमाके समान गौरवर्ण बलदेवने भी इसी

सरोवरपर आकर अपनी रानियोंके साथ जल-क्रीड़ा की ।
ये लोग जल क्रीड़ा कर रहे थे। इसी समय सत्यभामा और
नेमिजिनमें जलकेलि होने लगी। अन्तमें नेमिजिन जब
जलसे बाहर हुए तब उन्होंने सूखा वस्त्र पहरकर उस गीले
वस्त्रको सत्यभामाके पास फैंक दिया और हँसी-हँसीमें कह
दिया कि जरा इसे धो तो दो। यह देखकर सत्यभामा अभि-
मानमें आकर नेमिजिनसे बोली—क्यों आप नाग-शय्यापर
चढ़े हैं? तथा आपने शार्ङ्ग नाम धनुष चढ़ाया है और शंख
पूरा है, जो मैं आपका वस्त्र धोदूँ। इसपर सत्यभामासे नेमि-
जिनने कहा—क्यों, क्या कोई यह बड़े साहसका काम है?
सत्यभामा बोली—यदि आप इसे कोई बड़े साहसका
काम नहीं बताते हैं तो जरा आप भी तो इन सब
कामोंको कर दीजिए। सत्य है कोई कोई मूर्ख स्त्री
गर्वसे ऐसी फूल जाती है कि फिर उसे कार्य-अकार्य
और हित-अहितका बिल्कुल ज्ञान नहीं रहता है। जिन्हें
देवता, राजे-महाराजे पूजते हैं, जो देवोंके भी देव और
जगद्गुरु हैं, और जिनके पाँवोंकी धूल भी यदि सिरपर
लगाली जाय तो सब पाप नष्ट हो जाते हैं उनका कोई काम
क्या न कर देना चाहिए? इन्द्रादि देवता भी जिनकी सेवा
करनेकी निरन्तर इच्छा किया करते हैं उनकी सेवा निधि-
की तरह बिना पुण्यके प्राप्त नहीं होती। सत्यभामाके ऐसे
वचन सुनकर नेमिजिनने कहा—अच्छी बात है मैं अभी ही

जाकर उन सब कामोंको करता हूँ । इतना कहकर नेमिजिन शहरमें आगये । इसके बाद उन्होंने नागमणिके तेजसे प्रकाशित नागशय्यापर चढ़कर उस बिजलीके सदृश धनुषको चढ़ा दिया और जिसके शब्दसे सब दिशायें शब्दपूर्ण हो जाती हैं उस शंखको भी पूर दिया । उनके उस धनुषकी टँकार और शंख-नादसे पृथ्वी काँप गई । देवतागण सन्देहमें पड़ गये । आकाशमें चाँद, सूरज, विद्याधर, व्यन्तरदेवता आदि भयसे घबराकर परस्परमें पूछने लगे कि 'यह क्या हुआ' 'यह क्या हुआ' ? इसके बाद वे सब मिलकर पृथ्वीपर आये । उनके आनेसे पृथ्वी चल-विचल होगई । पर्वत हिल उठे । समुद्रने मर्यादा छोड़दी दिग्गज । स्तंभोंको उखाड़-उखाड़कर भाग छूटे—जैसे दुष्ट कुपुत्र माता-पिता और गुरुजनकी आज्ञाको तोड़कर भाग-जाते हैं । घोड़े भयसे घबराकर चारों दिशाओंमे भाग गये । प्रजा किंकर्तव्य-मूढ़ होगई । द्वारिकामें इस प्रकार घबराहट और हलचल देखकर कृष्ण भी भयसे कुछ आकुलसे होगये । उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । नौकरोंसे उन्होंने कहा—जाकर देखो कि यह हल-चल क्यों मची हुई है । उन्होंने देख आकर कृष्णसे कहा—महाराज, यह सब करतूत अपने सुरासुर-पूज्य नेमिकुमारकी है । उन्होंने आयुध-गृहमें जाकर सहज ही नाग-शय्यापर चढ़कर धनुष चढ़ा दिया और शंख पूर दिया । इसी कारण यह सब लोक काँप उठा है । महाराज, महारानी

सत्यभामाजीने उन्हें अन्य साधारण मनुष्यकी सदृश समझकर उनकी धोतीको न धो दिया, किन्तु गर्वमें आकर उलटा उनसे कहा—क्या आपने नागशय्यापर आरोहण किया है, धनुष चढ़ाया है और शंख पूरा है जो मैं आपका कपड़ा धोदूँ ? महारानीजीके इन मर्मभेदी वचनोंको सुनकर नेमिजिनको अच्छा न जान पड़ा। इसी कारण उन्होंने यह सब किया है। छिपानेकी बातोंको भी मूर्ख स्त्रियाँ क्रोधमें आकर सबपर प्रगट कर देती हैं। यह सुनकर कृष्ण बड़े घबराये। उन्होंने उसी समय कुसुमचित्रा नाम सभामें जाकर बलदेवसे कहा—कुमार नेमिजिन बड़े बलवान् और तेजस्वी हैं। वे युद्धमें आपको और मुझे बातकी बातमें जीतकर अपना सब राज्य क्षणभरमें छीन लेंगे। इस कारण कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे वे किसी निर्जन वनमें भेज दिये जायँ। यह सुनकर बलदेव बोले—भाई, सुनो-नेमिकुमार चरम-शरीरी हैं, जगद्गुरु हैं, समुद्रविजय महाराजके वंशाकाशके चन्द्रमा हैं, मोक्ष जानेवाले हैं, देवतागण तक उनकी पूजा-भक्ति करते हैं, और वे बड़े ही मंदरागी हैं इस कारण वे किसीका कुछ बिगाड़ नहीं करेंगे। यह राज्य उन्हें तो तृणसे भी तुच्छ जान पड़ता है। वे तो हम ही लोग ऐसे हैं जिन्हें राज्य एक बड़े भारी महत्त्वकी वस्तु मालूम देती है। वे तो थोड़ासा भी कोई ऐसा वैराग्यका कारण देख लेंगे तो उसी समय दीक्षा लेकर योगी बन जायँगे। यह सुनकर मायावी कृष्ण राज्यके लोभसे उग्रवंशके

सूरज उग्रसेन महाराजके पास गये और कपटसे वे उग्रसेनसे बोले—महाराज, मेरी इच्छा है कि आपकी सुन्दरी राजकुमारी राजीमतीका नेमिजिनके साथ ब्याह कर दिया जाय। इसपर उग्रसेनने कहा—हे त्रिखण्डेश, हे माधव, आप हमारे पालनकर्त्ता प्रभु हैं। इस कारण त्रिलोकमें जो अच्छी चीज है, न्यायसे वह आपहीकी है। उसके लिए चरण-सेवकोंको पूछनेकी कोई जरूरत नहीं देख पड़ती। और इसपर भी 'वर' त्रिजगत्स्वामी नेमिजिन सदृश हैं तब तो कहना ही क्या? ऐसा गुणवान् वर बिना पुण्यके थोड़े ही मिल जाता है। उन त्रिलोकनाथके लिए मैं बड़ी खुशीसे अपनी राजीमतीको देता हूँ। उग्रसेन महाराजके अमृतसे वचन सुनकर कृष्ण बड़े सन्तुष्ट हुए। उन्होंने तब उसी समय पँचरंगी रत्नोंकी कान्तिसे सब ओर प्रकाश कर देनेवाली सोनेकी सुन्दर अँगूठीको राजीमतीकी उँगलीमें पहरा दिया। इसके बाद ही कृष्णने बड़े दानमानपूर्वक नेमिजिनके ब्याहकी तैयारी की। रत्नोंकी पच्चीकारीके कामका मंडप तैयार किया गया। उसमें सोनेके खंभे लगाये गये। अच्छे अच्छे सुन्दर और बहुमूल्य रेशमी वस्त्रोंसे वह सजाया गया। उसमें जगह जगह जो छत्र, चँवर, मोतियोंकी झालर, फूलमाला आदि वस्तुयें लगाई गईं उसे देखकर सबका मन बड़ा मोहित होता था। वह सुन्दर मण्डप नेमिजिनके यशःपुंजके समान देख पड़ता था। उसमें जो सदा दान दिया जाता था—उससे वह कल्पवृक्षसा जान पड़ता था। उसमें

एक बड़ी लम्बी-चौड़ी वेदी बनी हुई थी। उसपर मोतियों और रत्नोंकी धूलसे रंगावली बनाई गई थी। जिसे देख-कर लोगोंको बड़ा आनन्द होता था—वह वेदी ऐसी जान पड़ती थी मानों उसे स्वयं लक्ष्मीने आकर बनाई है।

उस मण्डपमें सत्पुरुषोंके मन-समान निर्मळ एक बड़ा लम्बा-चौड़ा सोनेका पट्टा रक्खा गया। उसके चारों ओर मंगलद्रव्य लगाये गये। देवाङ्गना और स्त्रियाँ वहाँ गीत गाने बैठीं। उस समय नाना प्रकार उत्सवके साथ परिवारके लोगोंने सुरासुर-पूज्य श्रीनेमिकुमार और राजीमतीको उस पट्टेपर बैठाया। खूब बाजे-गाजे और जयजयकारके साथ उन वरके-वधू ऊपर केसरसे रंगे चावल क्षेपणकर उन्हें आशीर्वाद दिया गया। उस उत्सवमें दिव्य वस्त्राभरण पहरे हुए वे वर-वधू लक्ष्मी और पुण्यके पुंज-समान जान पड़े। यह सब क्रिया हुए बाद तीसरे दिन पाणि-जलदान करना ठहरा। उस समय आगे कुगतिमें जानेवाले लोभी कृष्णने राज्य छिन जानेके डरसे सोचा—इस समय मैं नेमिजिनको कोई ऐसा वैराग्यका कारण दिखलाऊँ जिससे वे विषयोंसे उदासीन—विरक्त होकर दीक्षा लेजायँ। यह मनमें सोचकर कृष्णने बहेलियोंसे बहुत मृगोंको मँगवा कर एक जगह इकट्ठे करवा दिये और उनके चारों ओर काँटेकी बाढ़ लगवा दी। और उन लोगोंसे कृष्णने कह दिया कि देखो, नेमिकुमार इस ओर घूमनेको आवें

तब तुम उनसे कहना कि आपकी शादीमें जो म्लेच्छ लोग आये हुए हैं उनके लिए कृष्ण महाराजने इन मृगोंको मँगवाया है । इतना कहकर कृष्ण चले गये । अज्ञानी जन राज्य-लोभसे अन्धे बनकर कौन पाप नहीं कर डालते ! जैसा कि कृष्णने नेमिजिनसे छल किया ।

दूसरे दिन नेमिजिन अच्छे वस्त्राभरण, फूलमाला आदिसे खूब सजकर घूमनेको निकले । उनके साथ हाथी, घोड़े और बहुतसे वीरगण थे । बड़े बड़े राजों-महाराजोंके राज-कुमार उन्हें घेरकर चल रहे थे । नेमिजिन चित्रा नाम रत्नमयी पालखीमें बैठे हुए थे । छत्र, धुजायें उनपर शोभा दे रही थीं । चन्द्रमाकी कान्ति-समान उज्ज्वल चँवर उनपर ढुरते जा रहे थे । चारण और गन्धर्वगण उनका यश गाते जाते थे । नाना तरहके बाजोंके शब्दसे दिशायें शब्दमय होगई थीं । 'जय' 'नन्द' 'जीव' आदि जयजयकार हो रहा था । अपनी श्रेष्ठ शोभासे जिनने इन्द्रको भी जीत लिया था ।

नेमिजिन वहाँ आये जहाँ कृष्णने मृगोंको इकट्ठा करवा रक्खा था । उन्होंने देखा कि बेचारे मृग भूख-प्यासके मारे मर रहे हैं—बिलबिला रहे हैं और मूर्च्छा खा-खाकर इधर उधर गिर-पड़ रहे हैं । उनकी यह कष्ट-दशा देखकर भगवान्‌ने उनके रक्षक लोगोंसे पूछा—ये मृग यहाँ क्यों रोके गये और क्यों इन्हें इस तरह इकट्ठे बाँधकर कष्ट दिया जा रहा है ? वे लोग हाथ जोड़कर दयासागर भगवान्‌से बोले—

प्रभो, आपके ब्याहमें जो म्लेच्छ राजे लोग आये हैं उनके लिए कृष्ण महाराजने इन्हें यहाँ इकट्ठे करवाये हैं। उनके इन वचनोंको सुनकर नेमिजिनका मनरूपी वृक्ष दयाजलसे लहलहा उठा। उनने सोचा—यह विपरीत, महानरकमें ले-जानेवाला पशु-वध हमारे कुलमें आज तक कभी न-हीं हुआ। यह पापी भीलोंका काम है। इसके वाद उन्होंने अवधिज्ञानसे जान लिया कि यह सब छल-कपट कृष्णने किया है। उसे इस वातका बड़ा डरसा होगया है कि कहीं नेमिजिन मेरा राज्य न छीनलें। और इसी कारण उसने ऐसे बुरे कामको भी करडाला। इस असार संसारको धिक्कार है जिसमें मिथ्यात्व-विष चढ़े हुए तृष्णातुर लोग सैकड़ों पाप कर डालते हैं और क्रोध-लोभ-मान-माया—आदि-से ठगे जाकर हिंसा, झूठ, चोरी वगैरह करने लगते हैं। उनके परिणाम वड़े खोटे और सदा पापरूप रहते हैं। वे फिर पंचेन्द्रियोंके विषयों और सात व्यसनोंमें फँसकर दुःखके समुद्र घोर नरकमें पड़ते हैं। वहाँ वे काटे जाते हैं, छेदे जाते हैं, तीखे आरेसे चीरे जाते हैं, कढ़ाईमें तले जाते हैं, सूलीपर चढ़ाये जाते हैं, घनोंसे कूटे जाते हैं, भाड़में भुने जाते हैं, सेमलके काँटेदार वृक्षकी नोखसे घिसे जाते हैं, भूखे-प्यासे मारे जाते हैं और ज्वर वगैरह रोगों द्वारा कष्ट दिये जाते हैं। इस प्रकार पूर्वजन्मके वैरसे संक्लिष्ट-असुर-जातिके दुष्ट देवों द्वारा दिये गये नाना तरहके दुःखोंको चिरकाल तक पापके उदयसे वे सहन करते रहते हैं।

इसके बाद पशुगतिमें भी उन्हें वध-वन्धन आदिका महान् दुःख भोगना पड़ता है । मनुष्यगतिमें भी सुख नहीं है । वहाँ वे जन्मान्तरकी पापरूपी आगमें तप्त होकर अच्छी वस्तुके नष्ट हो जाने और बुरी वस्तुके प्राप्त होनेका महान् दुःख उठाते हैं । किसीके पुत्र नहीं, तो किसीके स्त्री नहीं । कोई दरिद्री है, तो कोई रोगी है । किसीके पास खानेको नहीं, तो किसीके पास पहरनेको नहीं है । इस प्रकार सवको कोई न कोई प्रकारका दुःख है ही । देव वेचारे मानसिक दुःखसे दुखी हैं । दूसरे देवोंकी सम्पदा देखकर मिथ्यादृष्टि देवोंको वड़ा दुःख होता है ।

और यह शरीर मल-मांस-रक्त आदिसे भरा हुआ हड्डियोंका एक पींजरा है । इसमें पैदा होनेवाले कफ आदिको देखकर घृणा होती है । यह वड़ा ही घिनौना, नाना रोगोंका घर, सन्ताप उत्पन्न करनेवाला और पापका कारण है । इसकी कितनी ही रक्षा करो, कितना ही घी-दूध-मिष्टान्न वगैरहसे इसे पोसो तो भी नष्ट हो जायगा । यह वड़ा ही निर्गुण है । दुर्जनकी तरह यह आत्माका कभी न हुआ न होगा । और ये पंचेन्द्रियोंके विषय-भोग ठगके भी महा ठग हैं । अग्नि जैसे ईन्धनसे तृप्त नहीं होती उसी तरह इन विषयोंसे जीवकी तृप्ति नहीं होती । जव संसारकी यह दशा है तव मुझे राग और कर्म-वन्धके कारण व्याह करके ही क्या करना है ? वह तो सर्वथा त्यागने ही योग्य है । इस प्रकार वैराग्य-

भावनाका विचार कर लोक-श्रेष्ठ नेमिजिन आगे न जाकर वहींसे अपने महल लौट गये। त्रिलोकनाथ नेमिजिन महल-पर जाकर भी निश्चिन्त न बैठ गये । वहाँ उन्होंने बारह भावनाओंपर विचार किया।

संसारमें धन-दौलत, पुत्र-स्त्री, भाई-बन्धु आदि कोई स्थिर नहीं है—सब पानीके बुद्‌बुदेके समान क्षणमात्रमें नष्ट होनेवाले हैं । सम्पदा चंचल बिजलीकी तरह और जवानी हाथके छेदोंमेंसे गिरनेवाले जलके समान देखते देखते नष्ट हो जायगी। जो आज अपने बन्धु हैं—हितू हैं कल जिस कारणसे वे ही सब शत्रु बन जाते हैं वह राज्य महादुःख देनेवाला और क्षणभरमें नष्ट होनेवाला है। अज्ञानी मूर्ख लोग तो भी इन सबको नित्य—नष्ट न होनेवाले समझते हैं—जैसे धतूरा खानेवालेको सब सोना ही सोना दिखता है ।

१—अनित्य-भावना।

संसारमें इस जीवको देवी-देवता, इन्द्र-धरणेन्द्र वगैरह कोई नहीं बचा सकता। खुद उन्हें ही आयुके अन्तमें मौतके मुँहमें पड़ना पड़ता है। तब अन्य साधारण जीवोंका तो कहना ही क्या है? माता-पिता, भाई-बन्धु आदि प्रिय जनके रहते भी जहाँ आयु पूरी हुई कि उसी समय मौतके घर पहुँच जाना पड़ता है—उसे कोई अपनी शरणमें रखकर नहीं बचा सकता। हाँ इस त्रिभुवनमें भव्यजनके लिए एक पवित्र शरण है और वह ज्ञान-दर्शन-चारित्रका लाभ।

इसके द्वारा वे जिस मोक्षको प्राप्त करेंगे फिर उन्हें कभी किसीकी शरण ढूँढ़ना न पड़ेगी ।

२—अशरण-भावना ।

यह संसार-वन मिथ्या-मोहरूपी अन्धकारसे व्याप्त है, क्रोधरूपी व्याघ्रोंका घर है, मानरूपी बड़े भारी दुर्गम पर्वतसे युक्त है, मायारूपी गहरी नदी इसमें बह रही है, लोभरूपी सैकड़ों सर्प इसमें इधर उधर फिर रहे हैं, जन्म-जरा-मरण-रोग आदि भीलोंसे यह डरावना है, नीच-ऊँच-कुलरूपी वृक्षोंसे पूर्ण है, दुर्जनरूपी काँटोसे युक्त है, तृष्णारूपी चीते जिसमें इधर उधर घूँम रहे हैं और जो मत्सरतारूपी हाथियोंसे व्याप्त है, ऐसे संसारवनमें रत्नत्रयरूपी सुखमार्गको छोड़ देनेवाले मूर्खजन दुःसाध्य पर श्रेष्ठ मोक्षमार्गरूप नगरको कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? अर्थात् नहीं हो सकते। इस लिए उन्हें रत्नत्रय-मार्ग न छोड़ना चाहिए।

३—संसार-भावना ।

यह जीव एक ही पुण्य करता है, एक ही पाप करता है। और उनका सुख-दुःखरूप फल भी एक ही भोगता है। माता-पिता, भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, सज्जन-दुर्जन आदि कोई भी इस संसारमें जीवके साथ नहीं जाता है। पापसे एक ही नरक जाता है, एक ही पशुगतिमें पैदा होता है, एक ही नीच-कुलमें जन्म लेता और पुण्यसे सुकुलमें उत्पन्न होता है, वह भी एक ही। न यही, किन्तु जो हितकारी दो प्रका-

रका रत्नत्रय आराधकर मुक्तिकान्ताका वर होता है वह सिद्ध भी एक ही जीव होता है।

४—एकत्व-भावना।

यह जीव कभी पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और वनस्पतिमें, कभी दो-इन्द्रिय, तीन-इन्द्रिय, चार-इन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें और कभी मनुष्य गतिमें ऊँचे-नीचे कुलमें पैदा हुआ। कभी यह पापसे नरक गया और कभी पुण्यसे स्वर्गमें देव हुआ। आठ कर्मोंके सम्बन्धसे यह चारों गतियोंमें दूध-पानीके समान एक साथ मिलकर रहा। कभी पुण्यके उदयसे इसे सुख प्राप्त हुआ और कभी पापसे दुःख भोगना पड़ा। राग-द्वेष-क्रोध-मान-माया-लोभ आदिसे यह बड़ा ही मलिन रहा। यह सब कुछ होने पर भी यह उन वस्तुओंसे मिल नहीं गया—उनरूप नहीं हो गया। अपने स्वरूपसे यह सुवर्ण-पाषाणकी तरह सदा ही जुदा रहा—अन्यरूप ही रहा।

५—अन्यत्व-भावना।

यह शरीर प्रगट ही अपवित्र है। इसका सम्बन्ध पाकर चन्दन, केसर, फूलमाला, वस्त्र आदि श्रेष्ठ वस्तुयें भी अपवित्र हो जाती हैं—जैसे लसुनकी गंधसे अन्य चीजें दुर्गन्धित हो जाती हैं। संसारमें आत्मा जो निरन्तर दुःख उठाया करता है उसका कारण—आधार भी यही शरीर है—जैसे जलका आधार या कारण पात्र होता है। इस प्रकार अपवित्र

शरीरमें भी मूर्खजन प्रेम करते हैं और फिर धर्मरहित होकर अनन्त दुःख भोगते हैं।

६—अशुचि-भावना।

छिद्रसहित नावमें जैसे बराबर पानी आया करता है उसी तरह संसारमें इस जीवके पाँच मिथ्यात्व, बारह अव्रत, पचीस कषाय और पन्द्रह योगों द्वारा निरन्तर आस्रव आता रहता है। यह बड़ा दुःखका कारण है। इसके द्वारा आत्मा लोहेके गोलेकी तरह नीचे ही नीचे जाता है—कुगतियोंमें जाता है। उससे फिर इसे अनन्त दुःख भोगना पड़ते हैं। इस कारण मिथ्यात्वको आदि लेकर जो सत्तावन प्रकारके आस्रव जीवोंको दुःख देनेवाले हैं उन्हें जानना चाहिए और जानकर उनके रोकनेका यत्न करना चाहिए।

७—आस्रव-भावना।

संवर जीवोंको सैकड़ों सुखोंका देनेवाला है। कर्मोंके आस्रव रोकनेको संवर कहते हैं। वह संवर मन-वचन-कायसे तीन गुप्ति, पाँच समिति, दस धर्म, बारह भावना, परीषह-जय और पाँच प्रकार चारित्रके धारण करनेसे होता है। पानी रोकनेको जैसे पुल बाँधा जाता है उसी तरह कर्मास्रव रोकनेको संवरकी आवश्यकता है।

८—संवर-भावना।

कर्मोंके थोड़े थोड़े नष्ट होनेको निर्जरा कहते हैं। वह ...र और अकामनिर्जरा ऐसे दो प्रकारकी है।

सकामनिर्जरा मुनियोंके होती है और अन्य लोगोंके अकाम-निर्जरा । बाह्य तप और अभ्यन्तर तप द्वारा कायक्लेश सहकर कर्मोंकी निर्जरा करनी चाहिए । सब तपोंमें उपवास श्रेष्ठ तप है–जैसे सारे शरीरमें सिर । जिसने सन्तोषरूपी रस्सीसे मन-बन्दरको बाँधकर सम्यक्त्वसहित तप तपा संसारमें वही पुण्यवान् है । तप चिन्तामणि है । तप कल्पवृक्ष है । ज्ञानी लोगोंने उस तपका स्वरूप इच्छाका रोकना कहा है ।

९–निर्जरा-भावना ।

जिसमें जीवादिक पदार्थ सदा लोके जायँ–देखे जायँ वह लोक है । यह लोक अनादिनिधन और अनन्त है । उसके अधोलोक, मध्यलोक और उर्द्धलोक ऐसे तीन भेद हैं । यह चौदह राजू ऊँचा है । इसका घनाकार ३४३ राजू है । इसका आकार कमरपर हाथ धरकर पाँव पसारे खड़े हुए मनुष्यकासा है । यह जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्योंसे भरा हुआ है । इसे घनवात, घनोदधिवात और तनुवात ये तीन वातवलय घेरे हुए हैं । इसका न कोई बनानेवाला है और न कोई नाश करनेवाला है । आकाशकी तरह यह भी सदासे है । इसके अन्त-शिखर पर सदा शुद्ध सिद्ध परमात्मा सम्यक्त्वादि आठ गुणसहित विराजे हुए हैं । इस प्रकार इस लोकका ध्यान–विचार वैराग्य बढ़ानेके लिए भव्यजनोंको अपने पवित्र मनमें सदा करना चाहिए ।

१०–लोक-भावना ।

'बोधि' नाम रत्नत्रयका है। इस रत्नत्रयमें पहला सम्यग्दर्शन बड़ा ही दुर्लभ है। जीव, अजीव-आदि पदार्थोंके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। इसे निःशंकित आदि आठ अंग-सहित धारण करना चाहिए। यह रत्नकी तरह सब व्रत और सब क्रियाओंका भूषण है। ज्ञान आठ प्रकारका है। वह नेत्र-सदृश पदार्थोंका ज्ञान कराता है। चारित्र तेरह प्रकार है। यह व्यवहार रत्नत्रय कहलाता है। कर्म-मलरहित शुद्ध आत्मा निश्चय रत्नत्रयरूप है।

११–बोधि-भावना।

चतुर्गतिमें गिरते हुए जीवोंको न गिरने देकर उन्हें उत्तम सुख-स्थानमें रखदे वह धर्म है। संसारमें इसका लाभ बड़ा दुर्लभ है। सब प्रमादोंको छोड़कर दसलक्षणरूप इसी धर्मका सदा आराधन करना चाहिए। अथवा वस्तुके स्वभावको, जीवोंकी श्रेष्ठ दयाको और ऊपर कहे हुए रत्नत्रयको भी धर्म कहते हैं। इस प्रकार धर्मका संक्षेप स्वरूप कहा गया। यह सब प्रकारके सुख और स्वर्ग-मोक्षका देनेवाला है। भव्यजनको इस धर्मका सदा सेवन करना उचित है।

१२–धर्म-भावना।

इस प्रकार अनुप्रेक्षा वगैरहका विचार करते हुए त्रिजग-हितकारी नेमिजिनने अपने पूर्वजन्मका भी हाल जान लिया। इसी समय पाँचवें ब्रह्मस्वर्गके अन्तमें रहनेवाले लोकान्तिक नाम देवता-गण जयजयकारके साथ भग-

वान्‌के ऊपर फूलोंकी वरसा करते हुए वहाँ आगये । वड़ी भक्तिसे वे भगवान्‌को सिर नवाकर वोले—हे भगवन्, हे भुवनोत्तम, सत्य ही इस दुर्गम संसार-वनमें कहीं भी सुख नहीं है । सुख तो उसीमें है जिसे आपने मनमें करना विचारा है । प्रभो, आप संसार-समुद्रसे पार करनेवाले संयमको ग्रहण कीजिए और फिर केवलज्ञान प्राप्त करके जीवोंको वोध दीजिए । भगवान् आप स्वयंसिद्ध जिन हैं । हम सरीखे क्षुद्रजन आपको मोक्ष-मार्ग क्या वता सकते हैं ।

परन्तु नाथ, आपकी चरण-सेवा करनेका हमारा नियोग है, वह हमें पूरा करना पड़ता है । प्रभो, संसारमें कोई ऐसा वक्ता या उपदेशक नहीं जो सूरजको प्रकाश करना वतला सके । उसी तरह आप-सदृश ज्ञानियोंको कौन प्रवोध दे सकता है । हे जगद्वन्द्यो, आप तो स्वयं ही केवलज्ञानी-भास्कर होकर उलटा हमीको प्रवोध दोगे । इस प्रकार भक्तिसे भगवान्‌की प्रार्थना कर वे सव देवतागण अपने अपने स्थान चले गये ।

इनके वाद ही अन्य देवतागण तथा विद्याधर-राजे वगैरह आये । भक्तिसे प्रणाम कर उन्होंने भगवान्‌को जयजयकारके साथ सिंहासन पर वैठाया । नाना प्रकारके वाजे वजने लगे । देवाङ्गना सुन्दर गीत गाने लगीं । देवतोंने इसी समय नाना तीर्थोंके जलसे भरे सौ सुवर्ण-कलशोंसे भगवान्‌का अभिषेक किया । इसके वाद उन्होंने चन्दन, केसर आदि सुगन्धित

वस्तुओंका भगवान्‌के शरीरपर लेपकर उन लोक-भूषण जिनको सुन्दर वस्त्र और बहुमुल्य आभूषणोंसे सिंगारा, उन्हें फूलोंकी मनोहर माला पहराई। इस प्रकार सिंगारे हुए लोक-श्रेष्ठ भगवान् ऐसे जान पड़े—मानों मुक्तिकान्ताके वर बनकर वे जा रहे हैं। इसी समय देवतोंने भगवान्‌के सामने 'देव-कुरु' नाम रत्नमयी पालकी लाकर रक्खी। संयम ग्रहण-की इच्छा कर भगवान् उसमें बैठे। देवगण उस पालखी-को उठाकर चले। भगवान्‌के आगे आगे अनेक प्रकारके बाजे बज रहे थे। छत्र उनपर शोभित था। चँवर ढुर रहे थे। अनेक राजे-महाराजे तथा विद्याधर लोग भगवान्‌के साथमें चल रहे थे। देवगण त्रिभुवननाथ जिनको घने छायादार वृक्षोंसे शोभित 'सहस्राम्रवन' नाम बागमें ले-गये। सुन्दर वचनोंसे सब लोगोंको खुश करनेवाले भगवान् वहाँ एक सुन्दर सजाई गई पवित्र शिलापर पद्मासन विराजे। छठे उपवासके दिन चैत सुदी छठको चित्रानक्षत्रमें सन्ध्या समय अन्य एक हजार राजोंके साथ मन-वचन-कायसे सब परिग्रह छोड़कर और 'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर नेमिजिनने जिनदीक्षा ग्रहण करली। अपने हाथोंसे भगवान्-ने केशोंका लोच किया। कोई तीनसौ वर्षतक कुमार अव-स्थामें रहकर भगवान्‌ने यह संयम स्वीकार किया था। आत्म-ध्यान करते हुए नेमिजिनको उसी समय मनःपर्ययज्ञान हो गया। इसके बाद भगवान्‌के पवित्र केशोंकी सुरेन्द्रने

पूजा कर उन्हें रत्नके पिटारेमें रक्खा और धर्म-प्रेमके वश होकर उत्सव करते हुए अन्य देवगणसहित उन्हें लेजाकर क्षीरसमुद्रमें डाल दिया।

देवाङ्गनासी सुन्दरी राजकुमारी राजीमतीने जब यह सब सुना तब उसे, भूखेका अमृतमय भोजन छुड़ालेनेके सदृश बड़ा ही दारुण दुःख हुआ। उसने बड़ा ही शोक किया। उसके कोमल मनको इस घटनासे अत्यन्त ताप पहुँचा। कुछ समय बाद जब विवेकरूपी माणिकके प्रकाशसे उसके हृदयका मोहान्धकार नष्ट होगया तब वह भी जिनप्रणीत श्रेष्ठ धर्मका मर्म समझकर विषय-भोगोंसे बड़ी ही विरक्त होगई। महा वैरागिन बनकर उसने जिनको नमस्कार किया और उसी समय सब बहुमूल्य रत्नाभरणोंको त्याग-कर रत्नत्रयमयी पवित्र जिनदीक्षा ग्रहण करली। कुलीन कन्याओंका यह करना उचित ही है जो वे वाग्दान ही हो जानेपर अन्य पतिको न वरें।

इधर जहाँ रत्नत्रय-पवित्र श्रीनेमिजिन आत्मध्यान करते हुए मेरु-सदृश निश्चल विराज रहे थे, देवगण वहाँ बलदेव, कृष्ण वगैरहको साथ लेकर आये। अनेक द्रव्योंसे उन्होंने भगवान्‌की पूजाकर बड़े आनन्दसे फिर स्तुति की। हे देव, आप त्रिभुवनके स्वामी हैं। आपने मोह-रूपी महान् ग्राहको जीत लिया है। प्रभो, आप ही सब तत्वोंके जाननेवाले और त्रिलोक-पूज्य हो। आपने उद्धत काम-शत्रुको

जीत करके स्त्री-सम्बंधि सुखकी ओरसे मुँह फेरकर बड़ी वीरताका काम किया। हे मुनि-श्रेष्ठ नेमिजिन, इस कारण आपको नमस्कार है। इसके बाद उन परम आनन्द देनेवाले मुनिजन-सेवित नेमिजिनको नमस्कार कर और उनके गुणोंका स्मरण करते हुए वे सब अपने अपने स्थानको चले गये।

मुनिजनोंके साथ ध्यानमें बैठे हुए नेमिजिन ऐसे जान पड़ते थे—मानों पर्वतोंसे घिरा हुआ अंजनगिरि है। सुरासुर-पूज्य नेमिजिन इस प्रकार शुभ ध्यानमें दो दिन बिताकर तीसरे दिन ईर्यासमिति करते हुए पारणा करनेको द्वारिकामें गये। उन्हें देखकर पुण्यशाली दाता जनोंको बड़ा ही आनन्द होता था। हजारों दानी उन्हें आहार देनेके लिए बड़ी सावधानीके साथ अपने अपने घरपर खड़े हुए थे। एक वरदत्त नाम राजाने, जिसका शरीर सोनेकासा सुन्दर चमक रहा था, भगवानको आते हुए देखे। उसे जान पड़ा—मानों नीलगिरि पर्वत ही चला आ रहा है या निःसङ्ग—धूल वगैरह रहित वायु पृथ्वीमण्डलको पवित्र कर रहा है अथवा शीतल चन्द्रमाका बिम्व आकाशसे पृथ्वीपर आया है। देखते ही भगवानके सामने आकर उसने उनकी तीन प्रदक्षिणा की। मानों उसके घरमें निधि ही आ गई हो, यह समझकर वह बड़ा ही आनन्दित हुआ। इसके बाद उन त्रिलोक-बन्धु जिनको अपने महलमें ले-जाकर उसने बड़ी भक्तिसे ऊँचे आसन पर बैठाया। फिर जलभरी सोनेकी झारीसे उनके

सुखकर्त्ता पाँव पखारकर उसने चन्दनादिसे उनकी पूजा की और मन-वचन-कायकी पवित्रतासे उन्हें प्रणाम किया। इस राजाके यहाँ वैसे तो सदा ही शुद्धताके साथ भोजन तैयार होता था, पर आज कुछ और अधिक पवित्रतासे तैयारी की गई थी। उसने तब महापात्र नेमिजिनको नवधा भक्ति और श्रद्धा, शक्ति, भक्ति, दया, क्षमा, निर्लोभता—आदि दाताके गुण-सहित प्रासुक आहार, जो दाताको अनन्त सुखका देनेवाला है, कराया। भगवान्ने उस पवित्र और पथ्यरूप आहारको अच्छी तरह देखकर उदासीनताके साथ कर लिया। इतने-में ऊपरसे देवगणने—" यह अक्षय दान है, " यह कहकर बड़े प्रेमके साथ राजाके आँगनमें कोई साढ़े १२ करोड़ दिव्य-प्रकाशमयी पँचरंगी रत्नोंकी बरसा की, सुगन्धित फूल बर-साये, शीतल और सुगंधित हवा चलाई, धीरे धीरे गंध-जलकी बरसा की और नगाड़े बजाये। इससे लोग बड़े सन्तुष्ट हुए। देवगणने कहा—साधु साधु राजन्, तुम बड़े ही पुण्य-वान् हो जो भव्यजनको संसार-समुद्रसे पार करनेको जहाज सदृश जगच्चूड़ामणि नेमिजिन योगी तुम्हारे घर आहार करने आये। वरदत्त महाराज, तुमसे महा दानीको धन्य है, जो तुम्हारे महलको जगद्गुरुने पवित्र किया। तुम्हारा यह दान बड़ा ही शुद्ध और सब सुख-सम्पदा तथा पुण्यका कारण है। इसका वर्णन कौन कर सकता है? उन पवित्र-हृदय देवोंने इस प्रकार भक्तिसे वरदत्तकी बड़ी प्रशंसा की। इस महा-

दानके फलसे वरदत्तराजके घर पञ्चाश्चर्य हुए। उनका यश चारों ओर फैल गया । श्रेष्ठ पात्रके समागमसे क्या शुभ नहीं होता ? इस पात्रदानके उत्तम पुण्यसे दुर्गतिका नाश होता है, उज्ज्वल यश बढ़ता है, और धन-दौलत, राज्य-विभव, रूप-सुन्दरता, दीर्घायु, निरोगता, श्रेष्ठ कुल, स्त्री-पुत्र आदि इस लोकका सुख तथा परम्परा मोक्ष भी प्राप्त होता है। इसी कारण सत्पुरुष वरदत्त राजाकी तरह हितकारी पात्र-दान करते हैं। उनकी देखा-देखी अन्य भव्यजनको भी अपनी शक्तिके अनुसार धर्मसिद्धिके लिए निरन्तर भक्ति-सहित पात्रदान करते रहना चाहिए।

त्रिभुवनके उद्धारकर्त्ता श्रीनेमिप्रभु आहार कर अपने स्थान चले गये। वहाँ वे पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति, पाँच समिति, रत्नत्रय और दस धर्मका दृढ़तासे पालन करते थे। पवित्रात्मा नेमिप्रभुने राग-द्वेषोंको जीत लिया, आत्मबलसे केसरी समान बनकर काम-हाथीको चूर दिया। इस प्रकार धीरवीर नेमिजिन बड़े शोभित हुए। भगवान् नेमिजिन तीर्थंकर थे, इस कारण उनकी दृढ़-भावनासे छह आवश्यक कर्म अत्यन्त उत्तमतासे पले। परिग्रहरूपी ग्रहसे मुक्त, सुरासुर-पूज्य और दया-लतासे वेष्टित नेमिप्रभु चलते फिरते कल्पवृक्षसे जान पड़ते थे । वे मनमें निरन्तर बारह भावनाओं और जीव, अजीव आदि सप्त तत्त्वोंका विचार—मनन किया करते थे। त्रिलोककी स्थितिका उन्हें ज्ञान था। वे क्रोध, मान,

माया, लोभादिसे रहित, वीतराग, अनन्त गुणोंके धारक थे और बड़े सुन्दर थे। उन्होंने आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञारूप आगकी धधकती हुई महान दुःख देनेवाली ज्वालाको सन्तोष-जलसे बुझा दिया था। भूख-प्यास आदिके परीषहरूपी वीर योद्धा भी नेमिप्रभुको न जीत सके, किन्तु उलटा भगवान्‌ने ही उन्हें जीत लिया था। सैकड़ों प्रचण्ड हवा चलें, वे छोटे छोटे पर्वतोंको हिला सकती हैं, पर सुमेरु पर्वतको कभी हिला नहीं सकतीं। नेमिजिन भी वैसे ही स्थिर थे तब उन्हें किसकी ताकत जो चला सकता था। त्रिकाल-योगी और शुभ-लेश्या युक्त जगद्बन्धु नेमिजिन इस प्रकार इच्छा-निरोध-लक्षण तप करते हुए सुराष्ट्र देशके तिलक गिरनार पर्वतपर आये। उसपर निर्मल पानी भरा हुआ था। नाना तरहके वृक्ष फल-फूल रहे थे। मुक्ति स्थानके समान उसपर जाकर भव्यजन बड़ा सुख लाभ करते थे। उनका सब दुःख-सन्ताप नष्ट हो जाता था। वह सत्पुरुषके सदृश लोगोंको आनन्दित करता था। देवतागण आकर उसकी पूजा करते थे। इसका दूसरा नाम 'ऊर्जयन्तगिरि' है। भगवान्‌ने वरसायोग उसीपर बिताया था। वरसाके कारण उसकी शोभा डरावनीसी होगई थी। पानी बरसनेके कारण वह सब ओर जलमय ही जलमय हो रहा था। मेघोंके गरजने और बिजलियोंकी कड़कड़ाहटसे सारा पर्वत शब्दमय हो गया था—कुछ सुनाई न पड़ता था।

प्रचण्ड हवाके झकोरोंसे टूटकर गिरे हुए शिखरोंसे वह व्याप्त हो रहा था । रातके समय वह बड़ा ही भयानक देख पड़ता था । जंगली जानवरोंकी विकराल ध्वनि सुनकर डरपोंक लोगोंकी उसपर चढ़नेकी हिम्मत न होती थी । चारों ओर पत्थरोंके ढेरके ढेर पड़े हुए थे । आकाश, मेघ और अन्धकारसे छाया हुआ ही रहता था ।

बरसायोग भर भगवान् इसी पर्वतपर रहे । पानी वरसा करता था और भगवान् मेरुकी तरह स्थिर रहकर ध्यान किया करते थे । उस समय नेमिप्रभु जिसपर जल गिर रहा है ऐसे इन्द्रनीलगिरिके ऊँचे शिखर-समान देख पड़ते थे । भगवानके शरीरकी दिव्य प्रभासे सारा पर्वत प्रकाशमय हो रहा था । इस प्रकार सुरासुर-पूज्य, निर्भय, निस्पृह, ज्ञानी, मौनी, निराकुल, निस्संग, आत्म-भावना-प्रिय और जगद्गुरु नेमि-प्रभुने शुभध्यानके घर इस बड़े ऊँचे गिरनार पर्वतपर सुखके साथ बरसाकाल पूरा किया । भगवान् जो ध्यान करते रहे उस ध्यानका क्या लक्षण है, कितने भेद हैं, कौन स्वामी—ध्याता है और क्या फल है, इन सब बातोंका आगमके अनुसार संक्षेप वर्णन यहाँ भी किया जाता है । एकाग्र-चिन्तनरूप उत्कृष्ट ध्यान वज्रवृषभनाराचसंहननवालेके एक अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त होता है । ध्यानके—आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान ऐसे चार भेद हैं ।

प्रिय वस्तुकी चाह, अप्रिय वस्तुका विनाश, रोगादिककी वेदनाके दूर करनेवाला यत्न और निदान- आगामी विषय भोगोंकी चाह इन वातोंका चिन्तन किया करना, ये आर्त्त-ध्यानके चार भेद हैं। ये धर्मके नाश करनेवाले और पशु वगैरह गतिके कारण हैं। अव्रती, अणुव्रती और प्रमत्त गुण-स्थानवाले मुनियोंके यह आर्त्तध्यान होता है।

आर्त्तध्यान ।

हिंसामें आनन्द मानना, झूठमें आनन्द मानना, चोरीमें आनन्द मानना और विषयोंके रक्षणमें आनन्द मानना-ये चार रौद्रध्यानके भेद हैं। ये नरकादिकोंके महान् दुःख देनेवाले हैं। यह ध्यान चौथे और पाँचवे गुणस्थानवालेके होता है।

रौद्रध्यान ।

आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थान-विचय ये चार धर्मध्यानके भेद हैं। इस ध्यानसे स्वर्गादिक शुभगति प्राप्त होती है। यह पूर्वज्ञान धारीके होता है।

धर्मध्यान ।

पृथक्त्ववितर्कवीचार, एकत्ववितर्क-अविचार, सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्त्ति-ये चार शुक्लध्यानके भेद हैं। इनमें आदिके सुखके कारण दो ध्यान तो पूर्व ज्ञानीके होते हैं और अन्तके दो ध्यान केवली भगवान्‌के होते हैं। ये मोक्ष सुखके कारण हैं।

शुक्लध्यान ।

इनमें आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान ये दोनों दुर्गतिके कारण हैं। इस कारण तत्वज्ञानी प्रभु नेमिजिन इन दोनों ध्यानोंको छोड़कर धर्मध्यानका चिंतन करने लगे। इस प्रकार तप करते हुए सुरासुर-पूज्य भगवान् कोई छप्पन दिन तक छद्म-स्थ अवस्थामें रहे। इसके बाद उन्होंने कर्म प्रकृतियोंका क्षय आरंभ किया। आगेके अध्यायमें उसका कुछ वर्णन किया जाता है।

काम-शत्रुका नाश करनेमें जिनने बड़ी वीरता दिखलाई और जो भव्यजनोंको संसार समुद्रसे पार उतारनेमें जहाज समान हुए वे देवेन्द्र-नरेन्द्र-विद्याधर-पूज्य, चारित्र-चूड़ा-मणि और त्रिजगद्गुरु नेमिजिन संसारमें जय लाभ करें—उनका पवित्र शासन दिनों दिन बढ़े।

इति नवमः सर्गः।

दसवाँ अध्याय।

नेमिजिनको केवल-लाभ और समवशरण-निर्माण।

गिरनार पर्वतपर बाँसके नीचे ध्यान करते हुए शुद्धात्मा और परमार्थज्ञानी महामुनि नेमिजिनने क्वँार सुदी एकमको चित्रानक्षत्रमें, छह उपवास पूरे कर प्रातःकाल कर्मोंकी प्रकृतियोंका क्षय करना आरंभ किया। उसका क्रम जिनागमके अनुसार संक्षेपमें यहाँ लिखा जाता है।

सम्यग्दृष्टि, देश-संयत, प्रमत्त अथवा अप्रमत्त इन चार गुणस्थानोंमेंसे किसी एकमें स्थित रहकर धर्मध्यान द्वारा वीर-शिरोमणि नेमिजिन मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, और सम्यङ्मिथ्यात्व इन तीन मिथ्यात्व-प्रकृतियों, और अनन्तानुवन्धि—क्रोध-मान-माया-लोभ इन चार कषायों तथा नरकायु, तिर्यंगायु और देवायु इस प्रकार सब मिलकर दस प्रकृतियों—का क्षयकर आठवें गुणस्थानमें क्षपकश्रेणी चढ़े। इस अपूर्वकरण नाम आठवें गुणस्थानमें जीवके परिणाम क्षण क्षणमें अपूर्व अपूर्व होते हैं—जैसे पहले कभी नहीं हुए, इस कारण इसमें तत्वज्ञानी नेमिजिन 'अभूतपूर्वक' कहलाये। इसके बाद अनिवृत्तिकरण नाम नवमें गुणस्थानमें नेमिजिनने 'प्रथक्त्ववितर्कवीचार' नाम पहले शुक्लध्यान द्वारा अर्थ-संक्रान्ति और व्यंजन-संक्रातिरूप—पर्यायोंके भेदोंका

ध्यान करते हुए और आत्म-चिन्तन करते हुए इस गुण स्थानके नौ भागोंमें छत्तीस प्रकृतियोंका क्षय किया। उनमें पहले भागमें साधारण, आतप, एकेन्द्रिय–दो इन्द्रिय–तीन इन्द्रिय–चार इन्द्रिय–जाति, स्थानगृद्धि, प्रचलाप्रचला, निद्रा-निद्रा, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानु-पूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म और उद्योत इन सोलह प्रकृतियोंका, दूसरे भागमें चार अप्रत्याख्यानावरणी–क्रोध-मान-माया-लोभ और चार प्रत्याख्यानावरणी–क्रोध-मान-माया-लोभ इन नाना दुःखोंकी देनेवाली आठ प्रकृतियोंका, तीसरे भागमें नपुंसक-वेदका, चौथेमें स्त्री-वेदका, पाँचवेमें हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन छह प्रकृतियोंका, छठे भागमें पुरुष-वेदका और इसके बाद क्रमसे संज्वलन–क्रोध-मान-माया इन तीन प्रकृतियोंका क्षयकर कर्म-शत्रुका मर्म जाननेवाले नेमिजिन नवमें गुणस्थानसे दसवें गुणस्थानमें आये। इस सूक्ष्मसाम्पराय नाम दसवें गुणस्थानमें नेमि-प्रभुने संज्वलन सम्बन्धि सूक्ष्म-लोभका नाश किया। इस प्रकार मोहनीयकर्मरूप प्रचण्ड वैरीको जीतकर शूर-वीर नेमिजिन एक बलवान् सेनापतिपर विजय-लाभ किये हुए-की तरह महान् बली होगये। इसके बाद गुणोंकी खान निर्मोही नेमिप्रभु दूसरे एकत्ववितर्क-अवीचार नाम शुक्लध्यान द्वारा क्षीणकषाय नाम बारहवें गुणस्थानमें जाकर उसके उपान्त्य सम यमें–अन्तिम समयके एक समय पहले निद्रा और प्रचलाका नाश

कर स्वयं मेरु सदृश स्थिर रहे। इसके बाद अन्तसमयमें उन्होंने चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन इन संसारकी बढ़ानेवाली चार दर्शन-प्रकृतियोंका, और आँखोंपर पड़े हुए वस्त्रकी तरह मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण, और केवलज्ञानावरण इन पाँच आवरण-प्रकृतियोंका तथा दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय इन पाँच दुस्सह अन्तराय-प्रकृतियोंका क्षय किया।

इस प्रकार नेमिजिनने घातिया कर्मोंकी त्रेसठ प्रकृतियोंका क्षयकर श्रेष्ठ, परम आनन्दरूप और लोकालोकका प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया। अब वे सयोगकेवली नाम तेरहवें गुणस्थानमें आगये। भगवान् अब निर्मल पूर्ण चन्द्रमाकी तरह आकाशमें स्थित हुए। उनके प्रभावसे संसार सोतेसे जग उठा। दिशायें निर्मल होगईं। जयजयकारकी विराट ध्वनिसे जगत् पूर्ण होगया। पृथ्वीपर आनन्द ही आनन्द छा-गया। देवोंके आसन हिल गये—जान पड़ा वे भगवान्‌के ज्ञानकल्याणोत्सवकी सूचना दे रहे हैं। सब स्वर्गोंमें घंटानादकी ध्वनि गर्ज उठी। उसे सुनकर देवतोंके मन बड़े प्रसन्न हुए। ज्योतिर्लोकमें सब दिशाओंको शब्दमय करनेवाला सिंहनाद हुआ। व्यन्तरोंके भवनोंमें नगाड़े बजे। भवनवासी देवोंके यहाँ शंखनाद हुआ—जान पड़ा वह जिनदेवके केवलकल्याणकी सूचना दे रहा है। सब देवगणके भवनोंके कल्पवृक्ष अपने आप फूलोंकी

बरसा करने लगे—मानों जिन पूजनमें वे फूल चढ़ा रहे हैं। इस प्रकार अपने अपने भवनोंमें प्रगट चिह्नों द्वारा नेमि-जिनको केवलज्ञान हुआ जानकर 'देव' 'जय' 'नन्द' 'पालय' कहते हुए देवगणने बड़े आनन्द और भक्तिके साथ उन परम पावन नेमिप्रभुको नमस्कार किया।

इसके बाद सौधर्मेन्द्रने कुवेरको भगवान्‌के लिए एक सुन्दर समवशरण बनानेकी आज्ञा दी। इन्द्रकी आज्ञा पाकर भक्ति-निर्भर कुवेरने लोगोंके मनको मोहित करनेवाला बड़ा ही सुन्दर सवमशरण बनाया। कुवेरने उस समवशरणमें जो शोभा की उसका वर्णन कौन कर सकता है। तौ भी—बुद्धिके रहने पर भी भव्यजनके आनन्दार्थ उस नेमिप्रभुकी सभाकी शोभाका कुछ थोड़ेसेमें वर्णन करना उचित्त जान पड़ता है।

पहले ही एक बड़ी भारी, निर्मल इन्द्रनीलमणिकी पृथ्वी बनाई गई। उसे देखकर देवतोंके मन और नेत्र बड़े आनन्दित होते थे। वह पृथ्वी पाँच हजार धनुष ऊँची थी। उसकी २० हजार सीढ़ियाँ थीं। प्रभुकी वह लोकश्रेष्ठ चमकती हुई शुद्ध भूमि जगत्‌की लक्ष्मी-देवीके देखनेके काच-सदृश शोभित हुई। उसके चारों ओर पँचरंगी रत्नोंकी धूलका एक 'धूलिशाल' नाम मनोहर कोट बनाया गया। बड़ा ऊँचा, लोगोंको आनन्द देनेवाला वह चमकता हुआ कोट लक्ष्मीके कुण्डल-सदृश जान पड़ता था। उस भूमिकी चारों दिशाओंमें सोनेके बड़े बड़े स्तंभ गाड़े गये और उनपर

रत्नों और मोतियोंके बने तोरण लटकाये गये। उनके बाद चारों दिशाओंके बीचमें चार बड़े ऊँचे सोनेके सुन्दर मान-स्तंभ बनाये गये। वे मानस्तंभ चार चार फाटकवाले तीन कोटोंसे घिरे हुए थे। वे त्रिमेखलावाले चबूतरोंपर स्थित थे। उन चबूतरोंकी सोलह सोलह सीढ़ियाँ थीं और वे सब सोनेकी बनी थीं। छत्र, चँवर, धुजा आदिसे शोभित वे पवित्र मानस्तंभ छत्र-चँवर-धुजा-युक्त राजेसदृश जान पड़ते थे। उन्हें देखकर मिथ्यादृष्टियोंका मान स्तंभित हो जाता था—नष्ट हो जाता था। इस कारण इनका 'मानस्तंभ' नाम सार्थक था। उनके बीच भागमें सोनेकी प्रतिमायें बनी हुई थीं। इन्द्रादिक उनकी पूजा करते थे। इन्द्रने उन्हें बनाया तथा धुजा आदिसे शोभित किया इस कारण उनका दूसरा नाम 'इन्द्रध्वज' भी है। उन मानस्तंभोंके आगे देव, विद्याधर, राजे-महाराजे वगैरह सदा बड़ी भक्तिसे गाते, बजाते और नृत्य करते थे। उन चारों मानस्तंभोंकी चारों दिशाओंमें निर्मल जलकी भरी सुन्दर चार चार बावड़ियाँ थीं। उनमें सब प्रकारके कमल खिल रहे थे, लहरें लहरा रही थीं—जान पड़ता था कि प्रभुके लिए श्राविकाओंने हाथोंमें अर्घ ले रक्खा है। उनके किनारे स्फटिकके और सीढ़ियाँ मणियोंकी थीं। लोग उन्हें देखकर अत्यन्त मुग्ध हो जाते थे। उनमें हंस वगैरह पक्षिगण सुमधुर शब्द कर रहे थे—जान पड़ता था वे बावड़ियाँ नेमिप्रभुके चन्द्र-सदृश निर्मल गुणोंका

बखान कर रही हैं। पूर्व-दिशामें जो मानस्तंभ था उसकी वावड़ियोंके नाम नन्दा, नन्दोत्तरा, नन्दवती और नन्दघोषा थे। दक्षिण-दिशाकी वावड़ियोंके नाम विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता थे। पश्चिम-दिशाकी वावड़ियोंके नाम अशोका, सुमतिबुद्धा, कुमुदा और पुण्डरीका- थे। उत्तर-दिशाकी वावड़ियोंके नाम हृदयानन्दा महानन्दा, सुप्रबुद्धा और प्रभंकरी थे। निर्मल जलकी भरी वे सोलहों वावड़ियाँ सुख देनेवाली सोलहकारणभावनाके सदृश जान पड़ती थीं। उन सोलहों वावड़ियोंके पास निर्मल पानीके भरे दो दो कुण्ड पाँव धोनेके लिए थे। उन स्वच्छ जलभरे हुए कुण्डोंसे वे वावड़ियाँ पुत्रवती स्त्रीके समान शोभित होती थीं। यहाँसे थोड़ी दूर जाकर- सत्पुरुषोंकी बुद्धिके समान आनन्द देनेवाला एक बड़ा चौड़ा मार्ग था। इसके बाद एक निर्मल जलकी भरी हुई खाई थी। उसके किनारे रत्नोंके बने हुए थे। वह स्वर्गङ्गासी जान पड़ती थी। वह बड़ी गहरी, स्वच्छ और शीतल थी-जान पड़ता था जैसे जिनराजकी गंभीर, स्वच्छ और शीतल वाणी है। उसमें जो हंस, चकआ-चकई आदि पक्षिगण सुन्दर कूज रहे थे- मानों उनके शब्दके बहाने वह खाई भक्तिसे भगवानकी स्तुति कर रही है। उसके आगे चलकर गोलाकार एक मनोहर फूलबाग- (पुष्पवाटिका) था। खिले हुए सुन्दर सुन्दर फूलोंसे वह व्याप्त

हो रहा था। जिनकी सुगन्धसे सब दिशायें सुगन्धित हो रही थीं ऐसे खिले हुए फूलोंसे सुन्दरता धारण किये हुए वह बाग प्रगट तिल आदि चिन्होंसे युक्त नेमिजिनके शरीर-सदृश शोभा दे रहा था। उसके कृत्रिम सुन्दर क्रीड़ा-पर्वत फल-फूल-वृक्षोंसे सचमुच ही पर्वतसे जान पड़ते थे। उसके लता-मण्डपोंमें देवतोंके आरामके लिए सत्पुरुषोंकी बुद्धिसमान निर्मल चन्द्रकान्तमणिकी क्षिलायें रक्खी हुई थीं। इस प्रकार सुन्दर वह फूलबाग हवासे हिलते हुए वृक्षोंके बहानसे मानों सुन्दर नृत्य कर रहा था। उसमें फूलोंकी सुगन्धसे खिंचे आये भ्रमर जो सुन्दरतासे गूँज रहे थे—जान पड़ता था वह फूलबाग नेमिजिनकी स्तुति कर रहा है। यहाँसे थोड़ी दूर आगे चलकर एक बड़ा ऊँचा और लोगोंके मनको मोहित करनेवाला सोनेका कोट था। वह गोलाकार बना हुआ सोनेका कोट मानुषोत्तर पर्वत-सदृश देख पड़ता था। रत्नोंके बने हुए मनुष्य, सिंह, हाथी आदिके जोड़ोंसे वह कोट नटाचार्यकी तरह शोभित होता था। उस पर जड़े हुए रत्नोंकी कान्ति जो फैल रही थी उससे वह इन्द्र-धनुषसा दिखाई पड़ता था। उसके चारों ओर चार चाँदीके दरवाजे बने हुए थे—जान पड़ता था समवशरणरूपी लक्ष्मीके चार उज्ज्वल मुँह हैं। वे तीन तीन मंजिलवाले ऊँचे दरवाजे निर्मल रत्नत्रय-सदृश जान पड़ते थे। जिनके ऊँचे शिखर पद्मरागमणि—लालके बने हुए थे ऐसे वे बड़े बड़े दर-

वाजे हिमवान् पर्वतके शिखरसे शोभते थे । उन दरवाजोंमें स्वर्गकी अप्सरायें सदा नेमिप्रभुके यशके गीत गाया करती थीं । उन एक एक दरवाजोंमें झारी, कलश, दर्पण, पंखा आदि एक-सौ आठ आठ मंगलद्रव्य शोभित थे । उन दरवाजोंमें चमकते हुए रत्नोंके तोरणोंको देखकर जान पड़ता था—मानों सारे संसारकी श्रेष्ठ सम्पत्ति यहीं आगई है । उनमें काल आदि रत्नपूर्ण निधियाँ लोगोंके मनको मोहित कर रही थीं । वे निधियाँ उन दरवाजोंमें ऐसी शोभित हुईं—मानों प्रभुने जो उन्हें छोड़ दिया सो भक्तिसे वे फिर उनकी सेवा करने आई हैं । उन दरवाजोंकी दोनों बाजू दो दो नाटकशालायें थीं । वे नाटकशालायें तीन तीन मंजिलकी थीं—जान पड़ता था वे मोक्षके रत्नत्रयरूप मार्ग हैं । उन नाटकशालाओंके खंभे सोनेके, भीतें स्फटिकमणिकी और शिखर रत्नोंके थे । उनमें देवाङ्गनायें भगवान्‌के चन्द्र-समान उज्ज्वल गुणोंका बड़े आनन्दके साथ बखान कर रही थीं । उनमें किन्नरोंके गीतोंके साथ बजते हुए नाना तरहके बाजोंकी ध्वनि मेघोंकी ध्वनिको भी जीत लेती थीं । गन्धर्वदेव-गण उनमें जिन भगवान्‌के हितकारी गुणोंको गाते थे और देवाङ्गनायें नृत्य करती थीं । इन्द्रादि देवता बड़े प्रेमसे उस नाटकाभिनयके देखनेवाले थे । वहाँकी शोभाका वर्णन कौन कर सकता है?

वहाँसे आगे मार्गके दोनों बाजू दो दो सुन्दर धूपके घड़े रक्खे हुए थे । उनकी सुगन्धसे सब दिशायें सुगन्धित

हो रही थीं। उनमें जलती हुई सुगन्धित कृष्णागुरु धूपका धुँआ जो आकाशमें छा जाता था--जान पड़ता था काले मेघ छा-गये हैं। वह धुँआ आकाशमें जाता हुआ, पुण्य-प्रभावसे डरकर भागते हुए पापपुंजसा देख पड़ता था। उसकी सुगन्धसे खिंचकर आते हुए काले भौरोंसे वह धुँआ दुगुना दिखाई पड़ता था। वहाँसे चलकर चारों दिशाओंमें चार वन थे। उनके नाम थे--अशोकवन, सप्तच्छदवन, चम्पकवन और आम्रवन। वे वन ऐसे शोभित होते थे--मानों नेमिप्रभुकी सेवा करनेको चार नन्दनवन आये हैं। उन वनोंके वृक्ष फले-फूले, छायादार, बड़े ऊँचे और सुखशान्तिके देनेवाले थे। जान पड़ते थे जैसे राजेलोग हों। वृक्षोंपर बोलते हुए कोकिल, मोर, पपीहा, तोते आदि पक्षिगणके द्वारा मानों वे वन नेमिजिनकी स्तुति कर रहे हैं। जिनपर भौरोंके झुण्डके झुण्ड गूँज रहे हैं ऐसे गिरते हुए अपने दिव्य फूलों द्वारा मानों वे वृक्ष नित्य नेमिप्रभुकी पूजा कर रहे हों। उन वनोंमें सोने और रत्नोंके बने हुए कुए, बावड़ी और तालाब वगैरह बड़े निर्मल पानीके भरे हुए थे। उनमें खिले हुए कमलोंकी अपूर्व शोभा थी। जान पड़ता था--वे निर्मल हृदयवाले शुद्ध और लक्ष्मीयुक्त सज्जन लोग हैं। उन वनोंमें कहीं बड़े ऊँचे और मनोहर चार चार छह छह मंजिलवाले महल बने हुए थे। कहीं कृत्रिम सुन्दर क्रीड़ापर्वत बने हुए थे। देवतागण आकर अपनी देवाङ्गनाओंके

साथ उनमें हँसी-विनोद किया करते थे । उनमें निर्मल जल-भरी कृत्रिम नदियाँ फूले हुए कमलोंसे बड़ी सुन्दर देख पड़ती थीं—जान पड़ता था वे पुत्रवती कुलकामिनियाँ हैं । निर्मल पानीके भरे हुए तालाव उन वनोंमें जगत्का ताप मिटानेवाले पवित्र-हृदय सत्पुरुषसे जान पड़ते थे । उन वनोंमें लोगोंका शोक नष्ट करनेवाला 'अशोक' नाम वन शीतल, सुख देनेवाले और सज्जनोंके शुद्ध मन-सदृश देख पड़ता था । सात सात पत्तोंवाले वृक्ष जिसमें हैं ऐसा सुन्दर 'सप्तच्छद' नाम वन जिनप्रणीत सप्त तत्वोंके सदृश जान पड़ता था । 'चम्पक' नाम वन अपने खिले हुए फूलोंसे नेमिजिनकी प्रदीप द्वारा पूजन करता हुआ ज्ञात होता था । 'आम्रवन' कोकिलाओंकी मधुर ध्वनिके वहाने जिनकी स्तुति करता हुआ शोभित होता था । अशोकवनमें एक बड़ा भारी अशोकवृक्ष था । उसका चबूतरा सोनेका बना हुआ और तीन कटनीसे युक्त था । जान पड़ता था जैसे राजा हो । इस वृक्षको चारों ओरसे घेरे हुए तीन कोट थे । वह छत्र, चँवर, झारी, कलश आदि मंगल द्रव्योंसे शोभित था । वह सारा सोनेका था । उसका मूलभाग वज्रका बना हुआ और सम्यग्दृष्टिके सदृश दृढ़ था । उसके पत्ते गरुन्मणिके और फूल पद्मरागमणिके बने हुए थे । लोगोंका मन उसे देखकर बड़ा मोहित होता था । वह फूलोंकी तेज गंधसे खिंचकर आये हुए भौंरोंके गूँजनेके वहाने मानों प्रसन्न होकर जिनकी स्तुति कर रहा है । उसपर

टँगी हुई घंटाकी जो बड़े जोरकी ध्वनि होती थी–जान पड़ता था मोह शत्रुपर विजय-लाभ कर नेमिप्रभुने जो निर्मल यशलाभ किया है उसकी वह घोषणा कर रहा है। हवाके वेगसे फहराती हुई धुजाओंके मिससे मानों वह लोगोंके पापको दूर कर हरा है। जिनपर बड़े बड़े मोतियोंकी माला लटक रही हैं ऐसे सिरपर धारण किये हुए तीन सुन्दर छत्रोंसे वह वृक्ष राजाके सदृश जान पड़ता था। इस वृक्षके मध्यभागमें चारों दिशाओंमें पाप नाशकरनेवाली सुवर्णमयी जिनप्रतिमायें थीं। इन्द्रादि देवतागण आकर क्षीर-समुद्रके जलसे उन जन-हितकारी प्रतिमाओंका अभिषेक करते थे और गंध-पुष्पादि श्रेष्ठ वस्तुओंसे बड़े प्रेमके साथ उनकी पूजा करते थे। इसके वाद वे भक्ति-समान निर्मल, सुगन्धित फूलोंकी वड़े आनन्द और भक्तिके साथ अंजलि अर्पण कर उन पवित्र जिनप्रतिमाओंकी स्तुति करते थे। कितने देवगण उस चैत्यवृक्षके सामने अपनी अपनी देवाङ्गनाओंके साथ नृत्य करते थे। और भगवान्‌के निर्मल गुणोंका वखान करते थे। जैसा अशोकवनमें अशोक नाम चैत्यवृक्ष है उसी तरह सप्तच्छदवनमें सप्तच्छद नाम चैत्यवृक्ष, चम्पकवनमें चम्पक नाम चैत्यवृक्ष और आम्र-वनमें आम्र नाम चैत्यवृक्ष है। उनका मध्यभाग चैत्य–प्रतिमा-धिष्ठित है, इस कारण उनका नाम चैत्यवृक्ष हुआ। वे चारों ही वृक्ष जिनप्रतिमाओंसे युक्त हैं। उनकी इन्द्रादि देवगण पूजा

करते हैं, इस कारण वे जिन-सदृश माने जाते हैं। इस प्रकार वे महिमाशाली चारों महा वन जिनभगवान्‌के सुख देनेवाले चार अनन्तचतुष्टयसे जान पड़ते थे। अच्छे कुलके समान फले-फूले वे चारों वन भव्यजनोंको खूब तृप्त करते थे। जिन नेमिप्रभुके वृक्षोंका इतना वैभव था तब उनकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है। उन वनोंके बाद चारों ओर सोनेकी एक वेदी बनी हुई थी। उसमें रत्नोंकी जड़ाईका काम हो रहा था। उसकी चारों दिशाओंमें चार दरवाजे थे। अपनी दिव्य कान्तिसे वह इन्द्रधनुषकी शोभाको हँस रही थी। उस आनन्दकारिणी वेदीके चारों दरवाजे चाँदीके बने हुए थे। उन दरवाजोंमें आठ आठ मंगलद्रव्य शोभित थे। रत्नोंके तोरणोंसे वे दरवाजे समवशरणलक्ष्मी-देवीके चार सुन्दर मुँहसे जान पड़ते थे। घण्टाकी ध्वनिसे वे दरवाजे मानों आनन्दित होकर भगवान्‌की स्तुति कर रहे थे। देव-देवाङ्गनायें उन दरवाजोंमें सदा सुन्दर गीत गाती और नाचती रहती थीं। वहाँसे चलकर रास्तेमें सोनेके खभोंपर फहराती हुई धुजायें लोगोंका मन मोहित कर रही थीं। मणिमय चबूतरेपर वे सोनेके ऊँचे और सुन्दर ध्वजस्तंभ लोकमान्य, पवित्र राजों सरीखे देख पड़ते थे। उन खंभोंका घेरा अठासी अंगुलका था और एक खंभेसे दूसरे खंभेका अन्तर पचीस धनुष—८७॥ हाथ था। कोट, वेदी, चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष, स्तूप तोरण मानस्तंभ और ध्वजस्तंभ इन सबकी ऊँचाई तीर्थंकर भगवान्‌की

ऊँचाईसे बारह गुणी थी। और उनका घेरा उनकी ऊँ-
चाईके अनुसार जितना होना चाहिए उतना था। हाँ पर्वत
वन, और घर इनका प्रमाण ज्ञानियोंने कुछ विशेषता लिय
बतलाया है। पर्वतोंका घेरा ऊँचाईसे कोई आठ गुणा अ-
धिक था। स्तूपोंका घेरा उनकी ऊँचाईसे कुछ अधिक था।
और वेदीकी घेरा ऊँचाईका चौथा हिस्सा पुराणके ज्ञाता लो-
गोंने कहा है। वे सानेके खंभोंपर लगी हुई धुजायें-माला,
वस्त्र, मोर, कमल, हंस गरुड़, सिंह, बैल, हाथी और चक्र
इन दस प्रकारके चिन्होंसे युक्त थीं-इन चिन्होंसे वे धुजायें
दस प्रकारकी थीं। वे दसों प्रकारकी धुजायें एक एक दि-
शामें एक एक सौ आठ आठ थीं। इन हिसाबसे एक दिशामें
सब धुजायें मिलाकर एक हजार ५० हुईं और चारों दिशा
ओंकी मिलाकर ४ हजार ३२० हुईं। इतनी सब धुजायें
हवासे फड़कती हुई ऐसी देख पड़ती थीं-मानों वे देवतोंको नेमि-
प्रभुके केवलज्ञानकी पूजाके लिए बुला रही हैं। यहाँसे कुछ भीतर
चलकर बड़ा भारी चाँदीका दूसरा कोट बना हुआ था-जान
पड़ता था वह प्रभुके उज्वल यशका समूह है। यहाँ भी पहलेके
समान दरवाजे वगैरहकी रचना लोगोंके नेत्रोंको आनन्दित कर
रही थी। इस कोटके भी चार दरवाजे थे। उनपर बहुमूल्य और
बड़े रत्न-तोरण टँगे हुए थे। प्रत्येक दरवाजोंमें रत्नादि श्रेष्ठ
सम्पदासे युक्त नौ निधियाँ भव्यजनोंके मनोरथ समान
शोभा दे रही थीं। प्रत्येक दरवाजेके दोनों बाजू दो दो नाटक

शालायें थीं । रास्तेमें धूपके दो-दो घड़े रक्खे हुए थे। यहाँसे कुछ दूर जाकर कल्पवृक्षोंका वन था—जान पड़ता था इस वनके बहाने भोगभूमि ही नेमिजिनकी सेवा करनेको आई है। इस वनमें ऊँचे, छायादार, फले-फूले दस प्रकारके कल्पवृक्ष सुख देनेवाले श्रेष्ठ दस धर्मसे जान पड़ते थे । जिस वनमें मनचाहे फल, आभूषण, वस्त्र, पुष्पमाला वगैरह हर समय मिल सकते थे, उसका क्या वर्णन करना। जहाँ स्वर्गके देवतागण अपनी देवाङ्गना-सहित आकर वड़े सन्तुष्ट होते थे, वहाँका और अधिक क्या वर्णन किया जा सकता है। उन कल्पवृक्षोंके तेजसे नष्ट हुआ अन्धकार जिनभगवान्‌के प्रभावसे नष्ट हुए मिथ्यात्वकी तरह फिर कहीं न देख पड़ा। इस वनमें चारों दिशाओंमें चार सिद्धार्थवृक्ष थे। उनके मध्यभागमें सिद्ध-प्रतिमायें थीं। पहले चैत्यवृक्षोंकी कोट, दरवाजे, छत्र, चँवर, ध्वजा आदि द्वारा जो शोभा वर्णन की गई है वैसी शोभा यहाँ भी थी। इस वनमें यह विशेषता थी कि इसके सब वृक्ष कल्पवृक्ष थे और इस कारण वे मनचाही वस्तुके देनेवाले थे। इस वनमें कहीं क्रीड़ा-पर्वत, कहीं बावड़ी, कहीं नदी, कहीं तालाव और कहीं सुन्दर लता-मण्डप थे। उनमें देव, विद्याधर-राजे लोग अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ खूब हँसी-विनोद किया करते थे। इस वनके चारों ओर सोनेकी वेदी बनी हुई थी। उसके चार सुदृढ़ दरवाजे मुनियोंकी दृढ़ क्रियाके समान शोभते थे। उन दरवाजोंपर रत्नोंके तोरण टँगे हुए

थे। और जगह जगह मंगल-द्रव्य शोभा दे रहे थे। यहाँसे थोड़ी दूर जाकर चार चार छह छह मंजिलोंकी ऊँची गृह-श्रेणियाँ थीं। उनमें कितने घर दो मंजिलके, कितने चार चार मंजिलके थे। उनकी भींतें चन्द्रकान्तमणिकी बनी हुई थीं। उनमें नाना प्रकारके रत्नोंकी पच्चीकारीका काम हो रहा था। वे घर चित्रशाला, सभा-भवन और नाटकशालासे बड़ी सुन्दरता धारण किये हुए थे। दिव्य-सेज, आसन, सुन्दर सीढ़ियाँ वगैरहसे उन्होंने स्वर्गके भवनोंको भी जीत लिया था। उनमें इन्द्र, किन्नर, पन्नग, विद्याधर, राजे-महाराजे और अन्य देवाङ्गनागण बड़े आनन्दके साथ क्रीड़ा करते थे—सुख भोगते थे। कितने गन्धर्वगण भगवान्‌का उज्ज्वल यश गाते थे और कितने नाना तरहके बाजे बजाते थे। कितने नृत्य करते थे। कितने नेमिप्रभुके चन्द्र-सदृश निर्मल गुणोंका बखान करते थे और कितने सुनते थे। यहाँसे आगे रास्तेमें चारों कोनोंमें पद्मरागमणिके बने हुए नौ नौ स्तूप—छोटे-पर्वत नौ पदार्थोंके समान देख पड़ते थे। उसमें जिनप्रति-मायें और छत्र, चँवर ध्वजा आदि मंगल द्रव्य शोभित थे। उन स्तूपोंके बीचमें रत्नोंके तोरण लोगोंके नेत्रोंको मोहित कर रहे थे। उन पाप नाश करनेवाली जिनप्रतिमाओंकी जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल आदि श्रेष्ठ द्रव्योंसे इन्द्रादि देवता आकर पूजा करते थे और स्तुति करते थे। देवाङ्गनायें उन जिनप्रतिमाओंके सामने सदा

सुन्दर संगीत किया करती थीं। किन्नर और गन्धर्व वहाँ बड़ी भक्तिसे जिनभगवान्‌का यश गाया करते थे। उन उत्सव-पूर्ण स्तूपोंको लाँघकर थोड़ी दूर आगे बड़ा भारी स्फटिकका कोट बना हुआ था। वह ऊँचा कोट अपनी निर्मल प्रभासे जिनभगवान्‌का यशःपुंजसा देख पड़ता था। पद्मरागमणिके बने हुए चार दरवाजोंसे वह कोट अनन्तचतुष्टयसे शोभित शुक्लध्यानके प्रभावकी तरह जान पड़ता था। उन दरवाजोंमें भी छत्र, चँवर, धुजा आदि सुन्दर मंगल-द्रव्य थे। पहले दरवाजोंकी तरह यहाँ भी नौ निधियाँ श्रेष्ठ रत्नादि द्रव्योंसे युक्त थीं। जान पड़ता था नेमिजिनने जो लक्ष्मी छोड़दी है, इस कारण वह अब निधिका रूप लेकर जिनकी सेवा करने-को दरवाजेपर खड़ी हुई है। इन तीनों कोटोंके दरवाजोंपर क्रमसे व्यन्तरदेव, भवनवासीदेव और स्वर्गके देव हाथोंमें तलवार लिये पहरा दे रहे थे। इस अन्तके कोटसे लेकर जिन-भगवान्‌के सिंहासनतक स्फटिककी बनी हुई सोलह भीतें थीं। वे निर्मल सोलह भीतें जगत्‌का हित करनेवाली पुण्यरूप सोलह-कारणभावनाके सदृश जान पड़ती थीं। इन भीतोंके ऊपर जिसके खंभे रत्नोंके बने हुए हैं ऐसा बड़ा ऊँचा दिव्य स्फटिकका मंडप बना हुआ था। त्रिजगत्प्रभु, केवलज्ञान-सूरज श्रीने-मिजिन इसी मण्डपमें विराजे हुए थे और इस कारण वह मण्डप सचमुच ही श्री-मण्डप था। देवतागण भक्तिसे निरं-तर उसपर सुगन्धित फूलोंकी वरसा किया करते थे। उन

फूलोंकी सुगन्धसे खिंचे आये हुए भौरोंके झुण्डके झुण्ड वहाँ सदा गूँजा करते थे—जान पड़ता था, वे जिनप्रभुकी स्तुति कर रहे हैं। वह मण्डप चाहे कितना ही बडा हो, पर त्रिभुवनके सब जन बिना किसी बाधाके उसमें समा सकते थे। जिनभगवान्‌की महिमा ही ऐसी है। उस मण्डपके प्रभा-समुद्रमें डूबे हुए देवता, विद्याधर, राजे-महाराजे ऐसे जान पड़ते थे—मानों वे नहा रहे हैं। उस मण्डपके खंभे रत्नोंके थे, स्फटिककी उसकी भीतें थीं उनमें रत्नोंकी जड़ाईका सुन्दर काम हो रहा था। उसके दरवाजेपर पहरा देनेवाले देवगण थे और त्रिजगत्‌के स्वामी सुरासुरपूज्य श्रीनेमिजिन उसमें विराज थे। उस मण्डपका कौन वर्णन कर सकता है? उस मण्डपमें ठीक बीचमें वैडूर्यमणिकी बनी हुई प्रभुकी पहली पीठ—वेदी थी। उसकी हरी हरी सुन्दर किरणें चारों ओर फैल रही थीं। यहींसे चारों दिशाओंकी बारहों सभाओंमें प्रवेश करनेके सोलह मार्ग थे। उन सबमें सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। उस प्रथम पीठपर झारी, छत्र, कलश आदि मंगल-द्रव्य त्रिभुवनकी श्रेष्ठ सम्पदाके सदृश शोभा दे रहे थे। यहीं यक्षोंके सिररूपी पर्वतपर रक्खे हुए हजार हजार आरेवाले धर्मचक्र अपने तेजसे सूर्य-समान जान पड़ते थे। इस पीठपर दूसरी पीठ थी। मेरुके शिखर-समान ऊँची वह पीठ सोनेकी बनी हुई थी। इस पीठकी आठ दिशाओंमें आठ ध्वजायें सिद्धोंके त्रिलोक-पूज्य आठ गुणोंके सदृश

शोभ रही थीं। उन धुजाओंपर क्रमसे चक्र, हाथी, बैल, कमल, वस्त्र, सिंह, गरुड़ और पुष्पमाला—ये आठ चिन्ह थे। हवासे फड़कती हुई वे धुजायें मानों अपनेपर जो लोगोंके सम्बन्धसे पापरज चढ़ गई है उसे जिन भगवान्‌के सत्समागमसे दूर उड़ा रही हैं।

इस दूसरी पीठपर तीसरी पीठ बड़ी ऊँची और पँच-रंगी रत्नोंकी बनी हुई थी। अपनी प्रभासे उसने सूर्यको भी जीत लिया था। इस प्रकार रत्न और सोनेकी बनी हुई उन तीनों पीठोंकी इन्द्रादिक देवगण पूजा किया करते थे, इस कारण वे जिनके सदृश मानी जाती थीं। उस तीसरी पीठकी पवित्र पृथ्वीपर एक दिव्य गंधकुटी बनी हुई थी। उसके चारों ओर ऊँचा कोट था। वह चार दरवाजेवाली गन्धकुटी रत्नमालादिसे एक दूसरी देवताके समान जान पड़ती थी। उसके रंग-बिरंगे रत्नोंकी किरणें जो आकाशमें फैल रही थीं, उससे एक अपूर्व ही इन्द्रधनुषकी शोभा होकर वह लोगोंके मनको मोहित कर रही थी। रत्नोंके शिखरोंसे सुन्दर, गन्धकुटी हवासे फहराती हुई धुजाओंसे मानों स्वर्गके देवोंको बुला रही है। अच्छे उत्तम और सुगन्धित केसर, कपूर, अगुरु, चन्दन आदि द्रव्योंसे जो उसकी पूजा की जाती थी, उससे सब दिशायें सुगन्धित हो जाती थीं; इस कारण उसका 'गन्धकुटी' नाम सार्थक था। सैकड़ों मोतियोंकी मालाओं, सैकड़ों फूलोंकी मालाओं और सैकड़ों तरहके रत्नोंके आभूषणोंसे

शोभित वह गन्धकुटी स्वर्गकी शोभाको हँस रही थी—शोभामें वह स्वर्गसे भी बढ़कर थी। दिव्य छत्रत्रय, चँवर, धुजा आदिसे वह भगवानका त्रिलोकस्वामीपना प्रगट रही थी। भगवान्की स्तुति करते हुए देवतोंके शब्दोंके बहाने वह सरस्वतीका रूप धारणकर नेमिप्रभुकी स्तुति करती हुई जान पड़ती थी। जिनपर भौंरे गूँजते हैं ऐसे देवगण द्वारा बरसाये हुए फूलोंकी सुगन्धसे वह सब दिशाओंको सुगन्धित बना रही थी। उसके बीचमें सोनेका चमकता हुआ सुन्दर सिंहासन नाना तरहके रत्नोंकी प्रभासे युक्त उन्नत मेरुके शिखर-सदृश जान पड़ता था। उसपर चार अंगुल अन्तरीक्ष आकाशमें केवलज्ञान-रूपी सूरज, त्रिजगत्स्वामी नेमिजिन विराजे हुए थे। उस उन्नत सिंहासनपर विराजे हुए नेमिजिन अपने प्रभावसे त्रिलोक-शिखरपर विराजे हुए सिद्ध भगवान्से शोभित हो रहे थे। उस सिंहासनपर विराजे हुए भगवान् नेमिजिनपर देवतागण फूलोंकी बरसा कर रहे थे। मन्दार, पारिजात आदि मनोहर फूलोंकी उस बरसाने सब दिशाओंको सुगन्धित बना दिया था। सारे समवशरणको लेकर नेमिजिन-पर गिरती हुई वह पुष्पवृष्टि मेघ-वर्षासी जान पड़ती थी। देवोंके स्तुति-पाठके शब्द और भौंरोंके झंकारसे वह पुष्प-वर्षा जिनस्तुति करती हुई जान पड़ती थी। गन्धोदकसे युक्त उस पुष्पवृष्टिने त्रिजगत्का हित करनेवाली निर्मल गन्ध-विद्याके सदृश सबको सुगन्धमय बना दिया था। नेमिप्रभु

जिस अशोक वृक्षके नीचे बैठे थे उसका मूलभाग वज्रका और क्षायिकभावके समान दृढ़ था। वह वृक्ष हरिन्मणिके पत्ते और पद्मरागमणिके हितकारी फूलोंसे कल्पवृक्षसा जान पड़ता था। जो लोग उस वृक्षको देखते थे और जो उसका आश्रय लेते थे उनका सब शोक-सन्ताप नष्ट होकर उन्हें अनन्तसुख प्राप्त होता था। हवाके वेगसे जो उसकी डालियाँ हिलती थीं और फूल गिरते थे उससे वह हाथोंको फैलाकर नाचता हुआ जान पड़ता था। उसकी डालियों डालियोंपर शब्द करते हुए पक्षिगणके वहानेसे मानों वह नेमिजिनके मोह विजयकी घोषणा कर रहा है। जिनका वृक्ष भी लोगोंके शोकको दूरकर सुख देता था तव उन नेमिप्रभुकी महिमाका क्या कहना। भगवान्के ऊपर शोभित श्वेत छत्रत्रय, त्रिभुवनके लोगोंको प्रिय भगवान्का यश-समूहसा जान पड़ता था। चन्द्रकान्तमणिसे भी कहीं वढ़कर स्वच्छ प्रभुका वह छत्रत्रय भव्य-जनोंको मुक्तिके मार्ग रत्नत्रयकी सूचना कर रहा था। उस छत्रत्रयका दण्ड अनेक सुन्दर मोतियोंकी मालाओंसे युक्त था। उसपर रत्नोंकी जड़ाईका काम हो रहा था। प्रभुके मस्तकपर स्थित वह स्वच्छ और विशाल छत्रत्रय लोगोंको नेमिजिनके त्रिलोक-साम्राज्यके स्वामी होनेकी सूचना कर रहा था। नाना तरहके आभूषणोंको पहरे हुए देवतागण बड़ी भक्तिसे भगवान्पर चँवर ढोर रहे थे। वे चौसठ दिव्य चँवर नेमिप्रभुरूपी पर्वतके चारों ओर

वहनेवाले झरनेसे जान पड़ते थे। जिनपर ढुरती हुई वह निर्मल चँवरोंकी श्रेणी उज्ज्वल पुष्पवर्षासी जान पड़ती थी। वह चन्द्रमाकी किरण समान निर्मल चँवर-श्रेणी प्रभुकी सेवा करनेको आई हुई भाव-लेश्यासी जान पड़ती थी। उस समय देवगणने नाना तरहके बाजे और नगाड़े खूब बजाये। उनकी ध्वनिसे आकाश भर गया। हर समय ताल, कंसाल, मृदंग, नगाड़े आदि बाजोंकी ध्वनि आकाशमें गूँजा ही करती थी। मोह-शत्रुपर विजयलाभ करनेसे प्राप्त वह वाद्य-सम्पत्ति मानों आकाशमें प्रभुका जयजयकार कर रही थी। देवगणके द्वारा आकाशमें बजाये गये नगाड़ोंकी आवाजसे सारा जगत् शब्दमय होगया।

भगवान्‌के दिव्य देहके प्रभा-मण्डलने अपनी कान्तिसे सारे समवशरणको प्रकाशित कर दिया। कोटि सूरजके तेजको दबानेवाला वह निर्मल भामण्डल लोगोंके नेत्रोंको बड़ा आनन्द दे रहा था। उसे देखकर बड़ा आश्चर्य होता था। सारे जगत्‌को तन्मय करनेवाला वह प्रभुका सुन्दर भामण्डल मिथ्यात्व अन्धकारको नष्ट करनेवाला एक अपूर्व सूरजसा जान पड़ता था। देव, विद्याधर, मनुष्य आदि उस निर्मल भामण्डलमें काचमें मुँह देखनेकी तरह अपने सात भवोंको देख लेते थे। जिनके शरीरकी प्रभाका ऐसा प्रभाव था उनके त्रिकाल-प्रकाशक ज्ञानका क्या कहना।

नेमिजिनके मुख-कमलसे निकली हुई दिव्यध्वनि पापा-

न्धकारका नाशकर जगत्के पदार्थोंको दिखा रही थी–उनका ज्ञान करा रही थी। भगवान्की दिव्यध्वनि नाना देशोंमें उत्पन्न हुए और नाना प्रकारकी भाषा बोलनेवाले लोगोंको भी प्रबोध देती थी–उसे सब अपनी अपनी भाषामें समझ लेते थे। जिनभगवान्की महिमा तो देखो जो एक प्रकारकी ध्वनि होकर भी नाना देशोंके लोगोंको प्राप्त होकर वह सैकड़ों भाषारूप हो जाती थी। जैसे मीठा पानी नाना वृक्षोंको प्राप्त होकर नाना तरहके रसरूप हो जाता है उसी तरह दिव्यध्वनि भी हर देशके लोगोंके सम्बन्धसे नाना-रूप हो जाती है। और जैसे निर्मल स्फटिक नाना रंगोंके सम्बन्धसे नाना रंगरूप हो जाता है उसी तरह दिव्यध्वनि भी आधारके अनुरूप सैकड़ो भाषामय बन जाती है। वह जिनभगवान्की अक्षरमयी ध्वनि सब तत्वोंकी ज्ञान करानेवाली और एक योजनतक सुनाई पड़नेवाली थी। उसने सातों तत्त्व, नौ पदार्थ और लोकालोकके स्वरूपको प्रकाशित कर दिया था। जगत्का सन्ताप हरनेवाली वह नेमि जिनकी ध्वनि सुख देनेवाले मेघ-सदृश जान पड़ती थी। इस प्रकार इन्द्रने कुबेर द्वारा समवशरणकी रचना करवाई। वह समवशरण लोगोंके मनको बड़ा मोहित कर रहा था।

इसके बाद सौधर्मेन्द्र आदि बत्तीसों इन्द्र असंख्य देव-देवाङ्गनाओंके साथ अपने अपने ऐरावत हाथी आदि विमानोंपर सवार होकर स्वर्गीय ठाठ-बाटसे आकाशमें चले।

छत्र, धुजा आदिसे शोभित विमानोंपर बैठे हुए वे देवतागण जयजयकारके साथ फूलोंकी बरसा करते हुए आ रहे थे। दूरहीसे उन्होंने उस त्रिभुवन-श्रेष्ठ समवशरणको देखा– मानों हवासे फहराती हुई धुजाओंके बहाने वह उनको बुला रहा है। बड़े आनन्दसे उन्होंने उस सुख देनेवाले समवशरणकी तीन प्रदक्षिणा कर उसमें प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने, लोकशिखरपर विराजमान सिद्धकी तरह दिव्य सिंहासनपर विराजमान, अनन्तचतुष्टय युक्त, चौंतीस महा आश्चर्यसे सुशोभित, चारों दिशाओंमें चार मुँहवाले, जिनपर चँवर ढुर रहे हैं, और पृथ्वीतलको पवित्र करनेवाले, जगत्पवित्र, त्रिभुवनाधीश नेमिजिनको देखे। बड़ी भक्तिसे देवतोंने नाना तरहके द्रव्यों द्वारा उनकी पूजा की। उनके चरणोंमें उन्होंने सोनेकी झारीसे पवित्र तीर्थोंके जलकी धारा दी। वह शीतल, सुगन्धित और सुख देनेवाली पवित्र जलधारा भव्यजनकी पवित्र मनोवृत्तिके समान शोभित हुई। चन्दन, केशर, अगरु आदि सुगन्धित पदार्थोंके विलेपनसे उन्होंने जिनके चरणोंकी पूजा की। कान्तिसे चमकते हुए मोतियोंको चढ़ाया। जिनकी सुगन्धसे दसों दिशायें सुगन्धित हो रही थीं ऐसे जाती, चंपक, कुन्द, मन्दार आदिके फूलोंको उनके चरणोंमें भेंट किया। दुःख दरिद्रता आदि कष्टोंको नाश करनेवाले, पवित्र अमृतमय नैवेद्यको चढ़ाया। श्रेष्ठ रत्नोंके दीपकोंसे उन केवलज्ञानरूपी सूरज और संसारसे पार

करनेवाले नेमिजिनकी बड़ी भक्तिसे अर्चा की। श्रेष्ठ काश्मीर, चन्दन, अगुरु आदिसे बनी हुई, रूप-सौभाग्यकी देनेवाली और सुन्दर सुगन्धित धूप उनके आगे जलाई। स्वर्गीय कल्पवृक्षोंके फलोंसे उन स्वर्ग-मोक्षको देनेवाले नेमिजिनकी बड़ी भक्तिसे पूजा की। इसके बाद देवतोंने स्वर्णपात्रमें रखा हुआ, सैकड़ों सुखोंका देनेवाला पवित्र अर्घ जिनपर उतारा। इस प्रकार उन देवगणने महा भक्तिसे नेमिजिनकी पूजा कर फिर स्तुति करना प्रारंभ किया।

हे नाथ, आप त्रिभुवनके स्वामी और मिथ्यान्धकारको नाश करनेवाले केवलज्ञानरूपी महान् प्रदीप हो। सब विद्याओंके स्वामी, त्रिलोकके भूषण और त्रिभुवनके गुरु हो। जीवोंके माता, पिता और बन्धु हो। लोगोंको आश्रयदाता, सबके हितकर्त्ता, पितामह, त्रिभुवन प्रिय और भयसे डरे हुए लोगोंके रक्षक हो। सब सुखोंके कारण, गुण-सागर, सुरासुर-पूज्य और सप्त तत्वोंके जानकार हो। अनन्त संसार-समुद्रसे पार करनेवाले, संसारका भ्रमण मिटानेवाले, देव होकर भी देव-पूज्य और कर्म-मल रहित, निर्मद हो। आपको किसी प्रकारका रोग नहीं, कोई बाधा नहीं। आप निष्कलंक, निष्पाप और जीवमात्रपर समबुद्धि होनेपर भी भक्तजनोंको मनचाही वस्तुके देनेवाले हो। वीतराग हो, आनन्द देनेवाले हो। सिद्ध, बुद्ध, विरागी, विशुद्ध और संसारके एक दूसरे पिता हो। आप सुख देनेवाले

हो, इस कारण 'शंकर' हो। आपने कर्मोंको जीत, लिया इसलिए आप 'जिन' कहलाये। आप सर्वज्ञ, गुणज्ञ और सब सन्देहोंके नाश करनेवाले हो। प्रभो, आपने धर्मती-र्थका प्रचार किया, इस कारण आप तीर्थनाथ हो। आपका केवलज्ञान त्रिभुवन-व्यापी है, इस कारण लोग आपको विष्णु कहते हैं। आप परम ज्योतिस्वरूप, त्रिलोक-बन्धु, और कर्मशत्रुके नाश करनेवाले हो। आप आत्म-तत्वको जानते हो, इस कारण आपको मुनिजन ब्रह्मा कहते हैं। आप धीर-वीर गंभीर, और सुख देनेवाले हो। लोकमें दिव्य चिन्ता-मणि और कल्पवृक्ष आप ही कहे जाते हो। आप नाथ, पति, प्रभाधीश, कामद, कामहा, कामदेव और देव-पूज्य हो। आपको बड़े बड़े विद्वान् पूजते हैं। आप सर्व पदार्थोंका प्रकाश करते हो, इस कारण वचनरूपी किरणोंके धारक सूरज हो। आप धर्माधिपति, सबमें प्रधान और परम उदयशाली हो। आप वाक्यामृतके श्रेष्ठ समुद्र, दयासागर, बुद्धिशाली, मुक्तिके स्वामी, और दिव्य रत्नत्रय-स्वरूप हो। आप श्रेष्ठ मंगल श्रेष्ठ कवि, और सत्पुरुषोंके श्रेष्ठ आश्रय हो। आप सन्तापके नाश करनेवाले चन्द्रमा, सुन्दर चारित्रके भूषण, मुनीन्द्र, विवेकी, पवित्रहृदय और मुनिजन-वन्द्य हो। आप अनन्त गुणयुक्त, अनन्तचतुष्टय-विराजित, सबके हितकारी दिव्य-शरीर और बड़े सुन्दर हो। पवित्रसे पवित्र लोग आपकी सेवा करते हैं। आपने संसार-समुद्र पार कर लिया। आपको कोई

आपद-विपद नहीं। आप लोगोंको परमानन्दके देनेवाले हो। आपने मोक्ष सुखप्राप्त कर लिया। नाथ, आपमें तो अनन्त निर्मल सुख देनेवाले अनन्त गुण हैं और हम हैं बड़े ही थोड़ी बुद्धिके धारक,फिर हम आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं ? पर नाथ, बुद्धि न होनेपर भी भक्तजन तो अपने प्रभुकी स्तुति करते ही हैं। प्रदीप क्या तेजस्वी सूरजकी पूजा नहीं करता। अथवा भक्त जनसे कौन नहीं पुजता। इसी तरह नाथ, केवल भक्तिवश होकर ही हमने आपकी स्तुति करनेकी हिम्मत की है। प्रभो, इस प्रकार स्तुति कर हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि, आप हमें अपनी मोक्षकी कारण भक्ति दीजिए। इस प्रकार देवगण केवलज्ञान-विराजमान नेमिजिनकी स्तुति कर अपने अपने कोठोंमें जा बैठे। इन देवतोंकी तरह इन्द्रानी आदि देवाङ्गना-ओंने भी परमानन्दित होकर नेमिजिनके सुख-दाता चरणोंकी पूजा की।

नेमिजिनके केवलज्ञानकी खबर मिलते ही त्रिखण्डपति बल-देव, श्रीकृष्ण भी अपनी सब सेना तथा परिवारके साथ गिर-नार पर्वतपर गये। समवशरणमें जाकर उन्होंने नेमिजिनकी तीन प्रदक्षिणा की और बड़े आनन्दसे 'नन्द' 'जीव' 'रक्ष' कहकर भगवानका जयजयकार किया। उन लोकश्रेष्ठ निधि नेमिजिनको देखकर वे बहुत सन्तुष्ट हुए। इसके बाद उन्होंने चन्दनादि श्रेष्ठ द्रव्योंसे बड़ी भक्तिके साथ उन श्रेष्ठ सम्पदाके देनेवाले और संसार-समुद्रसे पारकर मोक्ष

प्राप्त करानेवाले नेमिजिनकी पूजा की । नेमिजिन एक तो बलदेव-कृष्णके कुटुम्बी और दूसरे जिन, अतएव उन्होंने जो भक्ति की, उसका कौन वर्णन कर सकता है। पूजनके बाद उन्होंने नेमिजिनकी स्तुति की-हे त्रिभुवनाधीश, आपकी जय हो । हे नाथ, आप देवता-गण द्वारा पूज्य हो । धर्मचक्र चलानेमें चक्रकी धार हो और केवलज्ञानरूपी दीपकसे लोकालोकको प्रकाशित कर रहे हो । प्रभो, आप जगत्के बन्धु तो हो ही, पर हमारे विशेष कर बन्धु हो । आपकी दिव्य मूर्तिको देखकर बड़ा आनन्द होता है । आपकी कीर्त्ति सर्वत्र व्याप्त है । भव्यजनोंको आप सद्गतिके देनेवाले हो । आप रक्षक, संसारसे पार करनेवाले और महान् पवित्र हो । यादव-वंशरूपी कमलको प्रफुल्ल करनेवाले श्रेष्ठ आप सूरज हो । नाथ, इस संसारको रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गको दिखानेवाले वास्तवमें आप ही हो । हे जगद्गुरु, आपके अनन्त केवलज्ञानको प्रकाशित होनेपर सूर्य-तेजसे नष्ट हुए जुगनुकी तरह सब कुवादी लोग छुप गये । इसलिए हे नाथ, आप ही देवोंके देव हो, जगद्गुरु हो, सब सन्देहोंके नाश करनेवाले हो, सुख देनेवाले हो और पूज्य भी आप ही हो । हे भगवन्, समवशरण आदि ये सब आपकी बाह्य विभूति है। जब इसका ही कोई वर्णन नहीं कर सकता तब अन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यरूप अन्तरङ्ग विभूतिका तो कौन वर्णन कर सकता है ? नाथ, आप त्रिलोकके स्वामी और लोकालोकके प्रकाशक हो ।

हमें आप हाथका सहारा देकर इस संसार-समुद्रसे पार करो। इस प्रकार नेमिजिनकी पूजा-स्तुति कर और बार बार उन्हें नमस्कार कर त्रिखण्डाधीश बलदेव और श्रीकृष्णने अपने आत्माको कृतार्थ किया। इसके बाद समवशरणमें विराजे हुए अन्य मुनिजनोंको बड़े हँसमुखसे नमस्कार कर वे अपने परिवारके साथ मनुष्योंकी सभामें जा बैठे। उस समय उन बारह सभाओंमें बैठे हुए देव-मनुष्य, वगैरहसे नेमिजिन, खिले हुए कमलोंसे युक्त सरोवरकी तरह शोभित हुए।

पहली सभामें बैठे हुए शुद्ध मनवाले मुनिजन सुख देनेवाले स्वर्गमोक्षके मार्गसे जान पड़ते थे। दूसरी सभामें भक्ति-परायण स्वर्गकी सुन्दर देवाङ्गनायें बैठी हुई थीं। तीसरी सभामें सम्यक्त्व धारण किये हुई और जिनपूजा-परायण श्राविकायें और आर्यिकायें थीं। चौथी सभामें चमकती हुई शरीर-प्रभासे दिव्य-भक्ति सदृश जान पड़नेवाली चाँद-सूरज आदि ज्योतिष्क देवोंकी स्त्रियाँ थीं। पाँचवीं सभामें दिव्य-प्रभाकी धारक और जिनभक्ति-रत व्यन्तरोंकी देवियाँ थीं। छटी सभामें जिनचरण-सेविका पद्मावती आदि नागकुमार देवोंकी सुन्दर देवाङ्गनायें थीं। सातवीं सभामें धरणेन्द्र, नागकुमार आदि दस प्रकार जिनभक्त देवता थे। आठवींमें जिनभक्त और जिनवाणीका आदर करनेवाले किन्नर आदि आठ प्रकारके व्यन्तर देव थे। नौवींमें अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशमय करदेनेवाले चाँद-सूरज आदि पाँच प्रकार

ज्योतिष्क देव थे। दसवींमें बारह प्रकार कल्पवासी देवतागण सौधर्म आदि प्रधान प्रधान देवोंके साथ बैठे हुए थे। ग्यारहवींमें सम्यक्त्वव्रत-भूषित और दान-पूजा आदि शुभ-कर्मोंको करनेवाले मनुष्यगण मुख्य मुख्य राजोंके साथ बैठे हुए थे। बारहवीं सभामें दयावान् और सम्यक्त्वी सिंह आदि पशुगण बैठे हुए थे। वे बड़े क्रूर पशु भी जिन-भगवान्की महिमासे परस्परकी शत्रुता छोड़कर मिलकर सुखसे एक जगह बैठ गये। इस प्रकार इन बारह सभाओंमें बैठे हुए देव-मनुष्यादि द्वारा सेवा किये गये जगच्चिन्तामणि श्रीनेमिप्रभु बड़े ही शोभित हुए। उन सबके बीचमें भगवान् नेमिजिन दिव्य सिंहासनपर विराजमान थे। तीन छत्र उनपर शोभा दे रहे थे। उनका सिंहासन दिव्य अशोकवृक्षके नीचे था। देवगण उनपर चँवर ढोर रहे थे। इन्द्र फूलोंकी वर्षा कर रहा था। नगाड़ोंकी ध्वनिसे सब दिशायें गूँज रही थीं। कोटि सूरजके समान तेजस्वी भगवान्के भामण्डलने सब ओर प्रकाश ही प्रकाश कर रक्खा था। देव-मनुष्य-विद्याधर आकर भगवान्की पूजा कर रहे थे। सोलहकारणभावनाके पुण्य-बलसे भगवान्को महान् अतिशयवती दिव्य-ध्वनि प्राप्त थी। अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य और अनन्त सुख इन चार अनन्तचतुष्टयसे भगवान् विराजित थे। इस प्रकार शोभायुक्त त्रिजगद्गुरु नेमिप्रभुने भव्यजनके पुण्यसे प्रेरणा किये जाकर तीर्थंकर पुण्य-प्रकृतिसे प्राप्त अक्षरमयी दिव्यध्वनि द्वारा

सात तत्त्वोंका विस्तारसे उपदेश किया। वास्तवमें नेमिजिन त्रिजगत्के स्वामी और लोकालोकके प्रकाशक थे। अब कुछ सुख-कर्त्ता नेमिप्रभुके समवशरणमें उपस्थित मुनिजन वगैरहकी संख्याका प्रमाण लिखा जाता है।

त्रिजगतुस्वामी नेमिजिनके चरण-रत वरदत्त आदि ग्यारह गणधर थे। वे गणधर केवलज्ञानरूपी साम्राज्य-लक्ष्मीके प्रभु नेमिजिनके युवराजसे जान पड़ते थे। उन्होंने जिन-प्रणीत तत्व-संग्रहके अनेक ग्रन्थ नाना रचनाओंमें रचे थे। चार-सौ आचार्य थे। वे अंग-पूर्व-प्रकीर्णक आदि सकल श्रुतके विद्वान् थे। ग्यारह हजार आठ-सौ उपाध्याय थे। सुन्दर चारित्रके धारक मति-श्रुत-अवधि-ज्ञानी मुनि १५ सौ थे। इतने ही, लोगोंको परम सुखके देनेवाले, भव-सागरसे पार करनेवाले और लोकालोकके प्रकाशक केवलज्ञानी मुनि थे। २१ सौ विक्रियाऋद्धिधारी मुनि जिनवचनामृतका पान करनेको विराजे थे। दूसरोंकी मनोवृत्तिके जाननेवाले ९ सौ मनःपर्ययज्ञानी मुनि थे। मिथ्यावादियोंके मतरूपी अन्धकारके नाश करनेको सूरज-सदृश वादी मुनि ८ सौ थे। इस प्रकार वे सब रत्नत्रय-विराजमान मुनि १८ हजार थे। यक्षी, राजीमती, कात्यायनी आदि सब मिलाकर आर्यिकायें ४४ हजार थीं। जिनभगवान्के ध्यानमें मन लगाये हुई वे आर्यिकायें शुद्ध सरस्वतीके सदृश जान पड़ती थीं। सम्यक्त्वी, व्रत-दान-पूजा आदिमें रत श्रावक जन

१ लाख थे। मिथ्यात्व रहित, पात्रदान-पूजा-व्रत आदिमें तत्पर ३ लाख श्राविकायें थीं। चारों प्रकारके देव-देवाङ्गनाओंकी कोई संख्या न थी– वे असंख्य थे। शान्त-मन सिंह आदि पशु नेमिजिनके चरणोंमें बैठे थे, उनकी भी संख्या अनगिनतीकी थी। इस प्रकार नेमिजिनके पुण्यसे बारहों सभाओंमें देव-मनुष्यादिक अपने अपने योग्य स्थानपर सुख-भक्ति-आनन्द-के साथ बैठे हुए थे। वहाँ वे सदा धर्मामृत-पानसे पुष्ट होकर बड़े हँसमुख रहते थे।

केवलज्ञान-विराजित नेमिप्रभुकी, त्रिभुवनके जनको परम आनन्द देनेवाली जिस रत्नमयी सभाको इन्द्रकी आज्ञासे कुवरने बनाया, उसका मुझ सरीखे अल्पज्ञानी क्या वर्णन कर सकते हैं ? उस सुखमयी सभाका यह तो मैं कोई क्रोड़वें अंश भी वर्णन नहीं कर पाया हूँ। पर अमृत पीनेको न मिले तो उसका छू-लेना भी सुखकर है। इन्द्रादि देवतागण जिनकी विभूतिका जब वर्णन नहीं कर सकते तब मेरी तो क्या चली ? तौ भी जिनभक्तिके प्रभावसे उसका मैंने कुछ वर्णन किया। वह त्रिभुवनजन-सेवनीय सभा कल्याण करे–सुख दे।

इस प्रकार श्रेष्ठ विभूतिसे जो शोभित हैं, केवलज्ञान द्वारा लोकालोकका प्रकाश करनेवाले हैं, देवतागण जिनकी सदा सेवा-पूजा करते हैं और जिनने जगत्को धर्मामृतके

पान द्वारा सन्तुष्ट कर उसका सन्ताप नष्ट कर दिया वे श्री नेमिप्रभु सब जगत्को श्रेष्ठ सुख दें।

जिन्हें केवलज्ञान होनेपर देव-देवाङ्गना-गणने सुखमयी सभा निर्माण कर भक्तिभरे शुद्ध हृदयसे श्रेष्ठ आठ द्रव्यों द्वारा जिनके चरणोंकी पूजा की, वे नेमिजिन भव-भय हरकर उत्तम सुख दें।

इति दशमः सर्गः।

ग्यारहवाँ अध्याय ।

नेमिजिनका पवित्र उपदेश ।

देव-गण-पूजित और केवलज्ञान-भास्कर श्रीनेमिप्रभु तीर्थङ्कर नाम पुण्यकर्मसे प्राप्त दिव्यसिंहासनपर आठ प्रातिहार्योंसे युक्त विराजे हुए आकाशमें प्रकाशमान चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे। उस सिंहासनसे चार अगुंल ऊपर निराधार आकाशमें बैठे हुए भगवान् भव्यजनके पुण्यकी प्ररणासे हितकारी धर्मका उपदेश करने लगे। कर्म-अंजन रहित उन भगवान्के मुख-कमलसे त्रिलोक-श्रेष्ठ और लोगोंके मनको प्रसन्न करनेवाली दिव्यध्वनि खिरी। उस ध्वनिमें तालु, ओठ, दाँत आदिका सम्बन्ध न था। भगवान् इच्छा करके कोई उपदेश करनेको प्रवृत्त नहीं हुए थे, तो भी उनके माहात्म्य और भव्यजनके पुण्यसे उनका उपदेश हुआ। सुखमयी वह जिनकी दिव्यध्वनि साक्षर थी; क्योंकि उसे सब देशोंके लोग अपनी अपनी भाषामें समझ लेते थे। कमलिनीको प्रफुल्ल करनेवाले सूरजके समान नेमिप्रभुने अपनी वचनमयी किरणोंसे उन बारहों सभाको प्रसन्न करते हुए जिस समुद्र-सदृश गंभीर, और सुख देनेवाले धर्मके भेदोंको कहा, उन्हें कहनेको कोई समर्थ नहीं। तो भी—बुद्धिके न रहनेपर भी केवल भक्ति-वश होकर पूर्वाचार्योंका अनुकरण कर हितकर्त्ता धर्मका कुछ स्वरूप कहनेका मैं साहस करता हूँ।

मन-वचन-कायपूर्वक धर्मका पालन करनेसे वह लोगोंको उत्तम सुख देता है । पूर्वाचार्योंने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन रत्नत्रयको श्रेष्ठ धर्म कहा है । इनमें सच्चे देव-गुरु-शास्त्र और जिनप्रणीत अहिंसामयी धर्ममें प्रीति-रुचि-विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं । जैसे सिर, मुँह, हाथ, पाँव आदि आठ सुदृढ़ अङ्गोंसे यह मनुष्य-शरीर सुन्दर देख पड़ता है उसी तरह यह सम्यग्दर्शन भी विना आठ अंगोंके शोभाको प्राप्त नहीं होता । और जैसे साणपर चढ़ाया हुआ रत्न मैलरहित होकर निर्मल हो जाता है उसी तरह तीन मूढ़ता, आठ प्रकारके गर्व आदि मलरहित शुद्ध सम्यग्दर्शन बड़ी ही निर्मलता लाभ करता है ।

ऊपर जो देव-गुरु-शास्त्रके विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहा, उनमें देव वह है जो दोषोंसे रहित हो । वे दोष अठारह हैं । उनके नाम हैं—भूख, प्यास, बुढ़ापा, रोग, शोक, जनम, मरण, भय—डर, निद्रा, राग, द्वेष, विस्मय, चिन्ता, रति, गर्व, पसीना, खेद—दुःख, और मोह । जो इन दोषोंसे रहित, सर्वज्ञ, स्नातक—परिग्रहादिरहित, परम निर्ग्रन्थ, जिन, कर्म-अंजनरहित और परमेष्ठी हैं वही सच्चे देव हैं । अपने स्वभावमें स्थिर इन जिनभगवान्‌ने जो परस्पर विरोधरहित शास्त्र कहा, जीव-अजीवादि तत्वोंका स्वरूप प्रगट करनेवाला वही लोकमें पवित्र शास्त्र है और वही शास्त्र स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाला है ।

जो ग्रह-सदृश कष्ट देनेवाले बाह्य और अन्तरङ्ग परिग्रह रहित, निर्ग्रन्थ, परमार्थके जाननेवाले, ज्ञान-ध्यान-तप-योग-में सावधान, परम दयालु, क्षमावान् और परम ब्रह्मचारी हैं, वे सच्चे गुरु या तपस्वी हैं और सब जीवोंका हित करनेवाले हैं। इस प्रकार देव-गुरु-शास्त्रके विषयमें जो संज्ञी भव्यका संशयादि दोषरहित विश्वास है उसे ही आचार्योंने सुख देनेवाला सम्यग्दर्शन कहा है।

कर्मबन्धके कारण संसार-शरीर-भोग आदिके सुखमें मन-वचन-कायसे इच्छा—चाहका न होना 'निष्कांक्षित' नाम दूसरा सम्यग्दर्शनका अंग है। शरीर अपवित्र वस्तुओंसे भरा है, परन्तु रत्नत्रयका साधन है। इस कारण यदि किसी धर्मात्मा या अन्य जनके शरीरमें कोई रोगादिक हो जाय तो उससे घृणा न करना वह 'निर्विचिकित्सा' नाम तीसरा अंग है। कुमार्ग और कुमार्गी मनुष्योंसे प्रेम न करना उनकी प्रशंसा न करना वह 'अमूढ़दृष्टि' नाम चौथा अंग है। शुद्ध जिनधर्मकी अज्ञानी और मूर्खजनके सम्बन्धसे यदि निन्दा-बुराई होती हो तो उसे ढक देना वह, 'उपगूहन' नाम पाँचवाँ अंग है। यदि कोई प्रमाद—असावधानी या कषायसे दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप पवित्र मार्गसे उलटा जा रहा हो—गिर रहा हो उसे उसी मार्गमें फिर दृढ़ कर देना वह 'स्थितिकरण' नाम छठा अंग है। धर्मात्मा जनके साथ छल-कपट-मायाचार रहित प्रेम करना वह सुखका

साधन सातवाँ 'वात्सल्य' नाम अंग है। मिथ्या-अज्ञान-रूप अन्धकारको नष्ट करके अपनी शक्तिके अनुसार नाना प्रयत्न द्वारा जैनधर्मका प्रचार करना वह 'प्रभावना' नाम आठवाँ सम्यग्दर्शनका अंग है। इन आठ अंगों या गुणोंसे पूर्णताको प्राप्त पवित्र सम्यग्दर्शन विप-वेदनाको नष्ट करनेवाले मंत्रकी तरह कर्मोंका नाश करनेवाला है। ये तो हुए सम्यग्दर्शनके आठ गुण। इसके सिवा शंकादिक आठ दोष, छह अनायतन, तीन मूढ़ता और आठ मद ये पच्चीस उसके दोष हैं। इनका खुलासा इस प्रकार है। कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरु और इन तीनोंके भक्त, ये छह 'अनायतन' हैं—धर्म प्राप्तिके स्थान नहीं हैं। मिथ्यात्वियोंकी तरह सूरजको अर्घ देना, ग्रहण वगैरहमें नहाना, संक्रांतिमें दान करना, सन्ध्या, अग्नि, देव, घर, गाय, घोड़ा, गाड़ी, पृथ्वी, वृक्ष, सर्प आदिकी पूजा करना, नदी-समुद्रमें नहाना, पत्थर-रेती वगैरहका ढेरकर उसे पूजना, पर्वतपरसे या अग्निमें गिरना, यह सब 'लोकमूढ़ता' है। अथवा विष-भक्षण, शस्त्र वगैरहसे आतमघात कर लेना—ये सब महापापके कारण हैं। पंडितोंने इनके द्वारा सदा संसार-भ्रमण होना बतलाया है। वरकी इच्छा या लोभसे रागी-दोषी देवोंकी सेवा-भक्ति करना 'देव-मूढ़ता' है। नाना घरगिरिस्तीके आरंभ-सारंभ करनेवाले, संसाररूपी गढ़ेमें आकण्ठ फँसे हुए और विषयोंकी चाह करनेवाले ऐसे पाखण्डियोंकी सेवा-पूजा करना 'पाखण्ड-मूढ़ता' है। इस

प्रकार इन तीन मूढ़ता और छह अनायतन-रहित सब व्रतोंके भूषण सम्यग्दर्शनका पालन करना चाहिए।

इसके सिवा सम्यग्दृष्टिको यह जानकर, कि जिनप्रणीत धर्मके पात्र अभिमानी–गर्विष्ठ लोग नहीं हैं, आठ प्रकारका गर्व या अभिमान छोड़ देना चाहिए। वे आठ गर्व ये हैं– ज्ञानका गर्व, पूजा-प्रतिष्ठाका गर्व, कुलका गर्व, जातिका गर्व, बलका गर्व, धन-दौलतका गर्व, तपका गर्व और रूप-सुन्दरताका गर्व। ये बातें मूर्खोंको गर्वकी कारण हैं। बुद्धिमान् समझदारको नहीं। इस प्रकार पचीस मल-दोष रहित जो सम्यग्दर्शन है वही दोनों लोकमें हित करनेवाला है। केवलज्ञानी जिनने इस सम्यक्त्वके उपशमसम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व और क्षयोपशमसम्यक्त्व ऐसे तीन भेद किये हैं। मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यङ्मिथ्यात्व तथा अनन्ता-नुबन्धि– क्रोध-मान-माया-लोभ ऐसी चार कषाय, इन सातों प्रकृतियोंके उपशमसे जो हो वह 'उपशमसम्यक्त्व' है, इनके क्षयसे जो हो वह 'क्षायिकसम्यक्त्व' है और जिसमें इन सातों प्रकृतियोंकी कुछ उपशम और कुछ क्षय दशा हो–दोनोंका मिश्रण हो वह 'क्षयोपशमसम्यक्त्व' है। सम्यक्त्वका यह सब लक्षण व्यवहारसे कहा गया और निश्चयसे सम्यक्त्वका लक्षण है–मोह-क्षोभरहित केवल शुद्ध आत्मभावना। अन्य आचार्योंने संवेग, निर्वेद, आत्मनिन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकम्पा ये सम्यक्त्वके आठ गुण

कहे हैं। इस प्रकार मोक्ष-कारण, सुख देनेवाले सम्यग्दर्शनका जो जन पालन करते हैं वे ही सम्यग्दृष्टि हैं। जैसे सुदृढ़ नींव मकानकी रक्षा करती है उसी तरह दान-तप-आदि सम्यक्त्व-की रक्षाके कारण हैं। इस सम्यक्त्व-रत्नका धारक जिन सेवा करनेवाला भव्य दुर्गतिके बन्धनोंको काटकर मुक्ति स्त्रीका स्वामी होता है। वह नरकगति और तिर्यंचगतिमें नहीं जाता, नपुंसक और स्त्री नहीं होता, नीच कुलमें नहीं जन्म लेता, रोगी, दरिद्री और अल्पायु नहीं होता। किन्तु वह देवता, चक्रवर्ती आदिकी नाना भोग-विलास और सुखकी कारण, मनको मोहित कर-नेवाली सम्पदाको उस सम्यक्त्वके प्रभावसे प्राप्त करता है और अन्तमें श्रेष्ठ रत्नत्रय धारणकर मोक्ष जाता है। सत्पु-रुषो, इस संसारमें सम्यक्त्व ही एक ऐसी श्रेष्ठ वस्तु है, जिससे सब सुख प्राप्त हो सकता है। जीवके लिए हितकारी इतनी कोई अच्छी वस्तु नहीं है। एक जगह इस सम्यक्त्वकी प्रशंसामें कहा गया है– जितना एक पत्थरका गौरव है उतना ही गौरव सम्यक्त्व रहित शम-ज्ञान-चारित्र-तप वगैरहका समझना चाहिए और जब ये ही ज्ञान-चारित्र-तप सम्यक्त्व सहित हो जाते हैं तब एक बहुमूल्य रत्नकी तरह आदरके पात्र हो जाते हैं। इस कारण हर प्रयत्न द्वारा इस स्वर्ग-मोक्षके कारण सम्यक्त्वको प्राप्त करना चाहिए। संक्षेपमें पंडितोंने सत्यार्थ–देव-गुरु-शास्त्रके श्रद्धा-

न करनेको सम्यक्त्व कहा है। वह सम्यक्त्व संसार-भ्रमणसे होनेवाले दुःखों और कुगतिका नाश करनेवाला है, ज्ञान-ध्यान-तप दान आदि क्रियाओंका भूषण और धर्मरूपी वृक्षका बीज है। वह सम्यक्त्व सत्पुरुषोंको सदा स्वर्ग-मोक्षका सुख दे। इस सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके पूर्व कुदेवोंमें देवता-बुद्धि, कुगुरुओंमें गुरुपना और मिथ्या-तत्वोंमें तत्त्व-भावनारूप मिथ्यात्व छोड़ देना चाहिए।

इति सम्यक्त्वाधिकार ।

इस प्रकार सम्यक्त्वका उपदेश कर जगद्गुरु नेमिजिनने सम्यग्ज्ञानका स्वरूप कहना आरंभ किया। वे बोले—पूर्वापरके विरोधरहित और अत्यन्त शुद्ध जो ज्ञान है वही सच्चा ज्ञान है और वही लोगोंका दूसरा नेत्र है। जिसमें सुखमयी जीवदयाका उपदेश हो वही श्रेष्ठ ज्ञान सब सम्पदाका कारण है। और जिसमें सैकड़ों दुःखोंकी कारण जीवहिंसा कही गई है वह ज्ञान नहीं—कुज्ञान—मिथ्याज्ञान है और महापापका कारण है। जिसके द्वारा लोग हिंसा-झूठ-चोरी आदि पापोंको छोड़ सकें, ज्ञानीजनोंने उस ज्ञानको सब जीवोंके लिए सुखका कारण कहा है। जिसके द्वारा मूर्ख मनुष्य भी लोक-अलोक और हित-अहितको विना किसी सन्देहके जानलें वह जिन-प्रणीत ज्ञान सर्वोत्तम है। जिनभगवान्‌ने इस ज्ञानके अनेक भेद कहे हैं, उन्हें शास्त्रों द्वारा जानना चाहिए। उसके जो जग-हितकारी चार महा अधिकार हैं उनका स्वरूप

संक्षेपमें यहाँ लिखा जाता है । पहला ' प्रथमानुयोग ' नाम अधिकार है । उसमें–शान्तिकर्ता तीर्थंकर जिनका पुण्यका कारण पुराण, उनके पंचकल्याणोंका विंस्तारसहित वर्णन और गणधर, चक्रवर्ती, आदि महात्माओंका पवित्र चरित रहता है । दूसरा ' करणानुयोग ' नाम अधिकार है । उसमें लोका-लोककी स्थिति, कालका परिवर्तन और चारों गतियोंके भेदोंका वर्णन हैं । यह अधिकार संशयरूपी अन्धकारको नाश कर बड़ा सुखका देनेवाला है । तीसरा ' चरणानुयोग ' नाम अधिकार है । उसमें मुनियों और श्रावकोंके श्रेष्ठ चारित्र, उसकी उत्पत्ति, वृद्धि और उसके द्वारा होनेवाला सुख और फल आदि बातोंका खूब विस्तारके साथ वर्णन रहता है । चौथा मिथ्यात्वका नाश करनेवाला 'द्रव्यानुयोग' नाम अधिकार है । उसमें जीव-अजीव आदि सात तत्व, पुण्य-पाप और सुख-दुःख आदिका विस्तृत वर्णन होता है । इसके बाद केवलज्ञानी नेमिप्रभुने दिव्यध्वनि द्वारा बारह अंगोंका स्वरूप कहकर चार ज्ञानधारी गणधरों द्वारा स्वपरोपकारके लिए जो नाना प्रकार संस्कृत-प्राकृत–भाषामें तथा अनेक छन्दोंमें अध्यात्म, दर्शन, न्याय, साहित्य आदि ग्रन्थ रचे गये, उन सबके पदोंकी संख्या बतलाई । वह संख्या है–११२ क्रोड़ ८३ लाख और ८ हजार पाँच । यह जो संख्या कही गई वह ग्रन्थके परिमाणसे है, अर्थ परिणामसे तो उसे कोई नहीं कह सकता । कोई पूछे कि इन

सब पदोंमेंसे एक पदके श्लोकोंकी संख्या कितनी होगी, तो उसका उत्तर मुनियोंने यह दिया है कि–५१ क्रोड़, ८ लाख ८४ हजार, ६ सौ २१॥ एक महापदके श्लोकोंकी संख्या है। इस प्रकार महिमा प्राप्त जिनप्रणीत श्रुतज्ञानकी केवलज्ञानकी प्राप्तिके लिए भव्यजनोंको आराधना करनी चाहिए। जिन-प्रणीत यह श्रुतज्ञान लोकालोकका ज्ञान करानेवाला, अनादि-निधन और मिथ्याज्ञानका क्षय करनेवाला है। इसकी जो गुरु चरण-सेवा-रत भव्यजन भक्ति भरे स्वस्थ चित्तसे पाँच प्रकार स्वाध्यायके रूपमें आराधना करते हैं–ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न करते हैं वे बड़े ज्ञानी होते हैं, कला-कौशलके जाननेवाले होते हैं और सुख-सम्पदा, यश-कीर्ति लाभ करते हैं। अन्तमें वे सम्यग्ज्ञानके प्रभावसे सब चराचरका ज्ञान करानेवाले अनन्त सुख-समद्र केवलज्ञानको प्राप्त कर जन्म-जरा-मरण-दुख-शोक आदि रहित अनन्त सुखमय मोक्षको प्राप्त होते हैं। जैसा कि कहा गया है–ज्ञान आत्माका स्वभाव है जब वह पूर्णरूपसे उसमें विकाशको प्राप्त हो जाता है तब फिर कभी नष्ट नहीं होता और न घटता-बढ़ता है। इस कारण जो ऐसा नष्ट न होनेवाला ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें उस सम्यग्ज्ञानके प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिए। यह जानकर हे भव्यजनो, मन-वचन-कायकी शुद्धिपूर्वक सम्प-दाके खान जिनप्रणीत सम्यग्ज्ञानको प्राप्त करो। जिन-भगवान्‌के मुख-चन्द्रसे निकले श्रुत-समुद्रकी मैं भी शरण लेता

हूँ वह मोक्ष दे। जिनप्रणीत सम्यग्ज्ञान पुण्यका कारण और मिथ्या-ज्ञानका क्षय करनेवाला है, लोकालोकके देखने-जानेको एक अपूर्व नेत्र और सन्देहका नाश करनेवाला है, जीव-अजीव आदि तत्वोंके भेदोंका वर्णन करनेवाला और ज्ञानियोंका जीवन है और सुख तथा आनन्दका देनेवाला है, वह सत्पुरुषोंको सुख दे।

इति ज्ञानाधिकार।

इस प्रकार ज्ञानका स्वरूप कहकर केवलज्ञानी नेमिप्रभुने सुगतिका कारण सुन्दर चारित्रका स्वरूप कहना आरंभ किया। वे बोले—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, और परिग्रह इन पाँच पापोंका छोड़ना वह चारित्र है। इस जिनप्रणीत चारित्रको इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती, विद्याधर आदि बड़े बड़े लोग मानते और पूजते हैं। यह दुःख-दरिद्रता-दुर्भाग्य-दुराचार आदि पापोंका नाश करनेवाला और सुखका कारण है। इस चारित्रके मुनि-चारित्र और श्रावक-चारित्र ऐसे दो भेद हैं। हिंसा आदि पाँप पापोंका सम्पूर्णपने त्याग करनेको सकल-चारित्र या मुनि-चारित्र कहते हैं और यह साक्षात् मोक्षका कारण कहा गया है। इसी सकल त्यागको श्रेष्ठ प्राँच महाव्रत कहते हैं। इन महाव्रतके सिवा मन-वचन-काय-की शुद्धिसे उत्पन्न तीन गुप्ति और पाँच पवित्र समिति इस प्रकार ये सब मिलाकर तेरह प्रकारका श्रेष्ठ मुनि-चारित्र होता है। यह चारित्र स्वर्ग-मोक्षका देनेवाला है।

इस चारित्रके, संसार-समुद्रसे पार करनेवाले और हितकारी भेदोंका श्रीनेमिप्रभुने बहुत विस्तारसे वर्णन किया था। वे भेद वर्णनमें मेरुसे भी कहीं उन्नत हैं। उनका वर्णन मैं नहीं कर सकता— मुझमें वैसी शक्ति नहीं। भुजाओं द्वारा समुद्रको कौन तैर सकता है। इस कारण इस विषयको छोड़कर श्रावक-चारित्रका कुछ वर्णन किया जाता है।

स्थावर-हिंसाका त्याग कर त्रस-हिंसाका त्याग करनेरूप अणु-चारित्रको श्रावक-चारित्र कहते हैं। यह चारित्र स्वर्गादिक सद्गतिका कारण है। इस सम्यक्त्व युक्त श्रावकधर्ममें पहले ही आठ मूलगुण धारण करने चाहिए। मद्य, माँस, मधु और पाँच उदुम्बरके त्यागनेको आठ मूलगुण कहते हैं। मद्य— शराब छोटे छोटे असंख्य जीवोंकी घर, बुद्धिका नाश करनेवाली, नीच लोग जिसे पसन्द करते हैं और हिंसाकी कारण है। उसे कभी न पीना चाहिए। इसीके द्वारा हजारों दुराचार-अनर्थ होते हैं और कुलका क्षय हो जाता है। शराब पीकर बे-सुध हुआ मनुष्य इधर-उधर गिरता पड़ता हुआ चलता है— उसके बराबर पाँव नहीं उठते। वह कभी जमीनपर गिर पड़ता है— मल उसके शरीरसे लिपट जाता है। तब उसकी दशा ठीक कुत्तेके सदृश हो जाती है। कोई उसके पास जाकर नहीं फटकता। शराब पापबन्धकी कारण है, निन्द्य है, संसार-समुद्रमें गिरानेवाली है। इस कारण अपना हित चाहनेवाले सत्पुरुषोंको उसे

अवश्य छोड़ देना चाहिए। अधिक क्या कहा जाय, जब शराबी काम-पीड़ित होता है तब वह अपनी मा-बहिनसे भी बुरी नियत कर बैठता है और फिर उस पापसे दुर्गतिमें जाता है।

इसलिए जो विवेकी हैं, जिन्हें अपने कुलकी लज्जा है और जो दयालु हैं उन्हें धर्मसिद्धिके लिए मन-वचन-कायसे शराब पीना त्याग देना चाहिए। जिन लोगोंने इस व्रतको ग्रहण कर लिया, उन्हें साथ ही इतना और करना चाहिए कि वे न तो शराबियोंकी संगति करें और न आठ मदोंको करें। ऐसा करनेसे उनका व्रत और भी अधिक अधिक निर्मल होता जायगा। सावधानीके साथ जड़मूलसे नष्ट कर दिये गये रोगकी तरह यह शराबका छोड़ देना मनुष्योंको कभी कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकता।

मांस, खून और मांसके मिश्रणसे बनता है, जीवोंके मारनेसे उसकी पैदायश है। अतएव वह महा पापका कारण है। अच्छे लोगोंको उसका सदाके लिए त्याग कर देना चाहिए। एक मांसका खाना ही ऐसा भयंकर पाप है कि उससे नरकोंमें बड़े घोर दुःख सहने पड़ते हैं और अनन्त कालतक संसारमें रुलना पड़ता है। मांसका स्वयं सेवन जितना पाप है दूसरेसे कराने और करते हुएकी तारीफ करनेमें भी वैसा ही अनन्त दुःखका देनेवाला महापाप है। महा मिथ्यात्वके उदयसे जो लोग मांस-सेवन करते हैं वे लोकमें निन्दा

योग्य, पापी और दुःखके भोगनेवाले होते हैं। धर्मरूपी कल्पवृक्षका मूल दया है, तब जिसमें दया नहीं उसके धर्म कहाँसे हो सकता है। बीजके विना फल नहीं होता। अन्यत्र भी ऐसा ही कहा गया है कि दया धर्मका मूल है। जिसने मांस खाकर वह मूल उखाड़ डाला फिर वह सुखरूप फल-फूल-पत्ते कहाँसे प्राप्त कर सकता है? अच्छे लोगोंको जिसका नाम सुनकर ही बड़ा दुःख होता है तब उसका खानेवाला लम्पटी, पापी क्यों न दुखी होगा? जैसे कौए, बगुले आदिका नदीमें नहाना शुद्धिके लिए नहीं हो सकता उसी तरह मांस खानेवालोंका नहाना-धोना, स्वच्छ वस्त्र पहरना आदि सब वृथा है। जिन महात्माओंके कुलमें स्वप्नमें भी मांसकी चर्चा नहीं वे ही वास्तवमें भव्य और बड़े पवित्र हैं। जिन्होंने इस मांस खानेको छोड़ दिया है उन्हें इस व्रतकी शुद्धताके लिए चमड़ेमें रक्खा हुआ पानी, घी, तैल, हींग आदि वस्तुयें भी न खानी चाहिए। अन्यत्र लिखा है—चमड़ेमें रक्खे हुए पानी, तैल, हींग, घी आदिका खाना मांसत्याग किये हुए मनुष्यको दोषका कारण है। क्योंकि चमड़ेके सम्बन्धसे घी-तैल-पानी वगैरहमें सदा जीव पैदा होते रहते हैं। जैसा कि कहा गया है—घी तैल-पानी आदिका सम्बन्ध पाकर उस चमड़ेमें जीव पैदा हो जाते हैं—जैसे सूर्यकान्तके सम्बन्धसे आग और पानीमें जीव पैदा हो जाना केवली जिनने कहा है। अन्यत्र लिखा है—चमड़ेका पानी पीनेवाले और घी-तैल

आदि खानेवालेको दर्शनशुद्धि नहीं हो सकती। शौच, स्नान वगैरहके लिए भी जब चमड़ेका पानी योग्य नहीं तब उस पानीको पीनेवाला जिनशासनमें व्रती कैसे हो सकता है। और भी कहा है—जो व्रती हैं उन्हें चमड़ेमें रक्खे हुए हींग-घी-तेल पानी आदि न खाना चाहिए। कारण उनमें सूक्ष्म जीव पैदा हो जाते हैं और उससे मांस खानेका ही दोष लगता है। इस प्रकार आचार्योंके उपदेशको मनमें धारण कर मांस-त्याग-व्रतीको चमड़ेमें रक्खे हुए घी-तेल आदि खाना ठीक नहीं।

मधु (शहद) मक्खियोंके वमनसे पैदा होता है, नाना जीवोंका घर है, पापका कारण है और निन्द्य है। वह अच्छे लोगोंके खाने योग्य नहीं। यह निन्द्य शहद देखनेमें खूनके सदृश है। जिन-वचन-रत लोगोंको उसका खाना ठीक नहीं। शहद खानेसे बड़ा ही घोर पाप होता है। इस कारण उसका खाना तो दूर रहे व्रतियोंको उसे शरीरपर लगाने वगैरहके काममें भी न लेना चाहिए। इस मधुत्याग-व्रतकी शुद्धिके अर्थ जिनप्रणीत तत्वके जाननेवालोंको गीले फूल भी न खाना चाहिए।

बड़ आदि पाँच वृक्षोंके फल जो पाँच उदुम्बर कहे जाते हैं, वे त्रस जीवोंके घर हैं और दुःखोंके मूल कारण हैं। उत्तम लोगोंको उनका खाना उचित नहीं है। जो फल भील आदि पापी लोगोंके खाने योग्य हैं, अच्छे पुरुषोंको तो उनका त्याग ही करदेना चाहिए। इसके सिवा पुण्यधनके धनी व्रती

लोगोंको चाहे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, पर अजान फल सदाके लिए छोड़ देना चाहिए। विद्वान् आशाधरजीने आठ मूलगुण इस प्रकार कहे हैं— मद्य, मांस, मधु, रात्रिभोजन और पाँच उदुम्बर फलका त्याग, पंच परमेष्ठीकी वन्दना, जीवदया और जल छानकर काममें लाना, ये आठ मूलगुण हैं। इस प्रकार जिनशास्त्रानुसार आठ मूलगुणोंका स्वरूप कहा गया। सुख प्राप्तिके लिए श्रावकोंको इनका पालन करना चाहिए। ये आठ मूलगुण भव्य लोगोंका हित करनेवाले और संसारका दुःख नाश करनेवाले हैं। जो जन सम्यक्त्व सहित दृढ़ताके साथ सदा इनका पालन करते हैं वे त्रिभुवनके बन्धु जिनधर्ममें दृढ़ होकर सुख-सम्पत्ति, प्रताप, विजय, यश और आनन्दको प्राप्त करते हैं।

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये गृहस्थोंके बारह व्रत हैं। इस श्रावकचारित्रको मुनिजनोंने दुराचारका नाश करनेवाला और श्रेष्ठ सुख-सम्पत्तिका कारण बतलाया है। स्थूल हिंसादिक-पाँच पापोंका त्याग पाँच अणुव्रत हैं। मन-वचन कायके संकल्पसे त्रस जीवोंकी हिंसा न करनेको पहला 'अहिंसा' नाम अणुव्रत कहते हैं। अहिंसा वह प्रशंसा योग्य है जिसमें नाम-स्थापनादिसे भी आटे वगैरहके बने जीव न मारे जायँ। देवताकी बलि, मंत्रसिद्धि तथा औषधि आदिके लिए भी चेतन या अचेतन जीवकी हिंसा करना हितार्थियोंको उचित नहीं। जिन-

प्रणीत तत्वके समझनेवाले भव्य लोगोंको मन-वचन-काय पूर्वक सदा ही त्रस जीवोंकी रक्षा करनी चाहिए। जिनभगवान्ने पवित्र श्रावक-व्रतियोंके यह ‘ पक्ष ’ वतलाया कि वे संकल्पी-हिंसा कभी न करें। मारना, बाँधना, छेदना, ज्यादा बोझा लादना और खाने-पीनेको न देना ये पाँच अहिंसा-व्रतके दोष हैं। अहिंसाव्रतीको इन्हें छोड़ना चाहिए । इन दोषोंसे रहित त्रस जीवोंकी जो लोग दया करते हैं—मन वचन-कायसे किसी जीवको कष्ट नहीं देते हैं वे श्रेष्ठ व्रती श्रावक हैं। जो श्रावक इस प्रकार नाना भेद सहित दया पालते हैं और सदा जिनवचनमें सावधान रहते हैं वे इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदिकी सुख-सम्पदा, स्त्री-पुत्र, धन-दौलत, रूप-सुन्दरता, भोग-विलासके साधन और ऊँच कुल प्राप्त करते हैं और अन्तमें रत्नत्रयके प्रभावसे त्रिलोकपूज्य केवल-ज्ञानी होकर जन्म-जरा-मरण रहित अनन्त, अविनाशी मोक्ष-लक्ष्मीका सुख भोगनेवाले होते हैं । और जो मूर्ख त्रस जीवोंकी हिंसा करते हैं वे फिर उसके पापसे नाना प्रकारके निर्धनता, रोगीपना आदि दुःखोंको भोगकर अन्तमें कुगतिमें जाते हैं। वहाँ भी वे छेदना, भेदना और यंत्रोंमें दबाकर मारना, आदि घोरसे घोर दुःख सहते हैं। इस तरह वे अनन्त कालतक संसारमें रुलते हुए दुःखोंको उठाते हैं। इस कारण हे भव्यपुरुषो, जिनशास्त्रानुसार हिंसाका त्यागकर श्रेष्ठ सम्पत्तिके भोगनेवाले हो । जिनभगवान्ने

जीवदया सब सुखोंकी कारण और संसारके दुःखोंकी नाश करनेवाली कही है। जो लोग उसे मन-वचन-कायसे पालते हैं वे स्वर्गादिकी सुख-सम्पदा लाभ कर अन्तमें मुक्ति स्त्रीका सुन्दर, अतुल और शुद्ध सुख प्राप्त करते हैं।

स्थूल-झूठ और वह सत्य जिससे जीवोंको कष्ट पहुँचे, न स्वयं बोलना चाहिए और न दूसरोंसे बुलवाना चाहिए। और न लाभ, डर, द्वेष आदिके वश होकर कभी झूठ बोलना उचित है। यह 'स्थूल-असत्य-त्याग' नाम दूसरा अणुव्रत है। इस व्रतके व्रतीको इतना और ध्यानमें रखना चाहिए कि वह मर्मभेदी, कानोंको दुःख देनेवाले और दूसरेको अच्छे न लगनेवाले वचन भी न बोले। किन्तु दूसरोंके हितरूप, सुन्दर, परस्पर विरोधरहित, मन और हृदयको प्यारे लगनेवाले और बहुत परिमित—थोड़े वचन बोले। प्रिय वचन एक ऐसी मोहिनी है कि उससे क्रूर पशु भी सन्तुष्ट हो जाते हैं। जो सबको प्यारे सत्य वचन बोला करते हैं, उनकी कीर्ति त्रिलोकमें फैल जाती है। झूठा उपदेश करना, किसीकी एकान्तकी बातोंको प्रगट कर देना, चुगली करना, जाली दस्तावेज बनाना और किसीकी धरोहर पचा जाना, ये पाँच असत्य-त्याग-व्रतके दोष—अतिचार हैं। जिन-वचन-रत सत्यव्रतीको इनका भी त्याग करना चाहिए। सत्य बोलनेसे निर्मल यश, लक्ष्मी, विद्या, प्रसिद्धि, लोक-मान्यता आदि

अनेक श्रेष्ठ गुण प्राप्त होते हैं । इस कारण असत्य छोड़कर सत्य ही बोलना चाहिए ।

भूले हुए, रास्तेमें पड़े हुए और जंगल वगैरहमें गाड़े हुए दूसरेके धन आदिको बिना दिया न लेना उसे मुनिलोग 'स्थूल-स्तेय-त्याग' नाम तीसरा अणुव्रत कहते हैं । जो दूसरों-की धन-धान, सोना-चाँदी, मोती-माणिक आदि चीजोंको नहीं लेते हैं वे स्तेय-त्याग-व्रतके प्रभावसे परजन्ममें नाना तरह-की सम्पदाके स्वामी होते हैं । और जिन्होंने लोभके वश हो दूसरेका धन चुराया—उसने उसके प्राणोंको भी हर लिया । इससे बढ़कर और क्या पाप होगा । जो मूर्ख दूसरोंका धन चुराकर अपने घर ले जाता है—कहना चाहिए कि उसने अपनी भी जमा-पूँजी नष्ट करदी । इस चोरीसे वह निर्धन, दुखी, रोगी, कुरूप आदि होकर संसारमें अनन्त कालतक रुला करता है । इसलिए सन्तोष कर मन-वचन-कायसे सबको ' चोरी-त्याग-व्रत ' पालना चाहिए । ऐसा करनेसे उन्हें सुख प्राप्त होगा । चोरीका प्रयत्न करना, चोरीका माल लेना, राजाज्ञाका उल्लंघन करना, तोलने या मापनेके बाट वगैरह ज्यादा-कम रखना और कम कीमतकी चीजमें अधिक कीम-तकी और अधिक कीमतकीमें कम कीमतकी चीज मिलाना, ये पाँच स्तेयत्यागव्रतके अतिचार हैं । अपने व्रतकी रक्षाके लिए इन बातोंको छोड़ना चाहिए । इस प्रकार जिनभगवा-न्ने स्तेयत्यागव्रतका स्वरूप कहा, उसे जो निर्मल मनवाले

सत्पुरुप पालते हैं वे स्वर्गादिककी लक्ष्मीका सुख प्राप्तकर अन्तमें परम सुखमय मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

जो सत्पुरुप परस्त्रियोंसे सम्बन्ध न कर अपनी ही स्त्रीमें सन्तुष्ट रहते हैं उनके 'परस्त्री-त्याग' या 'स्वदार-सन्तोप' नाम चौथा अणुव्रत होता है । हाव-भाव-विलास युक्त पर-स्त्रियाँ अपने घरपर ही स्वयं क्यों न आई हों, शीलवान् पुरुपोंको उनसे संग न करना चाहिए । जिनने मन-वचन-कायसे परस्त्रीका त्याग कर दिया वे ही सच्चे धीर हैं, पंडित हैं, शूरवीर हैं और गुणोंके समुद्र हैं । सत्पुरुष परस्त्रीका रूप देखकर वरसासे नीचा मुँह किये हुए बूढ़े बैलके सदृश झटसे नीचा मुँह कर लेते हैं । अच्छे धर्मात्मा लोगोंके मनमें न्यायोपार्जित भोग ही जब नहीं रुचते तब न्याय रहित भोगोंकी तो बात ही क्या कहना । दूसरेके लड़के-लड़कीका व्याह करवाना, शरीरके अवयवोंसे कुचेष्टायें-बुरे इशारे करना, कामस्थानको छोड़कर अन्य अंगोंसे काम-क्रीड़ा करना, विपय-भोगोंकी बड़ी तृष्णा रखना और व्यभिचारिणी स्त्रियोंके घरपर जाना-आना, ये पाँच ब्रह्मचर्य व्रतके दोष हैं । परस्त्री-त्यागव्रतीको इनका भी त्याग करना चाहिए । इस प्रकार जो सत्पुरुप परस्त्रीका मन-वचन-कायसे त्याग करते हैं वे परम-पद—मोक्ष प्राप्त करते हैं । और जो परस्त्री-लम्पटी है वह मूर्ख उसके पापसे फिर दुर्गतिमें जाता है । इस कारण परस्त्रीका त्याग तो दूरहीसे कर देना चाहिए ।

और जो स्त्रियाँ हैं उन्हें चाहिए कि वे कामदेव-सदृश सुन्दर मनुष्यको भी देखकर उसे अपने भाई या पिताके समान समझें । जिनभगवान्‌के वचनामृतका पानकर जो पवित्र शीलके धारक होते हैं वे सर्व श्रेष्ठ सम्पदा प्राप्त करते हैं और चन्द्रमाके समान निर्मल उनकी कीर्ति सब जगत्‌में फैल जाती है ।

धन-धान, सोना-चाँदी, दासी-दास आदि दस प्रकार परिग्रहकी संख्याका प्रमाण करना—मैं इतना धन या इतना सोना-चाँदी आदि रखकर बाकीका त्याग करता हूँ । यह पाँचवाँ 'परिग्रह-परिमाण' नाम अणुव्रत है । क्योंकि विना ऐसी प्रतिज्ञा किये सैकड़ों नदियोंसे न तृप्त होनेवाले समुद्रकी तरह मनुष्यको कभी सन्तोप नहीं होता । यह जानकर बुद्धिमानोंको परिग्रहका परिमाण करना ही चाहिए । ऐसा करनेसे वे जो सन्तोष लाभ करेंगे उससे उन्हें दोनों लोकमें सुख मिलेगा । पशुओंकी शक्तिका विचार न कर लोभवश उन्हें अधिक चलाना, विना जरूरतकी चीजोंका संग्रह करना, दूसरेके पास अधिक परिग्रह देखकर आश्चर्य करना, अधिक लोभ करना और शक्तिसे ज्यादा पशुओंपर बोझा लादना, ये पाँच परिग्रह-परिमाणव्रतके अतिचार हैं । इस व्रतीको इनका त्याग करना चाहिए । जो बुद्धिमान् श्रावक इस प्रकार पाँच अणुव्रतोंको प्रमाद—आलस छोड़कर प्रेमसे पालते हैं वे संसारमें श्रेष्ठसे श्रेष्ठ सम्पदा प्राप्तकर अन्तमें बड़े भारी संसार-

समुद्रको तैरकर मोक्ष जाते हैं । इस प्रकार पाँच अणुव्रतोंका स्वरूप कहा गया ।

कुछ आचार्योंके मतसे श्रावकोंके लिए 'रात्रि-भोजन-त्याग' नाम एक और छठा अणुव्रत भी है । रातको भोजन करनेसे छोटे बड़े अनेक जीव खानेमें आ जाते हैं । इस कारण रातमें भोजन करना महापापका कारण है और उससे मांसत्यागव्रतकी रक्षा भी नहीं हो सकती । इसलिए वह त्यागने योग्य है । रातमें सूरजके दर्शन नहीं होते, इस कारण उस समय स्नान करना मना किया गया । मुग्ध– असमझ पक्षीगण, जो एक एक अन्नका दाना चुगा करते हैं, रातमें नहीं खाते तब धर्मात्मा, निर्मल मनवाले जनोंको अन्य नीच जनोंकी तरह रातमें खाना उचित है क्या? रातमें भोजन करते समय यदि मक्खी खानेमें आजाय तो उल्टी हो जाती है, गलेको कष्ट पहुँचता है और यदि जूँ कहीं खानेमें आगई तो जलोदर हो जाता है । सुना जाता है कि पहले किसी ब्राह्मणने रातमें भोजन करते समय किसी शाकके धोखेमें एक मेंडकको मुँहमें डाल लिया था । तब छोटे छोटे जीवोंकी तो बात ही क्या है । इस कारण जिनप्रणीत व्रतमें प्रीति रखनेवालोंको तो रातका भोजन मन-वचन-कायसे छोड़ ही देना चाहिए । उन्हें इधर तो भोजन करना चाहिए सबेरे दो घड़ी दिन चढ़े बाद और उधर शामको दो घड़ी दिन बच रहे उसके पहले । यदि कोई चाहे तो

रातको पानी-दवा-ताम्बूल— पान-सुपारी खा सकता है, पर फल वगैरह खाना योग्य नहीं। जो धर्मात्मा रातमें चारों प्रकारके आहारका त्याग कर देते हैं उन्हें वर्षभरमें छह महीने-के उपवासका फल होता है। जो लोग रात्रिभोजनका त्याग किये हुए हैं उन्हें दिनमें भी ऐसी जगह भोजन न करना चाहिए जहाँपर अन्धेरा हो। इत्यादि बातोंपर विचार कर जो रात्रिभोजनका त्याग करते हैं वे अपने कुलरूप कमलको प्रफुल्ल करनेको सूरज-सदृश हैं। रात्रिभोजनके छोड़नेसे रूप-सुन्दरता, सुख-सम्पदा, निर्मल कीर्ति, कान्ति, शान्ति, निरोगता, पुत्र-स्त्री, धन-दौलत आदि सब बातोंका मनचाहा सुख प्राप्त होता है। और जो लोग रातमें भोजन करते हैं वे काणें, बहरे, गूँगे, दुखी, दरिद्री, लूले, लँगड़े आदि होकर नाना दुःख भोगते हैं। यह जानकर स्वर्ग-मोक्षके सुखकी प्राप्तिके लिए रात्रिभोजनका त्याग करना ही उचित है। इस प्रकार जिनप्रणीत धर्मका सार समझकर जिसके द्वारा उदार परम पदकी प्राप्ति हो सकती है वह सैकड़ों कुगतियोंका रोकनेवाला, और पुण्यका कारण रात्रि-भोजनका त्याग पवित्र हृदयवाले जनोंको करना चाहिए।

सिवा इसके श्रावकोंको ज्ञान-विनय और सन्तोषके लिए भोजनादि करते समय 'मौनव्रत' धारण करना चाहिए। यह मौनव्रत मल-मूत्र करते समय और स्नान, पूजन, भोजन, स्तवन तथा सुरतिके समय रखना चाहिए। जो कुछ भी

वाक्य-वचन बोले जाते हैं वे सब ही ज्ञानके प्रकाशक हैं, इस कारण ज्ञानका सदा विनय हो, इस अभिप्रायसे उक्त सात जगह पवित्र मौनव्रत रखना कहा गया। इस प्रकार ऋषियों द्वारा कहे गये मौनव्रतका जो पालन करते हैं वे बड़े ज्ञानी होते हैं। सरस्वतीकी उनपर कृपा होती है। वे उस कृपा और मौनव्र-तकी शुद्धिसे दिव्य स्वर, सुन्दरता और सौभाग्य प्राप्त करते हैं। निर्मल जलके सम्बन्धसे जैसे कमल होते हैं उसी प्रकार 'मौनव्रत' द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। इस मौनव्रतीको भोजनके समय चपलता, हुंकार, हँसी, लिखना, इशारा आदि बातें न करनी चाहिए। इतना और विचार रखना उचित है कि अग्निकी तरह सर्वभक्षीपनेको छोड़कर उसे बड़ी शान्तिके साथ भोजन करना चाहिए।

श्रावकोंको भोजन करते समय मूलगुणकी शुद्धिके लिए सात प्रकार अन्तराय टालने चाहिए। वे अन्तराय ये हैं—मांस, रक्त, गीला चमड़ा, हड्डी, पीव और मृत-शरीर। अर्थात् भोजन करते हुए ये वस्तुयें यदि देखनेमें आ जाय तो उसी समय भोजन छोड़ देना चाहिए। इसके सिवा त्याग किया भोजन किसीको खाते हुए देखकर, या चांडाल आदि नीच जातिके लोग देख पड़ें—उनके शब्द सुननेमें आ जायँ अथवा मल-मूत्र आदि दीख जायँ तो भी भोजन छोड़ देना चाहिए।

श्रावकोंको जल छानकर काममें लाना चाहिए। मुनि-जनोंने इसे पुण्यका कारण कहा है। जल छाननेसे जीवोंकी

दया पलती है। जल छाननेका कपड़ा अच्छा गाढ़ा होना चाहिए। छन्नेका प्रमाण शास्त्रोंमें बतलाया है कि वह छत्तीस अंगुल लम्बा और चौवीस अंगुल चौड़ा हो। इस कपड़ेको दुहरा करके पानी छानना चाहिए। जिनधर्ममें दृढ़ दयावान् पुरुषोंको जल छाननेमें कभी प्रमाद—आलस करना ठीक नहीं है। जो लोग पानी छानकर पीते हैं वे ही भव्य हैं और बुद्धिमान् हैं। नहीं तो पशुओंके समान बुद्धि-हीन उन्हें भी समझना चाहिए। छाना हुआ पानी एक मुहूर्त्त तक, प्रासुक दो पहर तक और खूब गरम किया पानी आठ पहर तक काममें लिया जा सकता है। इसके बाद उसमें फिर जीव उत्पन्न हो जाते हैं। पानी कपूर, इलायची, लौंग, आदि सुगन्धित या कसेली वस्तुओंसे प्रासुक किया जाता है। जैनधर्म तथा नीतिके मार्गमें जलका छानना धर्म वतलाया गया है और यह जगभरमें प्रसिद्ध है कि देखकर पाँव रखना चाहिए, छानकर पानी पीना चाहिए, सत्य बोलना चाहिए और पवित्र मनसे आचरण करना चाहिए। जल छानते समय इतना ध्यान और रखना चाहिए कि जिस स्थान—कुए, वावड़ी, नदी, तालाब आदिसे जल लाया गया है, और छानकर जो विनछनीका बाकी जल बचा है उसे पीछा उसी स्थानपर बड़ी सावधानीके साथ पहुँचा देना चाहिए। जल छाननेमें जो लोग सदा इतना यत्न करते हैं वे सुखी होते हैं और धर्म-प्रेमी हैं।

श्रावकोंको कन्दमूल, अचार, मक्खन, फूलका शाक, बेल-फल तूँबी, काँजी, अदरख आदि वस्तुयें न खानीं चाहिए। कारण ये अनन्तकायिक हैं। इसके सिवा तुच्छफल भी न खाना चाहिए । उससे महापाप होता है। जिन्हें जिनवाणीपर विश्वास है उन दयालु पुरुषोंको कन्दमूल तो कभी न खाना चाहिए। अचारमें त्रस जीव बड़े जल्दी उत्पन्न हो जाते हैं। इसके खानेपर, अधिक क्या कहें—उसका मांस-त्यागव्रत नष्ट ही हो जाता है। काँजीमें एकेन्द्रिय आदि अनन्त जीव पैदा हो जाते हैं। इस कारण मांसव्रतकी रक्षा करनेवालेको उसका खाना उचित नहीं। जैसा कि लिखा है—काँजीमें चार पहर बाद एकेन्द्रिय, छह पहर बाद दो इन्द्रिय, आठ पहर बाद तीन इन्द्रिय, दस पहर बाद चार इन्द्रिय और बारह पहर बाद पाँच इन्द्रिय जीव पैदा हो जाते हैं।

इसी तरह मक्खनमें भी दो मुहूर्त्त बाद एकेन्द्रिय आदि जीव उत्पन्न हो जाते हैं। इस कारण वह भी खाने योग्य नहीं है। गाय, भैंस आदि जिस दिन जने उसके पन्द्रह दिन बाद उनका दूध खाना उचित है। छाँछसे जमाये हुए दही और उसकी छाँछ दो दिनकी खाई जा सकती है, इसके बाद वह खाने योग्य नहीं रहती। इस प्रकार कन्दमूलादि जो जो वस्तुयें जिनागममें त्यागने योग्य बतलाई हैं—उन सबका उत्तम श्रावकोंको त्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार

आठ मूलगुण और पाँच अणुव्रतका वर्णन किया गया। अब गुणव्रतका वर्णन किया जाता है।

श्रुतज्ञानी आचार्योंने श्रावकोंके दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत ऐसे तीन गुणव्रत कहे हैं। मृत्युपर्यन्त सब दिशाओंकी मर्यादा कर उसके बाहर न जानेको पहला 'दिग्व्रत' नाम गुणव्रत कहते हैं। वह मर्यादा नदी, समुद्र, पर्वत, देश, गाँव, योजन आदिके द्वारा की जाती है। अर्थात् मैं इस दिशामें अमुक नदीतक और इस दिशामें अमुक दूर तक जाऊँगा-उसके आगे जानेकी मेरे प्रतिज्ञा है। इसी तरह दसों दिशाओंकी मर्यादा दिग्व्रतमें की जाती है। ऊपर, नीचे और तिर्यग्दिशामें की हुई मर्यादाको तोड़कर उसके बाहर जाना, मर्यादाकी सीमाको बढ़ालेना और मर्यादाको भूल जाना ये दिग्व्रतके पाँच अतिचार हैं। दिग्व्रतीको इन्हें छोड़ना चाहिए।

ऊपर जो दिग्व्रतकी मर्यादा की गई है उसकी सीमाको अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिदिन और कम करना वह 'देशव्रत' नाम दूसरा गुणव्रत है। यह मर्यादा भी घर, गाँव, नदी, योजन आदि द्वारा की जाती है। ऐसा परमागमरूपी नेत्रके धारक मुनिजनोंका कहना है। मर्यादाके बाहर किसीको भेजना, पुकारना, बुलाना, अपना शरीर वगैरह दिखलाकर इशारा करना और पत्थर वगैरह फैंकना ये पाँच देशव्रतके अतीचार हैं।

'अनर्थदण्ड' नाम तीसरे गुणव्रतके पाँच भेद हैं। पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमादचर्या। पशुओंको जिससे क्लेश पहुँचे ऐसा और वाणिज्य-व्यापारके आरंभका उपदेश देना 'पापोपदेश' नाम पहला 'अनर्थदण्डव्रत' है। तलवार, बन्दूक, छुरी, कटार, रस्सी, साँकल, मूसला, आग आदि हिंसाकी कारण वस्तुओंका दान देना 'हिंसादान' नाम दूसरा दुःखका कारण अनर्थदण्ड है। द्वेषभावसे शत्रुओंके वध-बन्धन-मारने तथा परस्त्री आदिके सम्बन्धमें हर समय बुरा चिंतन करते रहनेको 'अपध्यान' नाम तीसरा अनर्थदण्ड कहते हैं। राग, द्वेष, आरंभ, हिंसा, मिथ्यात्व आदिके बढ़ानेवाले शास्त्रोंका सुनना 'दुःश्रुति' नाम अनर्थदण्ड है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति इन पाँच स्थावरोंकी वृथा हिंसा करना, बिना किसी मतलबके इधर उधर भटकते फिरना, अथवा बिल्ली, कुत्ता, तोता, बन्दर, कबूतर मोर आदि जीवोंको घरमें पालना ये सब 'प्रमादचर्या' नाम पाँचवाँ पापका कारण अनर्थदण्ड कहा गया है।

काम-विकार पैदा करनेवाले बुरे—अश्लील वचन बोलना, ऐसी ही शरीरकी बुरी चेष्टा करना, बिना प्रयोजनके बहुत बोलना, खूब सिंगार वगैरह करना और बिना विचारे कोई काम करना ये पाँच अनर्थदण्डव्रतके दोष या अतीचार हैं।

श्रावकोंके चार शिक्षाव्रत हैं। सामायिक, निर्जराका कारण

प्रोषधोपवास, भोगोपभोग-परिमाण और अतिथि-संविभाग। अव इनका विस्तृत वर्णन किया जाता है।

स्वीकृत कालतक सव प्रकारके सावद्य-आरंभका त्याग करनेको धर्मज्ञ विद्वानोंने पवित्र 'सामायिकव्रत' कहा है। इसका स्पष्टार्थ यह है कि जीव मात्रमें समता भाव, संयम-इन्द्रिजय, शुद्ध भावना और आर्त्त-रौद्र भावका त्याग इतनी वातें सामायिकमें होनी चाहिए। जिनमन्दिर, घर, जंगल आदि किसी एकान्त स्थानमें स्वस्थता-निराकुलताके साथ पद्मासन वैठकर सामायिक करनी चाहिए। सामायिकमें वड़े वैराग्य भावोंसे पाँच परम गुरु—अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु-का भक्तिपूर्वक तीनों काल ध्यान करना चाहिए। जैसा कि अन्यत्र कहा है-जिनवाणी, जिनधर्म, जिनप्रतिमा, पाँच परमेष्ठी और जिनभवन इनकी नित्य त्रिकाल वन्दना करना वह सामायिक है। सामायिक करनेवालेको यह चिंतन करते रहना चाहिए कि-मैं एक हूँ, कर्मोंसे घिरा हुआ होकर भी शुद्ध-वुद्ध हूँ। संसारमें न कोई मेरा है और न मैं ही किसीका हूँ। इसके सिवा चिन्ता, आरंभ, गर्व, राग, द्वेष, क्रोध आदिके विचारोंका त्याग कर देना चाहिए। सामायिक करते हुए यदि जाड़ा, घाम आदिका कष्ट होने लगे, डाँस-मच्छर उपद्रव करें तो इन सव कष्टोंको शान्तिके साथ सह लेना चाहिए। जिनवाणीके ज्ञानका यही फल होना चाहिए कि उस समय धीरता न छूटे। सामायिकमें

बैठते समय चोटी बाँध लेनी चाहिए; मुट्ठी बंदकर रखना चाहिए । पद्मासन माँड़कर हाथपर हाथ धरकर बैठना चाहिए और वस्त्र वगैरहको अच्छी तरह चारों ओरसे बाँधकर—समेट कर बैठना चाहिए । यह सामायिक ऊपर कहे गये पाँच व्रतोंको पूर्णतापर पहुँचानेवाला, धर्मका कारण और दुःखका नाश करनेवाला है । इस कारण सामायिक तो नित्य ही करना चाहिए । पूर्वाचार्योंके कहे अनुसार जो भव्यजन त्रिशुद्धि पूर्वक इस भव-भ्रमणको मिटानेवाले सामायिकव्रतको करते हैं वे जिन-भक्ति-रत सत्पुरुष स्वर्ग सुख भोगकर अन्तमें मोक्ष-सुखके पात्र होते हैं । मन-वचन-कायके योगों द्वारा बुरा चिंतन करना, अनादर करना और सामायिक करना भूल जाना ये पाँच सामायिक व्रतके अतीचार हैं ।

श्रावकोंको अष्टमी और चतुर्दशीके दिन प्रोषधव्रत करना चाहिए । यह कर्म-निर्जराका कारण है । प्रोषधके दिन अन्न-पान-खाद्य-लेह्य इन चार प्रकारके आहारका त्याग करना चाहिए । उपवासके पहले दिन एक बार भोजन कर उपवास करना और पारणाके दिन भी एकवार भोजन करना यह उत्कृष्ट 'प्रोषधव्रत' है । इस दिन खाँड़ना, पीसना, चूल्हा जलाना, पानी भरना और झाड़ू लगाना ये पाँच पाप न करना चाहिए । इसके सिवा नहाना-धोना, तमाखू सूँघना, आँखोंमें काजल या सुरमा लगाना, शरीर सिंगारना आदि करना भी ठीक नहीं है । किन्तु देव-गुरु-शास्त्रकी सेवा-पूजा,

स्वाध्याय, ध्यान आदिमें वह दिन शान्तिसे बिताना चाहिए। इस दिन स्वयं कर्णाञ्जलि द्वारा धर्मामृत पीना चाहिए और अन्य भव्य-जनको पिलाना चाहिए। इस प्रकार जो भव्य प्रोषधव्रत करता है उसके कर्मोंकी निर्जरा होना निश्चित है। किसी चीजको बिना देखे-भालकर उठाना और रखना, इसीतरह बिछौना बिना देख उठाना और रखना, प्रोपधव्रतमें अनादर करना और उसे भूल जाना ये पाँच प्रोषधव्रतके दोष हैं।

भोगोपभोग परिमाण-व्रतमें दो प्रकार नियम किया जाता है। एक तो यमरूप और दूसरा नियमरूप। यम जीवन पर्यन्त होता है। औरं नियम कालकी मर्यादाको लेकर किया जाता है। 'भोग' वह है जो एकवार ही भोगनेमें आवे, जैसे भोजन आदि खाने-पीनेकी वस्तुयें। और जो वार बार भोगनेमें आवे वह 'उपभोग' है। वस्त्र, भूषण, वाहन, शय्या आदि। इन भोगोपभोगवस्तुओंकी जो संख्याकी जाती है वह 'भोगोपभोगपरिमाण, नाम तीसरा शिक्षाव्रत है। भोगोपभोगकी वस्तुओंमें अत्यन्त आदर करना, बार बार उन्हें याद करना, उनमें अत्यन्त लोलुप होना, भोगी हुई बातोंका अनुभव करना और अधिक तृष्णा रखना ये पाँच भोगोपभोग परिमाणव्रतके दोष हैं।

'संविभाग' नाम है त्यागका और त्याग शब्दका अर्थ है दान। वह दान अतिथि--सुपात्रको यथाविधि देना, उसे 'अतिथि-संविभाग' नाम चौथा शिक्षाव्रत कहते हैं। ज्ञानी मुनियोंने

उस पात्रके—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ये तीन भेद किये हैं । पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समितिको निरन्तर पालनेवाले मुनि उत्तम-पात्र हैं । ये बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ महापात्र संसार-समुद्रसे पार उतारनेके लिए जहाज-समान स्वपर-तारक हैं । सम्यक्त्वसहित बारह व्रतोंको धारण करनेवाला श्रावक मध्यम-पात्र कहा गया है । और जो केवल सम्यक्त्वका धारक है वह जिनभक्ति-रत सम्यग्दृष्टि जघन्य-पात्र है । इन तीनों प्रकारके पात्रोंको यथाविधि नित्य चार प्रकारका दान दयालुओंको देना चाहिए । पूर्वाचार्योंने जो विधि, दाताके गुण और दानके भेद बतलाये हैं उनका थोड़ेमें यहाँ भी वर्णन किया जाता है । पुण्यसे महापात्र मुनि यदि अपने घर आहारके लिए आ-जायँ तो ये नौ विधि करना चाहिए । आदरसे उन्हें घरमें ले जाना, ऊँचे स्थानपर बैठाना, उनके पाँव पखारना और पूजा करना नमस्कार करना और मन-वचन-काय तथा भोजनकी शुद्धि रखना । श्रद्धा, भक्ति, निर्लोभता, दया, शक्ति, क्षमा और विज्ञान ये सात दाताके गुण हैं । पहले यह भावना हो कि 'पात्र मेरे घरपर आवे,' और जब मुनि सामने आ-जायँ तब प्राप्त निधिकी तरह खुश होकर उनके विषयमें श्रद्धा करे । मुनिका जबतक आहार समाप्त न हो तबतक बड़े धर्मप्रेमसे उनकी सेवा करता हुआ उनके पास ही खड़ा रहे, यह दाताका दूसरा 'भक्ति' नाम गुण है । इस मुनिदानके फलसे मुझे

राज्य-वैभव या और सुख-सम्पत्ति प्राप्त हो—इस प्रकारकी इच्छाका न रहना दाताका तीसरा 'निर्लोभता' गुण है। किसी कार्यके लिए घरमें जाना पड़े तो जीव देखकर चलना चाहिए— यह 'दया' नामका चौथा गुण है। यदि आहारमें कुछ अधिक भी खर्च हो जाय तो दुखी न हो— समुद्र-समान गंभीर दाताका यह 'शक्ति' नाम पाँचवाँ गुण है। घरमें बाल-बच्चे, स्त्री आदिसे कोई अपराध बन पड़े तो उन-पर गुस्सा न हो—यह 'क्षमा' छटा गुण है। पात्र, अपात्र-की विशेषताको जानता हो, गुण दोषोंका विचार करने-वाला हो और देने न देने योग्य वस्तुका जानकार हो—दाताका यह सातवाँ 'ज्ञान' नाम गुण है। जैसा कि, दाताके ज्ञान गुणके सम्बन्धमें अन्यत्र लिखा है—
"मुनिको ऐसा आहार देना योग्य नहीं—जिसका—वर्ण औरका और हो गया हो, बे-स्वाद हो, विंधा हो, तकलीफ पहुँचानेवाला हो, बहुत पक गया हो, रोगका कारण हो, दूसरेका झूठा हो, नीच लोगोंके योग्य हो, किसी दूसरेके अर्थ बनाया गया हो, निन्द्य हो, दुर्जनोंका छुआ हो, यक्ष-देवी-देवताका लाया हुआ हो, दूसरे गाँवसे आया हुआ हो, मंत्र-प्रयोगसे मँगाया गया हो, भेंटमें आया हुआ हो, बजा-रसे खरीदा गया हो, प्रकृतिके विरुद्ध हो और बे-समयका या बिना ऋतुका हो।"

जिनागममें—आहार, औषध, शास्त्र और अभय ये चार ... दान कहे गये हैं। जो श्रावक नौ-भक्ति और सात

गुण युक्त होकर शक्तिपूर्वक सुपात्रके लिए अन्नदान करता है वह जन्म जन्ममें पुण्यका पात्र और सुखी होता है। कुगतिमें वह कभी नहीं जाता। सुपात्रदानके फलसे—धन-दौलत, रूप-सौभाग्य प्राप्त होता है। कीर्ति सारे लोकमें फैल जाती है। रोग, शोक आदि कोई कष्ट नहीं होता। ऐसे लोग बड़े कुलमें पैदा होते हैं, बड़े पराक्रमी होते हैं और राज्य-वैभव प्राप्त करते हैं। स्वर्गादिकका सुख प्राप्त करनेवाले अन्नदानीके सम्बन्धमें क्या कहें, वह तो ऐसा भाग्यशाली है जो स्वयं तीर्थंकर भी उसके घरपर आते हैं।

जो नाना प्रकारके रोगोंका कष्ट उठा रहे हैं, ऐसे दुखी जीवोंको जीवदान-सदृश श्रेष्ठ औषधिदान देना चाहिए। जिसने तीन प्रकारके पात्रोंको श्रेष्ठ औषधिदान दिया वह दाता जन्म जन्ममें फिर निरोग होता है। रोगसे शरीर नष्ट होता है, शरीर नष्ट होनेपर तप नहीं बन सकता, और जिनप्रणीत तप किये बिना मोक्षका सुख प्राप्त नहीं होता। इस कारण भव्यजनोंको हर प्रयत्न द्वारा धर्मप्रेमसे साधर्मियोंको औषधिदान देना उचित है।

तीसरा शास्त्रदान है। श्रावकोंको चाहिए कि वे सुपात्रोंको त्रिलोक-पूजित जिनप्रणीत शास्त्रोंका दान दें। यह दान बड़ा सुखका कारण है। इस दानके फलसे दाता परजन्ममें सब शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करता है। उसकी कीर्ति त्रिलोकमें फैल जाती है। 'ज्ञान' यह मनुष्योंका उत्कृष्ट नेत्र है, तब जिसने

सुपात्रको यह दान दिया उसके पुण्यका क्या कहना । इस कारण जिनप्रणीत शास्त्र लिखकर या लिखवाकर भक्तिसहित पात्रको भेंट करना चाहिए। यह दान स्वर्ग-मोक्षके सुखका कारण है । अपनेको श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त हो, इसलिए श्रावकोंको संसार-समुद्रसे पार पहुँचानेवाला यह शास्त्रदान देना ही चाहिए ।

जो भयसे डरते हैं, और इसी कारण दुखी हैं उनके लिए श्रावकोंको अभयदान देना चाहिए । यह दान बड़ा सुखका कारण है । जिसने जीवोंको अभयदान देकर निर्भय किया कहना चाहिए कि उसने उसके प्राणोंको बचा लिया । इस दानसे दाता त्रिभुवनमें निर्भय, शूरवीर, धीर, गंभीर, निर्मल-हृदय और बुद्धिमान् होता है । बाकीके जितने भी दान दिये जाते हैं, देखा जाय तो वे सब दयाके लिए हैं । तब जिसने अभयदान दिया उसने तो साक्षात् ही दया की । यह जान-कर सुपात्रके लिए अभयदान देना चाहिए । सिवा इनके अन्य जनके लिए भी यथायोग्य अभयदान देना योग्य है । इस प्रकार त्रिविध पात्रोंको जिसने चारों प्रकारका दान दिया कहना चाहिए कि उसने धर्म-वृक्षको सींच दिया । पात्र-दानके सम्बन्धमें लिखा है—जो आकाशमें नक्षत्रोंकी संख्या और समुद्रमें कितने चुल्लु पानी है—यह बतला सकता है और जो जीवोंके भवोंकी संख्या भी कह सकता है, पर वह यह बतलावे कि सत्पात्रके लिए जो धन व्यय किया गया उसके पुण्यका परिमाण कितना है ?

जिसने जैनधर्मका आश्रय ले रक्खा हो, उसका भी पोषण श्रावकोंको करना चाहिए। और जो जिनधर्मसे सर्वथा ही विपरीत हो तो उसे दान देना विवेकियोंको उचित नहीं। अन्यत्र लिखा है—मिथ्यादृष्टियोंको दान देनेवाले दाताने मिथ्यात्व ही बढ़ाया। क्योंकि साँपको पिलाया हुआ दूध विष ही बढ़ाता है। सुपात्र और अपात्रके दानमें बड़ा ही भेद है। सुपात्र स्व-परको तारनेवाले जहाजके समान है और अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि कुपात्र स्व-परको डुबानेवाले पत्थरके समान है। अन्य शास्त्रमें पात्रापात्रोंका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—'अनगार—मुनि उत्कृष्ट-पात्र हैं, अणुव्रती मध्यम-पात्र हैं, अव्रती सम्यग्दृष्टि जघन्य-पात्र है और जिसके न व्रत है और न सम्यक्त्व है वह अपात्र है। निर्मल पानी जैसे वृक्षोंके भेदसे नाना रूपमें परिणत होता है उसी तरह पात्र-अपात्रको दिये आहारका परिणमन होता है। उर्वरा पृथ्वीमें बोये हुए बीजकी तरह पात्रदान बहुत फलका देनेवाला होता है। वही बीज उर्वरा पृथ्वीमें न बोया जाकर यदि खारयुक्त जमीनमें बो-दिया जाय तो वृथा जाता है। ठीक इसी तरह कुपात्रको दिया दान दाताको कुछ लाभ नहीं पहुचा सकता। इत्यादि भेदोंका जाननेवाला जो दाता नित्य सुपात्रको भक्तिसहित दान देता है वही बुद्धिमान् दाता है। इस प्रकार सुपात्र-दानके फलसे भव्य जन मन-चाही धन-दौलतें, सोना-चाँदी, मणि-माणिक,

स्वर्गादिका सुख, उच्च कुल, परिजन-स्त्री, पुत्र आदि प्राप्त कर अन्तमें मोक्ष जाते हैं। यह जानकर धर्मात्माओंको सुपात्रके लिए भक्तिपूर्वक चार प्रकारका दान निरन्तर देना चाहिए। ये चारों ही दान श्रेष्ठ सुखोंके कारण हैं। दान योग्य वस्तुको सचित्त-हरे पत्तोंमें रख देना, उनसे ढक देना, दान करना भूल जाना, अनादर करना और किसीको दान करते देखकर मत्सर करना, ये पाँच 'अतिथिसंविभाग' नाम चौथे शिक्षाव्रतके दोष हैं। इस प्रकार जिनप्रणीत धर्म-कर्म-रत भव्य श्रावक अप्रमादी होकर खुश दिलसे अपनी श्रद्धा-भक्तिके अनुसार श्रेष्ठ पात्रोंको भोजन आदि चार प्रकारका उत्तम दान देकर दिव्य श्रीको प्राप्त करें।

जिनपूजा दोनों लोकमें सुख देनेवाली है। श्रावकोंको वह सदा करनी चाहिए। यदि अपनी शक्ति हो तो एक सुन्दर जिनभवन बनवाकर उसे धुजा वगैरहसे मंडित करना चाहिए। इसके बाद सोने-रत्न आदिकी पाप नाश करनेवाली श्रेष्ठ प्रतिमायें बनवाकर- उनकी विधिसहित बड़े ठाठ-बाटसे पञ्चकल्याण प्रतिष्ठा कर उन्हें मन्दिरमें विराजमान करना चाहिए। जो भव्य श्रावक पवित्र मनसे ऐसा करते हैं वे मोक्षरूपी उत्कृष्ट लक्ष्मीको प्राप्त करते हैं। इस विषयमें लिखा है कि "जो धर्मात्मा पुरुष भक्तिवश हो कुँदरूके पत्ते बराबर तो जिनभवन और जौके बराबर प्रतिमा बनवाते हैं उनके पुण्यका भी वर्णन करनेको सर-

स्वती समर्थ नहीं तब जो लोग जिनभवन और जिनप्रतिमा ये दोनों ही बनवाते हैं— उनके पुण्यका तो कहना ही क्या ?"

यदि थोड़ेमें कहा जाय तो उन निकट-भव्य, जिन-भक्ति-रत लोगोंके लिए इन्द्र-चक्रवर्त्तीकी लक्ष्मी कुछ दुर्लभ नहीं है। लिखा है— "एक ही जिनभक्ति दुर्गतिके रोकने, पुण्यके प्राप्त कराने और मुक्तिश्रीके देनेको समर्थ है। जो लोग जिन-प्रतिमाका पंचामृतसे अभिषेक करते हैं उन्हें मेरु पर्वतपर देवतागण स्नान कराते हैं और जो जल आदि आठ द्रव्योंसे जिनको सदा पूजते हैं वे देवतों द्वारा पूजे जाते हैं। जिनभगवान् इन्द्र, नागेन्द्र, विद्या-धर, चक्रवर्ती राजे-महाराजे आदि सभी महापुरुषों द्वारा सदा पूजे जाते हैं और त्रिभुवनका हित करनेवाले हैं, उन केवलज्ञानी जिनकी पूजा वगैरह भले ही करो, पर उससे केवली जिनको कुछ लाभ नहीं; किन्तु लाभ है तो वह पूजन करनेवाले भव्य श्रावकोंको है। इस कारण धर्मतत्वके जानकार जो सुखार्थी जन स्वर्ग-मोक्षके कारण जिनचरणोंकी भक्तिसे पूजा करते हैं वे सब जगमें पूज्य होकर फिर केवलज्ञानरूपी साम्राज्यके स्वामी बनते हैं।

इस प्रकार जिनपूजन समाप्त कर फिर उन्हें जिनस्तुति पढ़नी चाहिए। जिनस्तुति भी पापका नाश करनेवाली है। इसके बाद उन्हें मन-वचन-काय-की शुद्धिसे पाँच परमे-

ष्टीका जप करना चाहिए। जप सब दुर्गतिका नाश करनेवाला और त्रिभुवनमें एक श्रेष्ठ वस्तु है। यह परमेष्ठि-वाचक पैंतीस अक्षरोंका नमस्कार-मंत्र सब दुःखोंका क्षय करनेवाला है। इस महामंत्रके प्रभावसे तिर्यंच भी स्वर्गको गये तब इसे अच्छी तरह जपनेंवाले मनुष्योंका तो क्या कहना ? एकीभाव स्तोत्रमें लिखा है—" भगवन्, जीवन्धर कुमारने मरते हुए कुत्तेको आपके नमस्काररूप महामंत्रका उपदेश किया था—वह मंत्र उसे सुनाया था। उसके प्रभावसे वह रात-दिन पाप करनेवाला कुत्ता भी स्वर्ग गया; तब प्रभो, जो इस नमस्कारमंत्रका मणिमालासे जाप करे, वह यदि इन्द्रके वैभवको प्राप्त हो तो उसमें क्या कोई सन्देह है ? " इस मंत्रके सिवा गुरुके उपदेशसे अन्य सोलह, छह, पाँच, चार, दो और एक आदि परमेष्ठि-वाचक मंत्रोंका भी जाप करना चाहिए। जाप किन किन चीजोंसे करना चाहिए—इसके लिए एक जगह लिखा है—पालथी लगाकर फूल, उँगलीके पेरमें, कमलगट्टे या स्वर्ण, रत्न, मोती आदिकी माला द्वारा जाप करनी चाहिए। जाप करते समय इतना ध्यान रहना चाहिए कि माला हिले-डुले नहीं। जैसे ही जिनकी पूजा की जाती है उसी तरह श्रावकोंको सिद्ध भगवान्, जिनवाणी और गुरुकी भी पूजा करनी उचित है। इनकी पूजा भी दोनों लोकमें सुखकी देनेवाली है। इस पूजासे भव्यजन पूज्यतम होते हैं। सुखार्थी जनको पूज्य-पूजाका उल्लंघन करना ठीक नहीं।

भरतचक्रवर्त्ती आदि अनेक महा पुरुषोंने जिनपूजाका श्रेष्ठ-से श्रेष्ठ फल प्राप्त किया है, उसे जिनभगवान्के बिना और कौन वर्णन कर सकता है । पर पूजाके फलके उदाहरणमें मेंडक उल्लेख विशेष कर किया जाता है । जैसा कि समन्तभद्र स्वामीने रत्नकरंडमें लिखा है—"राजगृह नगरमें एक आनन्दसे मस्त हुए मेंडकने केवल एक फूलसे जिनचरणकी पूजाका श्रेष्ठ फल महात्मा लोगोंसे कहा था । " अर्थात् वह उस पूजाके फलसे स्वर्ग गया । इसकी कथा 'आराधनाकथा-कोश' 'पुण्याश्रव' आदि ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है । इसी तरह श्रावकको जिनागमप्रणीत सात क्षेत्रोंमें भी धनरूपी बीज बोना चाहिए । इससे भी सैकड़ों सुख प्राप्त होते हैं । लिखा है कि—"जो जिनभवन, जिनविम्व, जिनवाणी और चार संघ इन सात क्षेत्रोंमें अपने धनरूपी बीजको बोता है वह बड़ा पुण्यात्मा है ।

इस प्रकार जिनभगवान् पुण्यके कारण, सुरासुर-पूजित और संसार-सागरसे पार करनेवाले हैं, उनकी जो भव्य श्रावक मन-वचन-कायसे पूजा करते हैं वे स्वर्गादिकका श्रेष्ठ सुख प्राप्तकर बाद कभी नाश न होनेवाला मोक्षका सुख भोगते हैं । तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन दोनोंको मिलाकर पंडित लोग श्रावकोंके 'शीलसप्तक' भी कहते हैं । पाँच अणुव्रत और शीलसप्तक इस प्रकार मुनिजनोंने गृहस्थोंके शुभ बारह व्रत कहे हैं । इनका जो लोग नित्य पालन करते हैं वे पहले इन्द्रादिककी सम्पदाका सुख भोगकर फिर मोक्ष चले जाते हैं ।

इन बारह व्रतोंके सिवाय पूर्वाचार्योंने श्रावकोंके लिए ग्यारह प्रतिमायें और उपदेश की हैं। वे सब श्रेष्ठ सुखोंकी देनेवाली हैं। उनके नाम ये हैं, १—दर्शनप्रतिमा, २—व्रत प्रतिमा, ३—सामायिकप्रतिमा, ४—प्रोषधोपवासप्रतिमा, ५—सचित्तत्यागप्रतिमा, ६—रात्रिभोजनत्यागप्रतिमा, ७—ब्रह्मचर्यप्रतिमा, ८—आरंभत्यागप्रतिमा, ९—परिग्रहत्यागप्रतिमा, १०—अनुमतित्यागप्रतिमा और ११—उद्दिष्टत्यागप्रतिमा। इन ग्यारहों प्रतिमाओंका आगमानुसार संक्षेपमें स्वरूप लिखा जाता है। जूआ खेलना, मांस खाना, शराब पीना, शिकार करना, वेश्या सेवन, परस्त्री सेवन और चोरी करना—ये सात व्यसन हैं, इनका त्यागकर जिसने आठ मूलगुण ग्रहण कर लिये हैं, जो सदा जिनभक्तिमें रत और शुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक है वह जिनधर्मप्रेमी दर्शनप्रतिमाधारी श्रावक कहा गया है।

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रतोंको पालन करनेवाला व्रतप्रतिमाधारी श्रावक है

मन-वचन-कायकी शुद्धिपूर्वक जो त्रिकाल नियमपूर्वक सामायिक करता है वह सामायिक नाम तीसरी प्रतिमाका धारक है।

अष्टमी और चतुर्दशीको नियमसे प्रोषधोपवास करनेवाला प्रोषधोपवास नाम चौथी प्रतिमाधारी श्रावक है।

जो सचित्त फल, जल आदिको उपयोगमें नहीं लाता वह दयालु पाँचवीं सचित्तत्यागप्रतिमाधारी कहा गया है।

अन्न, पान, स्वाद्य और लेह्य इन चार प्रकारके आहारोंको जो रातमें नहीं खाता वह रात्रिभोजत्याग नाम छटी प्रतिमाधारी श्रावक है।

विषयोंसे विरक्त होकर जो मन-वचन-का ...यको पालता है—वह सातवीं ब्रह्मचर्य नाम प्रतिमा...रक श्रावक कहा गया है।

नौकरी-चाकरी, खेती, वाणिज्य-व्यापारादि सम्बन्धि सब प्रकारका आरंभ त्याग कर देता है—वह जीवों... प्रतिपालक आठवीं आरंभत्यागप्रतिमाका धारक है। कोई महान

दस प्रकार ... और चौदह प्रकार अभ्यन्तर * इस प्रकार जो चौवीस तरहके परिग्रहका त्यागकर देता है—वह महा-सन्तोषी नौवीं परिग्रहत्यागप्रतिमाधारी श्रावक है। इनमें बाह्य परिग्रह-त्यागी तो बहुत हो जाते हैं, पर अभ्यंतर परि-ग्रहत्यागी बड़ा ही दुर्लभ है।

ब्याह आदि घर-गिरिस्तीके सब सावद्य—पाप कार्योंमें जो किसी प्रकारकी सम्मति नहीं देता वह—अनुमतित्याग नाम दसवीं प्रतिमाधारी श्रावक है।

---

* क्षेत्र, वस्तु—घर वगैरह, धन, धान्य, द्विपद—दास-दासी, गाय भैंस आदि चौपदे, गाड़ी आदि वाहन, शय्यासन, कुप्य—कपास आदि और भाण्ड—ताँबा आदिके वर्तन। ये दस बाह्य परिग्रह हैं।

* मिथ्यात्व, वेद—स्त्री-पुरुष-नपुंसक, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, अनन्तानुवन्धि—क्रोध-मान-माया-लोभ, और राग, द्वेष ये चौदह अभ्य-न्तर परिग्रह हैं।

जो घरका त्यागकर वन चला जाय और वहाँ ब्रह्मवेष धारण कर मुनिसंघमें रहे, वह ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक है। यह अपने उद्देश्यसे वने हुए भोजनको नहीं करता-अत [illegible] ष्ट-त्यागी कहते हैं। इस श्रावकके दो भेद हैं। एक-[illegible] स्त्रका रखनेवाला और दूसरा-केवल लँगोट मात्रका धारक। इनमें जो दूसरा श्रावक है वह धीर रातमें सदा प्रतिमा-योग नियमपूर्वक धरता है, हाथोंसे वालोंको [illegible] भी रखता है, और बैठकर, पर पाणिपात्रमें भोजन क[illegible] श्रावक बड़ा पवित्र और श्रेष्ठ ब्रह्म-चारी है और श्रावकोंके घरमें कृत-कारित-अनुमोदना रहित एकवार भोजन करता है। त्रिकालयोगका नियम, वीरचर्या, सिद्धान्त-अङ्ग-पूर्वादि ग्रन्थोंका अध्ययन और सूर्यप्रतिमा-योग इन बातोंको यह श्रावक नहीं कर सकता।

इन ग्यारह श्रावकोंमें आदिके छह जघन्य श्रावक हैं, बादके तीन मध्यम श्रावक हैं और अन्तके दो उत्कृष्ट श्रावक कहे गये हैं। पाप जीवका वैरी है और धर्म मित्र है, इसे जो जानता है वही ज्ञाता है-आत्महितका जाननेवाला है। जो भव्य यह जानकर, कि जैनधर्म बड़ा ही पवित्र और त्रिभुवनको पवित्र करनेवाला धर्म है, उसका सम्यक्त्व-सहित पालन करता है-वह त्रिलोक-कमलको प्रफुल्ल करने-वाला सूरज है-सर्व श्रेष्ठ है, त्रिलोक-पूजित है। वह अन्तमें केवलज्ञानी होकर मोक्षलाभ करता है। इस प्रकार जिन

शास्त्र-निपुण पवित्र मुनिजनोंने सम्यक्त्वसहित जिन निर्मल ग्यारह प्रतिमाओंका वर्णन किया उनका जो जन पालन करते हैं वे दिव्य स्वर्गीय-सुख भोगकर—देव-पूज्य होकर फिर मोक्ष जाते हैं।

इन सब व्रतोंके बाद एक और व्रत है। उसका नाम 'सल्लेखनाव्रत' है। जिनप्रणीत तत्वका मर्म जाननेवाले धीर-वीर मनके पुरुषोंको अन्तसमय इस व्रतको अवश्य करना चाहिए। पूर्वाचार्योंने इस व्रतकी जैसी विधि कही है वह थोड़ेमें यहाँ लिखी जाती है। कोई महान् उपसर्ग आ-जाय, दुर्भिक्ष पड़ जाय, कोई भयानक रोग वगैरह हो जाय जिसका कि कोई उपाय ही न बन सके और या बुढ़ापा आजाय उस समय ऐसे लोगोंको संन्यास—सल्लेखना धारण कर लेना उचित है। इसका फल मुनिजनोंने दान-पूजा-तप-शील आदि कहा है। इसी कारण सत्पुरुष सल्लेखनाको करते हैं। जो जिनधर्मके तत्वोंके जाननेवाले इस सल्लेखना व्रतको ग्रहण करें उन्हें पहले मन-वचन-कायकी पवित्रतासे सब प्रकारका परिग्रह त्यागकर रागद्वेषादिकको भी छोड़ देना चाहिए। इतना करके और क्षमा-वचनोंसे सबको सन्तुष्ट कर उन्हें गुरुके पास जाना चाहिए। वहाँ गुरुके सामने बड़ी भक्तिसे अपने सब पापोंकी आलोचना—निन्दा कर फिर उन्हें सल्लेखना-महाव्रत ग्रहण करना उचित है। शोक, भय, गर्व, तथा जीवित-मरणकी चिन्ता आदिको छोड़कर फिर उन्हें

केवल कर्मक्षयकी चिन्ता करनी चाहिए। इसके बाद उन सन्तोषी और जिनधर्म-धीर पुरुषोंको धीरे धीरे चार प्रकारका आहार परित्याग कर पञ्चनमस्कारमंत्रके स्मरण पूर्वक अपने प्राण छोड़ने चाहिए--सब प्रकारकी इच्छा-आशा छोड़कर केवल जिनभगवान्के ही ध्यानमें उन्हें रत हो जाना चाहिए। मौत आनेपर नियमसे मरना तो होगा ही, फिर क्यों न अच्छे पुरुषोंको सुखका कारण संन्यास ग्रहण करना चाहिए? इस प्रकार जो बुद्धिमान् संन्यास ग्रहण करते हैं वे स्वर्गोंमें जाते हैं। वहाँ वे अणिमादि आठ ऋद्धियाँ, दिव्य रूप-सुन्दरता और देवाङ्गना आदि श्रेष्ठ मनोमोहक वस्तुयें प्राप्तकर चिरकालतक सुख भोगते हैं। वहाँसे फिर उत्कृष्ट मनुष्य जन्म लाभकर अन्तमें रत्नत्रयकी आराधना कर मोक्ष चले जाते हैं। वहाँ सिद्धरूपमें वे कर्मरहित होकर निराबाध, निर्मल आठ गुण और अनन्तसुख-सहित अनन्तकाल रहते हैं। इस अनन्त कालमें भी उन सिद्धोंमें कोई प्रकारका परिवर्तन या सुखकी कमी नहीं हो पाती। वे सदा फिर उसी अवस्थामें रहते हैं। यह सब एक जिनधर्मका ही प्रभाव है। इस कारण सबको अपनी बुद्धि जिनधर्ममें दृढ़ करनी चाहिए। जीने और मरनेकी इच्छा, भय, मित्रोंकी चाह और निदान-- आगामी विषयभोगोंकी चाह, ये पाँच सल्लेखना व्रतके दोष हैं। इस प्रकार मुनि द्वारा धर्मका पवित्र उपदेश सुनकर सब सभा

सूर्योदयसे प्रफुल्ल हुई कमलिनीकी तरह आनन्दके मारे फूल गई।

इस प्रकार सुरासुर-पूजित नेमिप्रभुने त्रिभुवन-हितकारी, स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाले रत्नत्रय-स्वरूप पवित्र धर्मका उपदेश किया। उसे सुनकर भव्यजन नमस्कार कर भव-समुद्रसे पार होनेके लिए नेमिजिनकी शरण गये।

इति एकादशः सर्गः।

बारहवाँ अध्याय।

कृष्णको नेमिजिनका तत्वोपदेश।

जगद्गुरु श्रीनेमिजिन केवलज्ञानसे सूरजकी तरह प्रकाशित हो रहे थे। बारह गणधर उनकी सेवामें मौजूद थे। त्रिभुवनके महा पुरुषों द्वारा उन्हें सम्मान प्राप्त था। सब विद्याओंके वे स्वामी कहलाते थे। लोकालोकको वे प्रकाशित कर रहे थे। सब तत्वोंके रचयिता वे ही कहे जाते थे। सामान्य जनकी तरह वे आहारादि दोषोंसे रहित थे। उनपर कोई उपसर्ग न होता था। चारों ओर उनके चार मुँह थे तब भी उपदेश वे सत्यका ही करते थे। उन्हें स्वभावसे ही ऐसा अतिशय प्राप्त था जो वे स्वयं तथा उनके बारह गणधरं भी आकाशहीमें चलते थे। उनके द्वारा किसी जीवको कष्ट न पहुँचता था। उनके प्रभावसे चारों दिशाओंमें कोई दो-दोसौ कोस तक दुर्भिक्ष-महामारी आदि न पड़कर पृथ्वी पवित्र और बड़ी खुश रहती थी। भगवान्के दिव्य शरीरका बड़ा ही प्रभाव था—उसकी छाया न पड़ती थी। उनके नख-केश न बढ़ते थे और पलक न गिरते थे। भगवान् घातिकर्मोंके क्षयसे उत्पन्न दस अतिशयोंसे शोभित थे। इस समय इन्द्रने आकर लोगोंके अभ्युदयकी इच्छासे भगवान्से प्रार्थना की—“ प्रभो, विहार कीजिए और उत्सुक भव्यजनोंको प्रिय

धर्मामृत पिलाकर तृप्त कीजिए।" इन्द्रकी प्रार्थना स्वीकार हुई। यद्यपि भगवान् कृतार्थ थे—उन्हें कुछ करना बाकी न रहा था, तथापि भव्योंके पुण्यसे उन्होंने विहार किया। भगवान्के इस विहारोत्सवके कारण देवतोंमें खुशीके मारे बड़ी हल-चल मच गई। वे लहराते हुए समुद्रसे जान पड़ने लगे। उनसे सब आकाश भर गया। आनन्दसे उछल उछल कर वे भगवान्का जयजयकार कर रहे थे। उस समय देवतोंके अनन्त विमानोंसे आकाश सत्पुरुषोंके भरे-पुरे कुलके समान बिलकुल भी खाली न रह गया। देव-देवाङ्गनागण 'जय' 'जीव' 'नन्द' आदि कहकर आकाशसे भगवान्पर फूलोंकी वरसा कर रहे थे। उस समय इन्द्रकी आज्ञासे देवतोंने अपने दिव्य प्रभावसे निराधार आकाशमें चलते हुए जगद्गुरुके पाँवोंके नीचे बड़ी भक्तिसे सोनेके कमल रचे। वे कमल बड़े ही कोमल और खिले हुए थे। उनकी सुगन्धसे दसों दिशायें महक रही थीं। उनमें रत्नकी कर्णिकायें-कलियाँ बड़ी चमक रही थीं। पद्मरागमणिकी केसर, रत्नकी कली-युक्त उन हजार दलवाले दिव्य सुवर्णमय कमलोंपर चलते हुए नेमिप्रभु आकाशमें कोई नवीन ही शरदृतुके चन्द्रमाके सदृश जान पड़ते थे। उस समय भगवान्के चरण-स्पर्शसे जो उन कमलोंसे मकरंद—धूल गिरती जाती थी—जान पड़ता था कि वे दान करते हुए जा रहे हैं। इस प्रकार सात कमल भगवान्के पीछे और सात आगे हर समय शोभित रहते थे। इनके सिवा भगवान्के

पार्श्वभागके जो कमल थे वे उनके विहार समय आकाश-रूपी आँगनमें निधि-सदृश जान पड़ते थे। इन कमलोंसे वह आकाश एक सुन्दर सरोवर-सदृश शोभता था। और देव-तोंकी कान्ति उसमें पानीकी कमीको पूरा करती थी। इस प्रकार वैभवके साथ भगवान् विहार करते जाते थे। उनके आगे बजते हुए नगाड़ोंकी जोरकी आवाज सब दिशाओंको गुँजा रही थी और हवासे हिलती हुई उनकी धुजायें धर्मोपदेश सुननेके लिए लोगोंको प्रेमसे बुला रही हों-ऐसी शोभित हुई थीं। उनके आगे हजार आरेवाला, सूर्य-सदृश चलता हुआ श्रेष्ठ धर्म-चक्र बड़ी ही सुन्दरता धारण कर रहा था। वह धर्मचक्र अपने चमकते हुए दिव्य तेजसे मानों सारे जगत्‌को धर्ममय बना-नेकी इच्छासे ही प्रभुके आगे आगे जा रहा था। भगवान्‌की मागधी-भाषा उनकी त्रिभुवनके जीवोंके साथ मित्रता सूचि-त कर रही थी। भगवान् भव्यजनरूपी कमलोंको प्रफुल्ल करते हुए आकाशमें कोई अद्वितीय सूरजसे शोभा पाते थे। उस समय आकाशमें देवतोंकी यह ध्वनि सब ओर फैल रही थी कि आइए! आइए!!—आनन्दित होकर एकको एक पुकार रहा था। देवतोंको जो खुशी हुई—वह उनके हृदयमें न समा सकी। इस कारण प्रभुके आगे कितने ही देवता नाच रहे थे, कितने गा रहे थे और कितने उछल-कूद मचा रहे थे। प्रभुकी महिमासे उस समय सारा आकाश सत्पुरुषोंके मनकी तरह निर्मल हो गया था और दिशायें अच्छे पुरुषोंके आचा-

रण-सदृश धूल-धूसरता रहित होगई थी। देवतागण भगवान्‌के उत्साहका गान कर रहे थे। किन्नरगण प्रभुका कुन्दके फूल-सदृश निर्मल यश बखान करते थे और भक्तिसे फूले हुए विद्याधर लोग अपनी अपनी प्रियाओंके साथ आकाशरूपी रंगभूमिमें नेमिजिनकी पापनाशिनी पवित्र कीर्तिका पाठ पढ़ रहे थे। उस समय कूड़े-करकट रहित पवित्र रत्नमयी पृथ्वी काचके समान निर्मल जान पड़ती थी—वह मानों श्रेष्ठ लोगोंकी पवित्र बुद्धि ही है। वायुकुमार-देवतोंने तब आकर एक योजन तककी पृथ्वीको धूल-कंकर-पत्थर आदि रहित बना दिया। मेघकुमारोंने सुगन्धित जलकी वर्षासे सब दिशाओंको सुगन्धित किया। उस समय भगवान्‌के प्रभावसे गेहूँ, चावल, मूँग--आदि धान खूब फले-फूले। पृथ्वीने उनके द्वारा एक घरानेदार स्त्रीकीसी शोभा धारण की। वृक्ष सब ऋतुओंके फल-फूलोंसे सत्पुरुषोंके समान झुक गये। इस प्रकार फल-फूल-पत्ते-धान आदि द्वारा फली-फूली भूमि लोगोंके बड़ी सुखकी कारण बन गई। विहार करते हुए भगवान्‌के पीछे जो वायु बहा—जान पड़ा जिनके प्रभावसे वह भी उनकी भक्ति करनेको सज्जित है। घरमें निधि आनेसे जैसा आनन्द होता है वैसा ही परमानन्द भगवान्‌के विहारसे अकस्मात् सब लोगोंको हुआ। झारी, पंखा, दर्पण, कुंभ आदि आठ मंगल-द्रव्य हाथोंमें लेकर देवाङ्गनायें प्रभुके आगे आगे चलती थीं। देवतागण आनन्दसे फूलकर इस

प्रकार चौदह अतिशय रचते जाते हैं । सैकड़ों सुन्दर देवाङ्गनायें उस समय नेमिप्रभुके आगे आगे खुशीके मारे नृत्य करती हुई जा रही थीं । भगवान् आकाशमें ऋद्धिधारी मुनियों और सैकड़ों विद्याधर-राजोंसे तथा पृथ्वीपर चार संघों और पशुओं द्वारा भक्तिसे सेवा किये जा रहे थे । जगद्गुरु नेमिप्रभु इस प्रकार पृथ्वीपर सब ओर फैले हुए बारह सभाओंके देव-मनुष्य-आदि तथा चौंतीस अतिशयोंसे शोभित हो रहे थे ।

इस तरह त्रिभुवन-पिता, पवित्रात्मा, पृथ्वीतलको पवित्र करनेवाले, यादव-वंश-सूरज, लोक-चूड़ामणि, सुरासुर-पूजित भगवान् नेमिजिनने सौरठ, गुजरात, अवन्ति, चोल, कीर, कोंकण, काश्मीर, अंग, वंग (बंगाल), कलिंग, कर्णाटक, लाट, भोट (भूटान), आदि सब आर्यदेशोंमें विहार किया । भव्यबन्धु जिनने उन उन देशोंमें जाकर अपने, सर्व सन्देहोंके नाश करनेवाले और सुखकारी उपदेशसे लोगोंका मिथ्यान्धकार नाशकर प्रबोध दिया । उस समय अनेक जनोंने भगवानके पवित्र उपदेशसे श्रेष्ठ रत्नत्रय मार्ग ग्रहण कर स्वर्ग-मोक्षका सुख प्राप्त किया । जहाँ जगद्गुरु तीर्थंकर देव विराजमान हों वहाँ ऐसा कौन जन रह जाता है जो उनके तत्वको न समझे—न ग्रहण करे । इस प्रकार देवगण-पूजित और शान्तिकर्त्ता नेमिप्रभु सब आर्यदेशोंमें विहारकर पृथ्वीको पवित्र करते हुए द्वारिका लाँघकर सब संघके साथ गिरनारके जंगलमें आकर ठहरे ।

इन्द्रकी आज्ञा पाकर धनपति कुबेरने उसी समय पहलेके सदृश दिव्य समवशरण बनाया। कमलिनीको भूषित करनेवाले सूरजकी तरह भगवान् नेमिप्रभुने मानस्तंभादि-शोभासम्पन्न उस दिव्य समवशरणको अलंकृत किया।

भगवान्‌के आगमन समाचार सुनकर सम्यग्दृष्टि त्रिखण्डेश कृष्ण और बलदेव अपनी सब सेना तथा सन्तुष्ट बन्धु-बान्धव परिजनके साथ बड़े राजसी ठाटसे भगवान्‌के दर्शन करनेको आये। जिनकी दिव्य सभाको उन्होंने दूरहीसे देखा। हवासे फड़कती हुई धुजाओं द्वारा वह उन्हें बुलाती हुईसी जान पड़ी। पहले प्रदक्षिणा कर बड़े जयजयकारके साथ उन्होंने उस पृथ्वीतलको पवित्र करनेवाली पावन सभामें प्रवेश किया। अपनी सुन्दरतासे मनको मोहित करनेवाली उस सभाकी दिव्य शोभाको देखकर उन्हें बड़ी ही प्रसन्नता हुई—मानों जैसे उन्हें निधि मिल गई। पहले उन्होंने मानस्तंभ, चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष और स्तूप—कृत्रिम-पर्वतोंकी प्रतिमाओंकी पूजा की। इसके बाद निर्मल स्फटिकके बने हुए श्रीमण्डपमें, सबके ऊपरके विशाल तीसरे चबूतरेपर सुसज्जित, सुवर्ण-रत्नके दिव्य सिंहासनपर विराजमान, जगद्गुरु नेमिजिनकी श्रेष्ठ जल-गन्ध-अक्षत-पुष्प-नैवेद्य-रत्नदीप-धूप-फल आदि द्वारा उन्होंने पूजा की और चरणोंमें अर्घ चढ़ाया। भगवान्‌की इस समयकी शोभा बड़ी ही मनोहर थी। वे अपने दिव्य प्रभावसे आकाशमें चार अंगुल निराधार बैठे हुए थे। अनन्त-ज्ञान, अनन्त

दर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यसे उनका दिव्यशरीर दमक रहा था। इन्द्रादि देवतागण, विद्याधर, राजे-महाराजे उनकी पूजा कर रहे थे। जिसपर मोतियोंकी मालायें लूम रही हैं—ऐसे तीन छत्र उनपर शोभा दे रहे थे। जिसे देखकर शोक रह नहीं पाता उस अशोकवृक्षके नीचे भगवान् विराजे हुए थे। गिरते हुए झरनेके सदृश जान पड़नेवाले उज्ज्वल चँवर उनपर ढुर रहे थे। उनके नगाड़ोंकी बलन्द आवाजसे पृथ्वी गूँज रही थी। कोटि सूरज-समान तेजस्वी उनका भामण्डल चमक रहा था। देव-देवाङ्गनागण उनपर नाना प्रकारके सुन्दर सुन्दर फूलोंकी वरसा करते थे। भगवान् अपनी दिव्यध्वनिरूपी सुधा-वर्षासे सब सभाओंको तृप्त कर रहे थे। ऐसे देवोंके देव, त्रिभुवन-वन्दनीय और संसार-समुद्रसे पार करनेवाले नेमिप्रभुके दर्शन कर यादव-प्रभुओंको बड़ा आनन्द हुआ। इसके बाद उन्होंने भक्ति-भरे हृदयसे भगवानकी स्तुति की। हे प्रभो, तुम लोक-कमलको प्रफुल्ल करनेवाले सूरज हो, परम उदयशाली हो, मिथ्यात्व-अन्धकारको नाश कर जगत्को प्रकाशित किये हो। तुम त्रिकालके ज्ञाता हो, त्रिभुवन-पूजित हो, भव्योंके आधार हो, निर्मद हो, योगिजन-वन्दित हो। तुम पवित्र हो, परमानन्दमय हो, दुर्गतिके रोकनेवाले हो, सुरासुर-पूजित हो। तुम जगत्के जीवोंके स्वामी हो, गुरु हो, बड़े गुणी हो, पितामह हो, पिता हो, सब जीवोंके शरण हो।

नाथ, आपके गुण अनन्तानन्त हैं—उनका कोई पार नहीं। वे समुद्रसे भी गंभीर और मेरु पर्वतसे कहीं अधिक उन्नत हैं। भगवन्, आपका चरणाश्रय बड़ा ही सुखका कारण है। वह जन बड़ा ही अभागी है जो आपके रहते और आपके तत्व न समझे। स्वामिन्, जो सुख, लोग आपके चरणोंके ध्यानसे प्राप्त कर सकते हैं वह दूसरों द्वारा स्वप्नमें भी दुर्लभ है। इस कारण नाथ, प्रार्थना करते हैं कि जबतक हम संसार पार न करलें तबतक सर्वार्थ-साधिनी आपकी चरण-भक्ति हमें सदा प्राप्त हो। इस प्रकार नेमिजिनकी स्तुति कर और बार बार प्रणाम कर उन्होंने अपनेको कृतार्थ समझा। इसके बाद सभामें अन्य जो वरदत्त आदि गणधर तथा तपस्वी जन थे उनकी भक्तिसहित वन्दना कर वे नर-सभामें जाकर सिर झुकाये बैठ गये। और अपनी दृष्टि उन पवित्र-हृदय भाइयोंने भगवानके चरणोंमें लगाई। वहाँ उन्होंने दान-पूजा-व्रत-शील-उपवासमय सुखके कारण जिनप्रणीत पवित्र धर्मका उपदेश नेमिजिन द्वारा सुना।

इसके बाद त्रिखण्डेश श्रीकृष्ण सुरासुर-पूजित नेमिप्रभुको प्रणाम कर हाथ जोड़कर बड़े विनयके साथ बोले—प्रभो, आपके द्वारा तत्वोंके जाननेकी मेरी बड़ी इच्छा है। आप कहिए कि तत्व किसे कहते हैं? तब लोकबन्धु श्रीनेमिजिन कृष्णके प्रश्नसे विस्तारके साथ तत्वोपदेश करने लगे। भगवानके इच्छा न होते हुए भी तीर्थंकर नाम पुण्यके प्रभावसे उनके

मुख-कमलसे काचमें देख पड़नेवाले प्रतिबिम्बकी तरह निर्विकार दिव्यध्वनि निकली। उस ध्वनिमें तालु, ओठ, दाँत आदिका सम्बन्ध न रहने पर भी वह स्पष्ट अक्षरमय थी। उसे सुनकर सबका सन्देह दूर हो जाता था। उसे नाना तरहकी भाषा जाननेवाले सभी देश-विदेशके लोग समझ लेते थे। भगवान् बोले—महाभव्य राजन्, सुनिए; मैं तुम्हें यथाक्रमसे तत्व, तत्वका स्वरूप और तत्वका फल कहता हूँ।

आगममें जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह तत्व कहे गये हैं। उन्हें मैं कहता हूँ। उसके द्वारा तुम उनका स्वरूप जान जाओगे। जीवादिक पदार्थोंका जो यथार्थ रूप-स्वरूप है वह तत्व है। उसका निश्चय करलेना भव्योंको मुक्तिका कारण है। तत्व सामान्यपने एक ही है। वह जीव और अजीवके भेदसे दो प्रकारका है। मुक्त, अमुक्त और अजीव इस तरह वह तीन प्रकारका है। परमागममें जीवके मुक्तजीव और संसारीजीव ऐसे दो भेद किये हैं। और संसारी जीवके भी भव्य तथा अभव्य ऐसे दो भेद हैं। तब सब भेदोंको इकट्ठा करदेनेसे तत्व चार प्रकारका हो जाता है। फिर यही तत्व पञ्चास्तिकायके भेदसे पाँच प्रकारका हो जाता है और वे पञ्चास्तिकाय ये हैं—जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, और आकाशास्तिकाय। इन पाँच अस्तिकायोंमें काल और शामिल दिया जाय तो तत्व छह भेदरूप हो जाता है। इस

प्रकार तत्वके जिनागममें विस्तारसे कोई अनन्तानन्त भेद बतलाये गये हैं ।

इनमें जीवका लक्षण चेतना है। वह द्रव्य-स्वभावसे नित्य है—उसका कभी नाश न हुआ, न है और न होगा। और मनुष्य-देव-पशु आदि पर्यायकी अपेक्षा वह अनित्य है—नाशवान् भी है । जीव ज्ञाता-दृष्टा तथा पुण्य-पापोंका कर्त्ता और भोक्ता है। वह शरीरके परिमाणवाला, अनन्तगुणमय और उर्द्ध्वगति-स्वभावसहित है। ऐसा होकर भी वह कर्मोंके वश हुआ संसारमें घूमा करता है । इस कारण ऋषिगण उसे संसारी कहते हैं। वह अपने संकोच और विस्ताररूप स्वभावको लिये प्रदेशोंसे प्रदीपकी तरह घट-बढ़ सकता है। अर्थात् जैसे प्रदीपको एक मकानमें रखनेसे वह सारे मकानको प्रकाशित करता है और वही प्रदीप यदि एक घड़ेमें रख दिया जाय तो वह उस घड़े मात्रमें ही प्रकाश करेगा। उसी तरह जीवको उसके कर्मोंके अनुसार जैसा छोटा या बड़ा—कभी हाथीका शरीर और कभी एक चींटीका शरीर मिलेगा उसीके अनुसार उसके प्रदेशोंमें दीपककी तरह संकोच विस्तार हो जायगा। पर इतना ध्यान रखना चाहिए कि उसके प्रदेशोंकी जितनी संख्या है—उसमें किसी प्रकारकी घट-बढ़ न होगी । यह संकोच-विस्तार जीवका स्वभाव है ।

यह जीव चौदह मार्गणा और चौदह ही गुणस्थानोंसे जाना जाता है। उन चौदह मार्गणाओंके नाम अन्य ग्रन्थसे लिखे

जाते हैं। १–गतिमार्गणा, २–इन्द्रियमार्गणा, ३–कायमार्गणा, ४–योगमार्गणा, ५–वेदमार्गणा, ६–कषायमार्गणा, ७–ज्ञान-मार्गणा, ८–संयममार्गणा, ९–दर्शनमार्गणा, १०–लेश्यामार्गणा, ११–भव्यमार्गणा, १२–सम्यक्त्वमार्गणा, १३–संज्ञीमार्गणा और १४–आहारमार्गणा।

इस जीवके औपशमिकभाव, क्षायिकभाव, मिश्रभाव, औदयिक भाव और पारिणामिकभाव, ये पाँच स्वतत्व कहे जाते हैं। अर्थात् जीवहीके ये होते हैं। इन गुणोंसे जीव जाना जाता है। जीव उपयोगमय है। उपयोग दो प्रकारका है। एक–ज्ञानोपयोग और दूसरा–दर्शनोपयोग। इनमें ज्ञानोपयोग– आठ प्रकारका है। यथा–मतिज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतिज्ञान और कु-अवधिज्ञान। दर्शनोपयोगके चार भेद हैं। यथा–चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। ज्ञान साकार है, इस कारण कि वह पदार्थोंके विशेषरूपको ग्रहण करता है–वस्तुओंके विशेष आकार-प्रकारादिकका वह ज्ञान कराता है। और दर्शन निराकार है, इस कारण कि उसमें केवल पदार्थोंकी सत्ताका अवभास मात्र होता है। इत्यादि गुणों द्वारा बुद्धिमानोंको जीवका स्वरूप जानना चाहिए। ऊपर सामान्यतासे कही गई बातोंका विस्तारसे वर्णन 'गोम्मटसार' 'सर्वार्थसिद्धि' आदि ग्रन्थोंमें किया गया है। वह जिज्ञासु पाठकोंको उन ग्रन्थोंके स्वाध्यायसे जानना

चाहिए। जान पड़ता है ग्रन्थ-विस्तारके भयसे ग्रन्थाकर्त्ताने पदार्थोंका यह सामान्य विवेचन किया है।

जीवके सम्बन्धमें ग्रन्थकार कुछ थोड़ा और भी लिखते हैं। इसे 'जीव' इसलिए कहते हैं कि यह अनन्तकालसे 'जीता आ रहा है,' वर्तमानमें 'जीता है,' और भविष्यतमें अनन्तकालतक 'जीता रहेगा'। इसके दस प्राण हैं, इस-कारण इसे 'प्राणी' कहते हैं। यह नाना जन्मोंको धारण करता है, इसलिए इसे 'जन्तु' कहते हैं। क्षेत्र इसका स्वरूप है, और उसे यह जानता है, अत इसे 'क्षेत्रज्ञ' कहते हैं। उत्कृष्ट भोगोका यह स्वामी है, इस कारण इसे 'पुरुष' कहते हैं। आत्माको यह आत्मा द्वारा पवित्र करता है, इसलिए परमाग-मके जाननेवालोंने इसे 'पुमान्' कहा है। यह नित्य अनेक भवोंमें आता है, इसलिए इसे 'आत्मा' कहते हैं। आठ कर्मोंमें रहता है, इस कारण इसे 'अन्तरात्मा' कहते हैं। ज्ञानगुणवाला है इसलिए 'ज्ञानी' कहा गया है। इस प्रकार नाना पर्याय नामोंसे तत्वज्ञोंको जीवकी पहचान करनी चाहिए। यह जीव नित्य है— अविनाशी है और पर्यायें सब नाशवान् हैं। इस जीवका लक्षण उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीन गुण-मय कहा गया है। इस प्रकार गुण युक्त आत्माको जो लोग जान लेते हैं वे भव्य हैं और सम्यग्दृष्टि हैं। और सब मिथ्या-दृष्टि हैं। "न आत्मा है और न मोक्ष है, न कर्ता है और न भोक्ता है," ऐसा कहना मिथ्यादृष्टियोंका है और पापका

कारण है। इसे छोड़कर जो आत्माका अभी स्वरूप कहा गया, राजन्, तुम इसीपर विश्वास करो।

फिर इस जीवके संसारी और मोक्ष ऐसे दो भेद किये गये हैं। वह संसारी तो इसलिए है कि—कर्म-परवश हुआ नरक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देव इस प्रकार चार गतिरूप अपार संसारमें सरता है—भ्रमण करता है। और त्रिभुवन-श्रेष्ठ सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय द्वारा सब कर्मोंका नाशकर अनन्तसुखमय मुक्त अवस्था प्राप्त कर लेता है, इस कारण इसे 'मुक्तजीव' कहा है।

देव-गुरु-शास्त्रके निर्मल श्रद्धानको 'सम्यग्दर्शन' कहते हैं। वह मोक्षका कारण है। जीवादिक पदार्थोंके सत्य स्वभावको जो प्रकाशक—ज्ञान करानेवाला है वह 'ज्ञान' 'सम्यग्ज्ञान' है। वह ज्ञान अज्ञानान्धकारके विस्तारका नाश करनेवाला और धर्मका उपदेशक है। हिंसादिके त्यागरूप तेरह प्रकार चारित्रको सम्यक्चारित्र कहा है। सबके साथ मध्यस्थभाव रखना उसका लक्षण है। इन तीनोंकी परिपूर्णता ही मोक्षका साक्षात् मार्ग कहा गया है। श्रेष्ठ सम्यक्त्वके होते ही ज्ञान और चारित्र भव्योंको मोक्ष-सुखके कारण हो सकते हैं और 'ज्ञान' जब दर्शन-चारित्र युक्त हो तब उसे जिनसेनादि आचार्योंने मुक्तिका साधन कहा है। जो चारित्र, ज्ञान और दर्शन युक्त नहीं वह अन्धेके उद्योगकी तरह कुछ फलका देनेवाला भी नहीं। अन्यत्र इन तीनोंके सम्बन्धमें लिखा है कि "सम्य-

ग्दर्शनसे दुर्गतिका नाश होता है, सम्यग्ज्ञानसे कीर्त्ति होती है, और चारित्रसे लोकमें पूज्यता होती है और इन तीनोंके एकत्र मिल जानेसे मुक्ति होती है।" मिथ्यादृष्टियोंने एकान्तसे इन तीनोंमेंसे एक एकहीको ग्रहण कर लिया, इस कारण उनके लोकमें छह भेद हो गये। श्रीसर्वज्ञ जिनभगवान्ने जो पवित्र धर्मका लक्षण कहा, वही सत्य है—यथार्थ है और मोक्षका देनेवाला है और नहीं; यह उस सम्यग्दर्शनकी शुद्धता है। आप्त—देव वह है जो भूख-प्यास आदि अठारह दोषोंसे रहित हो, और केवलज्ञानी हो। बाकी सब आप्ताभास—नाममात्रके आप्त हैं। उनमें सच्चे आप्तका कोई लक्षण नहीं है। और उन जिनभगवान्के जो वचन हैं वही सच्चा आगम है, शेष तो वचनोंका केवल विकार है। पदार्थ, तत्वज्ञोंने जीव और अजीवके भेदसे दो प्रकारका बतलाया है। जीवका लक्षण पहले कह दिया गया है। वह जीव भव्य, अभव्य और मुक्त ऐसे तीन प्रकारका है। 'भव्य' वह है जो सोनेसे पृथक् किये पाषाणकी तरह कर्मोंसे पृथक् होकर सिद्धि लाभ करेगा और 'अभव्य' अन्ध-पाषाणकी तरह, जो किसी भी यत्नसे सोनेसे अलग नहीं किया जा सकता, कभी कर्मोंसे मुक्त न होगा। 'मुक्त' वह है जिसने आठ कर्मोंको नाशकर आठ गुण प्राप्त कर लिये और जो त्रिलोक-शिखरपर विराजमान होकर अनन्तसुख भोगता है। उसे 'सिद्ध' कहते हैं। वे सिद्ध भगवान् कर्माञ्जनरहित हैं और साकार होकर भी

निराकार है । इसका भाव यह है कि सिद्ध आत्माको जैन-धर्ममें पुरुषाकार कहा है । यथा–" पुरुसायारो अप्पा " । जीव जितने छोटे या बड़े मनुष्य-देहसे मुक्त होता है उससे कुछ कम आकारमें शुद्ध आत्मा मोक्षमें रहता है । उसी कारण आत्माको आकारसहित कहा है । और दूसरा आकारका अर्थ है, जो स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवाला हो । जैसे जड़ वस्तु घट-पट वगैरह। ऐसा आकार सिद्धोंका नहीं है । इस कारण वे निराकार भी हैं । इन सिद्धका ध्यान करनेसे भव्य मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं । त्रिखण्डेश हरे, इस प्रकार तुम्हें जीव तत्त्वका स्वरूप कहा गया । अव अजीव तत्त्वका स्वरूप कहा जाता है । सुनिए । धर्म, अधर्म, आकाश, काल, और पुद्गल इन भेदोंसे अजीव पाँच प्रकारका है । इनमें जीव-पुद्गलको चलनेके लिए उपकारक–उदासीनरूपसे जो सहायक है–किन्तु प्रेरक नहीं है, वह 'धर्मद्रव्य' है। पानी जैसे मछलियोंको चलनेमें सहायक है, पर प्रेरणा करके उनको नहीं चलाता है। 'अधर्मद्रव्य' जीव-पुद्गलको ठहरानेमें उदासीनरूपसे सहायक है–बलात्कार वह चलते हुए जीव-पुद्गलको नहीं ठहराता। जैसे वृक्षकी छाया रास्तागीरको जबरन् न ठहराकर यदि वह स्वयं ठहरना चाहे तो उसे उदासीनरूपसे स्थान देती है । जीव-अजीवादि द्रव्योंको जो अवकाश दे–स्थान दे वह आकाश है । वह अमूर्तिक–स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण रहित, सर्वव्यापी और निष्क्रिय है । कालका लक्षण है वर्तना। वह वस्तुओंकी

अवस्थाका परिवर्तन करता रहता है । जिनने उसकी अनेक पर्यायें-अवस्थायें कही हैं । जैसे कुम्हारके चक्रको घुमानेमें उसके नीचेकी शिला निमित्त कारण है उसी तरह वर्तना-लक्षण काल वस्तुओंके परिणमनमें निमित्त कारण है । व्यवहार-कालसे मुख्य-काल—निश्चयकाल जाना जाता है । जैसे जंगलमें सटा देखकर सिंहका ज्ञान हो जाता है । वह निश्चयकाल लोक-प्रमाण है । उसके अणु रत्न-राशिकी तरह सब जुदे जुदे हैं और सदा ही जुदे जुदे रहेंगे । इसी कारण कालको केवली जिनने अकाय भी कहा है । आचार्योंने जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाशको पञ्चास्तिकाय कहा है । वह इसलिए कि इनके प्रदेश मिले हुए हैं । यहाँ सवाल हो सकता है कि पुद्गलके शुद्ध परमाणुमें तो और कोई प्रदेशोंकी मिलावट नहीं है, फिर वह काय कैसे कहा जा सकता है ? इसका उत्तर आचार्योंने दिया है कि यद्यपि शुद्ध परमाणुमें कोई अन्य मेल-मिलाप नहीं है तथापि उसमें वह शक्ति सदा रहती है जिससे अन्य परमाणु आकर उससे सम्बन्ध कर सकते हैं । इस शक्तिकी अपेक्षा परमाणु भी सकाय है । पर कालके अणुओंमें यह शक्ति ही नहीं है । धर्म-अधर्म-आकाश-काल ये चार द्रव्य अमूर्त्तिक, निष्क्रिय, नित्य और अपने अपने स्वभावमें स्थित हैं । हाँ और कृष्ण, जीव भी अमूर्त्तिक है । मूर्त्तिक केवल एक पुद्गल द्रव्य है । उसके भेद मैं अब तुम्हें कहता हूँ । स्पर्श, रस,

गन्ध, वर्ण, शब्द-आदि पुद्गल कहे जाते हैं। इनमें हर समय पूरण-गलन होता रहता है, इस कारण इनका पुद्गल नाम सार्थक है। स्कन्ध और अणु इन भेदोंसे पुद्गल दो प्रकारका है। स्निग्ध और रूक्ष गुणवाले परमाणुओंके समूहको स्कन्ध कहते हैं। इस स्कन्धका फैलाव दो-अणुओंके स्कन्धसे लेकर सुमेरु-सदृश महास्कन्ध पर्यन्त है। छाया, आतप, अन्धकार, चाँदनी, पानी आदि स्कन्धोंके भेद हैं। महापुराणमें कहा गया है—परमाणु स्कन्धरूप कार्यसे जाना जाता है। वह स्निग्ध-रूक्ष और शीत-उष्ण इन दो-दो स्पर्शवाला है अर्थात् स्निग्ध और रूक्षमेंसे एक स्निग्ध या रूक्ष और शीत तथा उष्णमेंसे एक शीत या उष्ण—ऐसे दो स्पर्शवाला है। पाँच वर्णोंमेंसे एक वर्ण और छह रसोंमेंसे एक रसवाला है। परमाणु नित्य होकर भी पर्यायकी अपेक्षा अनित्य है।

पुद्गलके छह भेद हैं। यथा—सूक्ष्मसूक्ष्म, सूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, स्थूलसूक्ष्म, स्थूल और स्थूलस्थूल। अणु पुद्गलका सूक्ष्मसूक्ष्म भेद है। वह न देख पड़ता है और छुआ जा सकता है। कर्म-वर्गणायें पुद्गलका दूसरा सूक्ष्म भेद है। उनमें अनन्त परमाणु हैं। शब्द-स्पर्श-रस-गन्ध यह सूक्ष्मस्थूलका भेद है। इस कारण कि ये आँखों द्वारा न देखे जाकर भी अन्य इन्द्रियोंसे ग्रहण किये जाते हैं। छाया, चाँदनी, आतप आदि स्थूलसूक्ष्म पुद्गल हैं। इसलिए कि वे आँखोंसे देखे जाते हैं पर नष्ट नहीं किये जा सकते। स्थूल पुद्गल वह है जो

जुदा होकर पीछा मिल सके–जैसे पानी, घी, तैल आदि। और वह स्थूलस्थूल पुद्गल कहलाता है जो एकवार टूटकर फिर न मिल सके–जैसे पृथ्वी, पत्थर, काठ–आदि। ग्रन्थकारने यहाँ अन्य ग्रन्थकी दो गाथायें उद्धृत की हैं। पर उनका अर्थ वही है जो ऊपर लिख दिया गया। इस कारण उनका अर्थ पुनः लिखना उचित न समझा। इत्यादि जिनप्रणीत पदार्थोंका जो श्रद्धान करता है वह मोक्ष जाता है। लोकालोकके जाननेवाले और सुरासुरपूजित, जगद्गुरु नेमिप्रभुने इस प्रकार छह द्रव्योंका स्वरूप कहकर पुनः विनयसे नत-मस्तक और भक्ति-रत कृष्णको जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष–इन सात तत्त्वोंका स्वरूप, मोक्षका साधन–दो प्रकारका रत्नत्रय, इसका फल, शलाका-पुरुषोंका चरित, चार गति, उनके त्रिकाल-गत भेद आदि सब त्रिलोककी साररूप श्रेष्ठ बातोंको बड़े विस्तारके साथ कहा–लोकको प्रकाशित करनेवाले सूरजकी तरह सब स्पष्ट समझा दिया। इस प्रकार नेमिजिनके द्वारा श्रेष्ठ तत्त्वोपदेशको कृष्णने बलदेवके साथ साथ सुना। उस उपदेशके प्रभावसे कृष्णको सब सुखोंके कारण सम्यक्त्व-रत्नकी प्राप्ति होगई। इससे कृष्ण बड़े सन्तुष्ट हुए। उनने बड़ी भक्तिसे प्रभुको सिर नवाया। इसके बाद धर्मामृत पीकर प्रसन्न हुए बलदेव और कृष्णने बड़े आनन्दसे भगवानकी प्रार्थना की।

इनके सिवा अन्य जिन जिन लोगोंने भगवान्‌का पवित्र उपदेश सुना—उनमें कितनोंने सम्यक्त्व ग्रहण किया, कितनोंने जिनदीक्षा लेली, और कितनोंने अणुव्रतोंको ग्रहण किया। मतलब यह कि भगवान्‌की कृपासे सभी सुखी हुए। इस प्रकार बारहों सभाके देव मनुष्यादिक भगवान्‌के उपदेशामृतका पान कर बड़े ही सन्तुष्ट हुए। वे तत्वार्थका पवित्र उपदेश करनेवाले और केवलज्ञानरूपी चन्द्रमा, लोक-श्रेष्ठ नेमिजिन सत्पुरुषोंको सुख दें। वे देवोंके देव और सुरासुर-पूजित नेमिप्रभु मुझे भी अपने चरणोंकी कल्याणकारिणी भक्ति दें।

इस प्रकार जिनकी देवतोंने पूजा की, जो लोकालोकके प्रकाशक हैं, जिनने भव्य जनरूपी कमलोंको सूरजके सदृश प्रफुल्ल कर, मिथ्यात्व-अन्धकारको नष्ट किया और जो केवलज्ञान प्राप्त कर गुण-सागर हुए वे त्रिभुवन-बन्धु, स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले नेमिप्रभु श्रेष्ठ सुख दें।

इति द्वादशः सर्गः।

तेरहवाँ अध्याय।

देवकी, बलदेव और कृष्णके पूर्वभव।

वसुदेवकी स्त्री सती देवकी वरदत्त गणधरसे हाथ जोड़ कर बोली—एक वार प्रभो, अपने शुद्ध चारितसे पृथ्वीतलको पवित्र करते हुए तीन मुनियुगल मेरे घरपर आहार करनेको आये। भगवन्, उन्हें देखकर मुझे बड़ा ही प्रेम हुआ। इसका क्या कारण है देव? सुनकर ज्ञान ही जिनका शरीर है वे वरदत्त गणधर बोले—देवी, सुनो। मैं इस सम्बन्धका सब कारण तुम्हें बताता हूँ।

"इस जम्बूद्वीपमें भारतवर्ष प्रसिद्ध देश है। उसमें मथुरा नाम नगरी बड़ी सुन्दर और जिनभवनोंसे युक्त है। उसका राजा सूरसेन है। वह बड़ा ही प्रजापालक, प्रतापी, शत्रुजयी और नीतिमान् है। इसी मथुरामें एक भानुदत्त नाम बड़ा धर्मात्मा सेठ रहता है। उसकी सेठानी यमुना बड़ी साध्वी और सुन्दरी है। उसके कोई सात लड़के थे। उनके नाम थे—सुभानु, भानुकीर्ति, भानुषेण, भानु, सूरदेव, सूरदत्त और सूरसेन।

एक दिन मथुरामें अभयनन्दी नाम मुनि आये। नृपति सूरसेन और भानुदत्त उनकी वन्दनाको गये। बड़ी भक्तिसे

मुनिको नमस्कार कर उन्होंने उनके द्वारा जिनप्रणीत श्रेष्ठ धर्मका उपदेश सुना । उससे उन्हें बड़ा वैराग्य हो गया । तब वे सब राज्य-वैभव, धन-दौलत छोड़कर स्वपरके हितकी इच्छासे साधु होगये । सेठकी स्त्री यमुना भी वैराग्यसे जिन-दत्ता आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर योगिनी बन गई । माता-पिताके इस प्रकार वनवासी हो जानेसे उन सातों भाइयोंको बड़ी स्वतंत्रता मिल गई । उनके पास धन तो मनमाना था ही, सो उस धनको व्यसनोंमें स्वाहा करने लगे । उन्हें इस प्रकार दुराचारी और यमके सदृश क्रूर तथा चोर देखकर मथुराके नये राजाने बस्तीसे निकाल दिया । यहाँसे चलकर वे सातों भाई मालवेकी प्रसिद्ध नगरी उज्जैनके डरानवे मसानमें आ-कर ठहरे । उस समय रात अधिक बीत चुकी थी । वे अपने छोटे भाई सूरसेनको वहीं बैठाकर बाकी छहों भाई शहरमें चोरी करनेको चल दिये । इस कथाको यहीं छोड़कर एक दूसरी कथा लिखी जाती है । उसका इसी कथासे सम्बन्ध है ।

उज्जैनके राजाका नाम वृषभध्वज था । राजाके पास दृढ़-प्रहारी नामका एक बड़ा ही वीर हजार शूरवीरोंका प्रधान नायक नौकर था । उसकी स्त्रीका नाम वप्रश्री था । उसके वज्रमुष्टि नाम लड़का था । वहाँ विमलचन्द सेठ रहता था । सेठकी स्त्रीका नाम विमला था । इनके मंगी नाम एक लड़की हुई । वह बड़ी सुन्दरी थी । मंगीका ब्याह वज्रमुष्टिके साथ आ ।

वसन्तऋतुमें एक दिन राजा वृषभध्वज वनविहारके लिए गया। शहरके सेठ—साहुकार भी गये। मंगी भी बागसे एक फूलमाला लानेकी इच्छासे जानेको तैयार हुई। मंगीका यह जाना उसकी दुष्ट सास वप्रश्रीको अच्छा न लगा। मंगीसे वह चिढ़ गई। उसने तब गुस्सा होकर एक घड़ेमें भयानक काला साँप रखकर ऊपरसे उसे फूलमालासे भर दिया। इसके बाद वह बड़े मीठेपनसे अपनी बहू मंगीसे बोली—बहू, बागमें काहेको जाती है। मैंने तो तुम्हारे लिए यहीं माला ले रक्खी है। देखो, वह घड़ेमें रक्खी है। जाकर उसे ले-आओ। हाय! पापी स्त्रियाँ क्रोध चढ़ जानेपर क्या नहीं कर डालतीं। वे साँपिनके समान झटसे दूसरोंके प्राणोंको हर लेती हैं। बेचारी भोली मंगी सासके कहेसे माला लानेको चली गई। उसने ज्यों ही घड़ेमें हाथ डाला कि त्यों ही उसे उस दुष्ट कालसर्पने डस लिया। उसी समय जहर उसके सब शरीरमें फैल गया। वह मरी हुईके सदृश गश खाकर गिर पड़ी। मोहसे अन्धा हुआ प्राणी जैसे अपने हित-अहितको नहीं जानता, वही दशा मंगीकी होगई। उसे कुछ भी सुध-बुध न रही। उसकी सास वप्रश्रीने तब उसके शवको घासमें लपेट कर मसानमें फिंकवा दिया।

वज्रमुष्टि भी बागमें गया हुआ था। मंगीपर उसका बड़ा प्यार था। वह मंगीको बागमें न आई देखकर घरपर आया। मंगी उसे वहाँ भी न देख पड़ी। उसने तब घबरा-

कर अपनी माँसे पूछा-माँ, मंगी कहाँ है ? सुनकर दुष्ट वप्रश्री बोली-बेटा, क्या कहूँ, उसे तो कालरूपी साँपने काट लिया। मैंने मोह-वश उसे न जलाकर घासमें लपेट कर मसानमें डलवादी है। सुनकर ही वज्रमुष्टि हाथमें तल-वार लिए उसी समय घरसे निकल गया। मंगीके शोकसे दुखी होकर वह सीधा उसी घोर मसानमें पहुँचा। रात होगई थी। वहाँ उसने उस भयंकर मसानमें एक वरधर्म नाम पवित्र मुनिको ध्यानमें बैठे हुए देखे। भक्तिसे नम-स्कार कर वह उससे बोला-प्रभो, यदि मैं अपनी प्रियाको फिरसे देख पाऊँगा तो आपके सुख-कर्त्ता चरणोंकी हजार दलवाले कमलोंसे पूजा करूँगा। यह कहकर वज्रमुष्टि जंगलमें मंगीको ढूँढ़ने लगा। भाग्यसे मुनिको छूकर आई हुई हवाके लगनेसे मंगी, जी उठी। उसे सचेत देखकर वज्रमुष्टिने उस परका घास निकालकर दूर फैंका और उसे लाकर वह बोला प्रिये, तुम इन योगी महाराजके पास थोड़ी देरतक बैठो। मैं अभी इनकी पूजाके लिए कमलोंको लेकर आता हूँ। यह कहकर और अपनी स्त्रीको मुनिके पास बैठाकर वज्रमुष्टि खुश होता हुआ कमलोंको लाने चल दिया। वहींपर छिपा हुआ वह सूरसेन, जिसका कि जिकर ऊपर आ चुका है, बैठा हुआ था। यह सब देखकर वह वज्रमुष्टिके चलेजानेपर मंगीके मनकी परीक्षा करनेको उसके पास आया। नाना प्रकार हाव-भाव, विनोदके द्वारा उस धूर्त्तने मंगीके मनको अपनेपर

रिझा लिया। मंगी भी उसपर मोहित होगई। वह बोला— " तुम मुझे यहाँसे कहीं अन्यत्र ले चलो। मैं तुम्हारे साथ चलनेको तैयार हूँ। " सुनकर सूरसेनने उससे कहा—तुम्हारा पति कोई ऐसा वैसा साधारण आदमी नहीं। वह बड़ा ही वीर है। मैं उससे डरता हूँ। इस कारण तुम्हें मैं अपने साथ नहीं लिवा जा सकता। इसपर मंगीने कहा—उससे तुम मत डरो। वह मूर्ख क्या कर सकता है। उसे तो मैं बातकी बातमें मौतके मुँहमें डाल दूँगी। इस प्रकार वे दोनों बातें कर ही रहे थे कि इतनेमें कमल लेकर वज्रमुष्टि भी आगया। अपने हाथकी तलवार मंगीको देकर दोनों हाथोंसे उसने मुनिके पाँवोंपर कमल चढ़ाये। इसके बाद वह मुनिको नमस्कार करनेको झुका। मंगीने तलवार उठाकर उसके गलेपर देमारी। सूरसेनने बड़ी जल्दी झपटकर तलवारके वारको अपने हाथ-पर झेल लिया। उससे उस बेचारेके हाथकी उँगलियाँ कट गईं। वज्रमुष्टि किसी आकस्मिक भयसे मंगीको डरी हुई समझकर बोला—प्रिये, डरो मत। मंगीने तब झूठ-मूठ ही कह दिया नाथ, मैं राक्षससे डर गई थी। सच है माया स्त्रीसे ही उत्पन्न होती है। यह सब लीला देखकर उस चोर सूरसेनको बड़ा ही वैराग्य हुआ। उसने संसारको धिक्कार दिया। उसने विचारा—हाय! जिसके लिए बड़े बड़े कष्ट उठाये जाते हैं वह स्त्री कितनी ठग, पापिनी और प्राणोंकी

घातक होती है। ऊपरसे तो कैसी सुन्दर! कैसी भोली-भाली! और भीतर देखो तो विष-फलकी तरह जहर-भरी हुई, सदा सन्ताप देनेवाली। वे लोग बड़े ही मूर्ख हैं, अज्ञानी हैं जो इनसे प्यार कर हथिनीपर प्यार करनेवाले हाथीकी तरह दुर्गतिमें जाते हैं। इस दुःख-सागर-संसारमें सर्प-सदृश भयंकर विषयोंसे अब मैं सन्तुष्ट होगया—अब मुझे इनकी जरूरत नहीं। इस प्रकार वह तो विचार ही रहा था कि इतनेमें उसके छहों भाई भी खूब धन-माल चुराकर आगये। उस धनको वे सूरसेनके आगे रखकर बोले—भाई, तुम भी अपना हिस्सा इसमेंसे लेलो। यह देखकर सूरसेनने अपने भाइयोंसे कहा—भाई, मुझे अब धनकी चाह न रही। मैं तो संसारकी भयानक दशा देखकर बड़ा डर गया हूँ, इस कारण अब तप ग्रहण करूँगा। उन सबने तब सूरसेनसे पूछा—भाई, एकाएक ऐसा क्या कारण होगया, जिससे तुम तप लेनेको तैयार होगये। सूरसेनने तब अपनी कटी हुई उँगलियाँ दिखलाकर अपनी और मंगीकी सब बातें उनसे कह दीं। स्त्रीके इस भयंकर चरितको सुनकर यह सब उन्होंने पापका कारण समझा। उन्हें भी उस घटनासे संसार-शरीर-भोगोंमें बड़ा ही वैराग्य होगया। वे सातों भाई तब मोहजालको काटकर और उस सब धन-मालको जीर्ण तृणकी तरह वहीं छोड़कर उन वर-धर्म नाम मुनिके पास गये। बड़ी भक्तिसे उन्होंने उन महान् तपस्वी-रत्न मुनिको प्रणाम किया और दीक्षा लेकर उसी

कोरे सब मुनि होगये। उधर जब यह हाल उनकी वत्तों थीत हुआ तो वे सब भी जिनदत्ता आर्यिकाके सा जिनदीक्षा ले गईं।

एक दिन वज्रमुष्टिने उन सागर-समान गंभीर, शुद्ध रत्न-त्रयधारी मुनियोंको उज्जैनके जंगलमें तप करते देखकर बड़ी आदर-बुद्धिसे उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद उसने उनसे पूछा—भगवन्, आपकी यह स्वर्गीय सुन्दरता, यह नई जवानी और यह लावण्य! ऐसे समयमें आपने इस कठिन योगको क्यों लिया? सुनकर उन्होंने वह सब हाल वज्रमुष्टिसे कह दिया। उस घटनासे वज्रमुष्टिके मनपर बड़ा असर पड़ा। वह भी उन्हीं वरधर्म मुनिके पास पहुँचा। नमस्कार कर उसने सब परिग्रह छोड़कर दीक्षा ग्रहण करली। निकट-भव्यके तपोलक्ष्मीके समागममें कोई न कोई कारण मिल ही जाता है।

उधर मंगीको भी उन सब आर्यिकाके दर्शन होगये। उन्हें नई उम्रमें ही दीक्षित हुई देखकर मंगीने उनसे पूछा—देवियो, आपकी यह नई जवानी और यह रूप-सौन्दर्य! इतनी छोटी अवस्थामें आप क्यों साध्वी होगईं? वह सब घटना उन्होंने मंगीसे कह सुनाई, जिस कारण कि उन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। सुनकर मंगीको बड़ा वैराग्य हुआ। आत्म निन्दाकर वह भी उसी समय उनके पास दीक्षा ले गई।

इसके बाद वे सुभानु मुनि वगैरह घोर तप कर आलौ-संन्याससहित मरे। तपके फलसे वे सौधर्म स्वर्गमें जहर-भरी जातिके देव हुए। वहाँ उन्होंने दो सागरकी आयु-पर्यन्त दिव्य सुख भोगा।

धातकीखण्ड-द्वीपके प्रसिद्ध भारतवर्षमें रजताद्रि नाम पर्वत है। उसकी दक्षिणश्रेणीमें नित्यालोक नामकी एक बड़ी सुन्दर नगरी है। उसका राजा चित्रशूल था। उसकी रानीका नाम मनोहरी था। वह सुभानु मुनिका जीव स्वर्गसे आकर इन राजा-रानीके चित्राङ्गद नाम पुत्र हुआ। सुभानुके शेष जो छह भाई थे वे भी इन्हींके पुत्र हुए। उनके नाम थे—गरुड़ध्वज, गरुड़वाहन, मणिचूल, पुष्पचूल, गगननन्दन और गगनचर। वे सातों ही भाई बड़े सुन्दर थे और उनके धन-वैभवका तो कहना ही क्या।

इसी दक्षिणश्रेणीमें मेघपुरका राजा धनंजय नाम विद्याधर था। उसकी रानी सर्वश्री थी। उसके एक पुत्री हुई। वह बड़ी सुन्दरी और भाग्यवती थी। उसमें अनेक गुण थे। उसका नाम धनश्री था।

इस रजताद्रिपर्वतमें एक नन्दपुर नाम शहर था। उसका राजा हरिषेण था। उसकी रानी श्रीकान्ता थी। उनके हरिवाहननाम एक पुत्र हुआ। वह धनश्रीका कोई सम्बन्धी था। जब इस धातकीखण्डके भारतवर्षकी अयोध्यामें धनश्रीका स्वयंवर हुआ तब धनश्रीने बड़े प्यारसे वरमाल हरिवाहन-

को ही पहनाई। उस समय अयोध्याका राजा पुष्पदंत चक्र-
वर्त्ती थी। उसकी रानीका नाम प्रीतिंकरा था। उनके सुदत्त
नामका पुत्र था। इस स्वयंवरमें इस पापी, गर्विष्ठ सुदत्तने
क्रोधसे धनश्रीको छीन लिया। इस घटनाको देख उनके
चित्राङ्गद वगैरह सातों भाइयोंको प्रणीत जीव-अजीव
उन्होंने श्रीभूतानन्द नाम तीर्थंकरके पास ई श्रद्धा जम गई।
ग्रहण करली। अन्तमें वे संन्यासहित मरकर माहेन्द्र नाे
चौथे स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए। वहाँ उन्होंने सात
सागर तक दिव्य सुखोंको भोगा।

अपने इस भारतवर्षके कुरुजांगल नाम देशमें हस्तिनापुर
जो शहर है, उसमें श्वेतवाहन नाम एक महाजन रहता
था। वह बड़ा पुण्यात्मा था। उसकी सेठानीका नाम
बन्धुमती था। वह सुभानुका जीव स्वर्गसे आकर इसके
शंख नाम जिन-भक्ति-रत पुत्र हुआ। हस्तिनापुरका राजा
उस समय गंगदेव था। उसकी रानीका नाम नन्दयशा था।
सुभानुके वे शेष छहों भाई इन्हीं राजा-रानीके युगल-पुत्र
हुए। उनके नाम थे—गंग और नन्ददेव, खड्गमित्र
और नन्द, सुनन्द और नन्दिषेण। रानी नन्दयशाके एक-
वार फिर गर्भ रहा। न जाने किस कारणसे राजा गंगदेव
नन्दयशा पर अबकी वार नाराज होगया। स्वामीको अपनेपर
नाराज देखकर नन्दयशाने अपनी धाय रेवतीसे कहा—
महाराज आजकल मुझसे कुछ अनमनेसे हो रहे हैं। जान

पड़ता है यह इस गर्भस्थ पुत्रका प्रभाव है। कुछ दिन बाद जब नन्दयशाने पुत्र जना तब धायने उसे लेजाकर बन्धुमती सेठानीको दे दिया। वहाँ वह निर्नामक नामसे प्रसिद्ध हुआ।

एक दिन द्वीपके गंगदेवके छहों लड़के जीम रहे थे। [illegible] है। उसको देखकर बन्धुमतीके लड़के शंखने निर्नामकसे [illegible] कहा—तू भी इन लोगोंके साथ खाले। सुनकर निर्नामक उन छहोंके साथ खानेको बैठ गया। यह देखकर नन्दयशा क्रोधके मारे आगबबूला होगई। उसने आकर बड़े जोरकी एक लात बेचारे निर्नामककी पीठपर जमादी और कहा--यह किसका छोकरा है? यह देख शंख और निर्नामकको बड़ा ही दुःख हुआ।

हस्तिनापुरके जंगलमें एक बार द्रुमसेन नाम अवधिज्ञानी महामुनि आये। राजा उनके दर्शनोंको गया। शंख और निर्नामक भी गये। वहाँ सबने मुनि द्वारा सुखका कारण धर्मोपदेश सुना। समय पाकर शंख बोला—हे सब जीवोंके हित करनेवाले योगिराज, महारानी नन्दयशाने एक दिन बिना किसी कारणके ही निर्नामकको मारा था और वे सदा इसपर बड़ी ही नाराजसी रहा करती हैं, इसका कारण क्या है? यह सुनकर अवधिज्ञानी द्रुमसेन मुनि बोले— "सुराष्ट्र देशमें गिरिनगर नामका शहर है। उसका राजा चित्ररथ मांस खानेका बड़ा लोभी था। उसके यहाँ अमृतर-

सायन नामका रसोइया मांस ंयम ग्रहण कर लिया। इन
था। राजाने उसके इस गुणपर खुश वसे इन्हें अन्य जन्ममें
गाँव जागीरमें दे दिये। एक बार कोई णका लाभ हो। इसके
कि गिरिनगरमें सुधर्म नाम मुनि आये। राजाम स्वर्गमें साम्युनिके
उपदेश सुननेका मौका मिला। जिनप्रणीत जीव-अजीव
आदि तत्त्वोंको सुनकर उसकी उनपर दृढ़ श्रद्धा जम गई।
उसे वहाँ बड़ा वैराग्य हो गया। सो वह अपने मेघरथ पुत्रको
राज्यभार सौंपकर सब परिग्रह छोड़कर स्वपरके कल्या-
णकी इच्छासे मुनि हो गया। उसके पुत्र मेघरथने वहाँ श्रावक-
व्रत ग्रहण किये। मेघरथके पिता चित्ररथने जो अपने
रसोइयेको बारह गाँव दे रक्खे थे, सो मेघरथने राजा होते ही
उससे वे सब गाँव छुड़ाकर सिर्फ एक गाँव उसके पास रहने
दिया। इस कारणसे उस पापी रसोइयेने मुनिसे शत्रुता बाँधली।
एक दिन मुनि आहारके लिए आये। उस दुष्ट रसोइयेने
उन्हें घोषातकी नाम जहरीले फलका आहार दे दिया।
उस आहारसे उन रत्नत्रय-धारी मुनिको बड़ा कष्ट हुआ।
गिरनार पर्वतपर उन्होंने संन्याससहित प्राण छोड़े। वे अप-
राजित नाम विमानमें जघन्य आयुके धारक अहमिन्द्र देव
हुए। वहाँ उन्होंने खूब सुख भोग किया।

वह रसोइया भी मरकर पापके उदयसे तीसरे नरक
गया। वहाँ उसने नाना तरहके कष्टोंको चिरकालतक सहा।
वहाँसे बड़े कष्टसे निकलकर अन्य कुगतियोंमें वह भ्रमण
करने लगा।

पड़ता है यह इस गर्भस्थ एवं पलाशकूट नामका एक गाँव था। जब नन्दयशाने पुत्रएक गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम बन्धुमती सेठानीको देसोइयेका जीव कुगतियोंमें बहुत घूम-फिरकर आ। यहाँ यक्ष नाम पुत्र हुआ। थोड़े दिन बाद इनके एक और पुत्र हुआ। उसका नाम यक्षिल था। इनमें बड़ा भाई यक्ष बड़ा ही निर्दयी और पापी था। इस कारण लोग उसे निर्दयी ही कहकर पुकारने लगे। और छोटा भाई यक्षिल बड़ा दयालु था, इस कारण उसे सब दयालु कहा करते थे। एक दिन बरतनोंसे भरी गाड़ीपर बैठे हुए ये दोनों भाई आ रहे थे। रास्तेमें एक सर्प बैठा हुआ था। दयालुके बहुत कुछ रोकने और मना करनेपर भी दुष्ट निर्दयीने उस सर्पके ऊपर गाड़ी चला दी। वह सर्प अकाम-निर्जरासे मरकर श्वेतविका नाम पुरीके राजा वासवके यह नन्दयशा नाम लड़की हुई। उस समय दयालुने अपने भाई निर्दयीको समझाया कि भाई, तुझे ऐसा महापाप करना उचित न था। उस उपदेशका निर्दयीके मनपर भी असर पड़ गया और उससे उसे उपशमसम्यक्त्व प्राप्त हो गया। आयुके अन्त मरकर वह यही निर्नामक हुआ है। पूर्व पापके उदयसे नन्दशया इसपर क्रोधित रहा करती है।" मुनिके द्वारा इस हालको सुनकर गंगदेव राजा, उनके छहों पुत्र, शंख, निर्नामक आदिको बड़ा वैराग्य हुआ। वे सब ही दीक्षा लेकर मुनि हो गये। उधर नन्दशया और उसकी धाय रेव

ने भी सुव्रता आर्यिकाके पास संयम ग्रहण कर लिया। इन दोनोंने निदान किया कि तपके प्रभावसे हमें अन्य जन्ममें भी इन पुत्रों और इनके पालन-पोषणका लाभ हो। इसके बाद वे सब ही तप करके पुण्यसे शुक्र नाम स्वर्गमें सामानिक देव हुए। अर्थात् कोई इन्द्रका पिता हुआ, कोई माता हुई, कोई भाई हुआ और कोई गुरु आदि हुए। वहाँ कोई सोलह सागर-पर्यन्त खूब दिव्य सुखोंको भोगकर उनमें जो 'शंख' का जीव स्वर्गमें था वह वहाँसे आकर वसुदेवकी स्त्री रोहिणीके बल-देव नाम सम्यग्दृष्टि पुत्र हुआ है। और जो नन्दयशा थी वह मृगावती देशमें दशार्णपुरके राजा देवसेनकी रानी धन-देवीके तुम निदान-वश देवकी नाम लड़की हुई। तुम्हारा व्याह वसुदेवसे हुआ। नन्दयशाकी धाय रेवती मलयदेशके भद्रिलपुरमें सुदृष्टि सेठकी स्त्री अलका हुई। वह सदा दान-पूजा-व्रत-उपवास करनेवाली और जिन-भक्ति-रत बड़ी धर्मा-त्मा हुई। बाकीके जो छहों भाई थे वे स्वर्गसे आकर युगल-रूपसे तुम्हारे पुत्र हुए। वे छहों भाई मोक्ष-गामी हैं, इस कारण एक नैगम नाम देव कंसके भयसे उन्हें जन्म समय ही उठा लेजा कर अलका सेठानीको सौंप आया। उनके नाम हैं—देवदत्त और देवपाल, अनीकदत्त और अनीक-पाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु। वे छहों भाई इसी भवसे मोक्ष जायँगे। इसी कारण वे जवानीमें ही दीक्षा लेकर मुनि हो गये। आहारके लिए वे तुम्हारे घरपर आये थे। उस जन्मा-

न्तरके प्रेमसे उन्हें देखकर तुम्हारे हृदयमें परमानन्द देनेवाला प्रेम उत्पन्न हुआ था।

इसके सिवा जो निर्नामक मुनि थे, तप करते हुए उन्होंने एकवार तीसरे नारायण स्वयंभूके नाना प्रकार छत्र-चँवर आदि वैभवको देखकर निदान किया कि मुझे भी ऐसी सम्पत्ति प्राप्त हो। उसीमें मन रखकर वे मरे भी। तपके फलसे उस समय वे महाशुक्र नाम स्वर्गमें देव हुए। वहाँसे आकर यह नौवें नारायण कृष्ण नाम तुम्हारे पुत्र हुए और कंस तथा जरासंधको मारकर इनने त्रिखण्डेशकी लक्ष्मी प्राप्त की।"

अपने और पुत्रोंके भवोंका हाल सुनकर राजमाता देवकी बड़ी ही प्रसन्न हुई। उसने बड़ी भक्ति और आनन्दसे श्री-वरदत्त गणधरके चरणोंको प्रणाम किया। और जितने भव्य उस समय वहाँ उपस्थित थे उन सबने भी राजमाता देवकी-के भवोंका हाल सुनकर खूब आनन्द लाभ किया। बड़ी भक्तिसे उन्होंने गणधर देवको सिर झुकाकर वन्दना की।

देवतागण जिनके पाँव पूजते हैं, जो कामरूपी हाथीके दमन करनेको सिंह-सदृश और लोकालोकके जाननेवाले हैं, संसारके नाश करनेवाले और अतुल गुण-रत्नोंके समूह हैं, वे त्रिभुवन-चूड़ामणि नेमिप्रभु भव्यजनको सुख दें।

इति त्रयोदशः सर्गः।

चौदहवाँ अध्याय ।

कृष्णकी पट्टरानियोंके पूर्वजन्म ।

कृष्णकी पट्टरानी सत्यभामाने भी गणधर भगवान्‌को भक्तिसे नमस्कार कर अपने पूर्वभवोंका हाल पूछा । कृपासिन्धु, जैनतत्वज्ञ वरदत्त गणधर बोले—देवी, सुनिए । मैं सब हाल तुम्हें कहता हूँ ।

"शीतलनाथ जिनके बाद जिनधर्मका नाश होजाने पर भद्रिल नाम पुरमें मेघरथ राजा हो चुका है । उसकी रानीका नाम नन्दा था । वहाँ एक भूतिशर्मा ब्राह्मण रहता था । उसकी स्त्रीका नाम कमला था । उनके मुण्डशालायन नाम एक पुत्र हुआ । वह वेदोंका बड़ा भारी विद्वान् होनेपर भी महाकामी और परस्त्री-लंपट था । उस दुर्बुद्धिने कुछ पुस्तकें बनाईं । मिथ्यात्वके उदयसे उसने इन पुस्तकोंमें गौ-दान, पृथ्वी-दान, कन्या-दान, सुवर्णदान आदि मिथ्या दानोंकी खूब मनमानी तारीफ की । उन पुस्तकोंको सुनाकर वह मेघरथ राजासे बोला—महाराज, इन दानोंके देनेसे बड़ा ही सुख प्राप्त होता है । हल-मूसल आदिके साथ ब्राह्मणोंको ये दान अवश्य देने चाहिए । देव, इन दानोंसे स्वर्गादिक प्राप्त होते हैं। इन दानोंको छोड़कर तप करना, व्यर्थ शरीरको कष्ट पहुँचाना, भाग्यसे प्राप्त भोगोंको नष्ट करना और संन्याससे

मरकर आत्महत्या करना, है--इन कामोंसे जीवन व्यर्थ ही जाता है और कुछ भी सुख-भोग नहीं किया जा सकता। देव, इनसे हम लोगोंके गो-यज्ञ वगैरह कर्म बड़े ही अच्छे हैं। उनमें पशु मारे जाकर बड़े आनन्दसे उनका मांस खाया जाता है और खूब मनमाना विषय-सुख भोगा जाता है। महाराज, एक सूत्रामणि नाम यज्ञ है। उसमें इच्छाके माफिक शराब भी पी जाती है। माता-बहिन वगैरहका भेदभाव नहीं रक्खा जाता---बड़ी ही स्वच्छन्दता रहती है। उस यज्ञमें अच्छी सिंगार की हुई सुन्दर सुन्दर स्त्रियाँ सपलंग ब्राह्मणोंको दान करना लिखा है। महाराज, ये सब बातें धर्म-प्राप्तिकी कारण बतलाई गई हैं। इस प्रकार मनमाना पापका उपदेश देकर उसने मूर्ख राजा मेघरथ तथा अन्य बहुतसे बुद्धिरहित जनोंको ठगकर उनके द्वारा इन कु-दानों-को करवाया तथा और घर-खेत वगैरह दानमें दिलवाये। वे लोग कालदोषसे उस दुष्टके वचनोंको सत्य समझकर संसार-सागरमें डूबे। उधर वह स्वयं भी मद्य-मांस-परस्त्रीसेवन आदि महा पापोंको जीवनभर करके अन्तमें दुर्ध्यानसे मर-कर सातवें नरक गया। वहाँ उसने छेदन, भेदन, सूलीपर चढ़ना, आरेसे कटना, भाड़में भुनना, कढ़ाईमें तलना, भूखे-प्यासे मरना आदि हजारों दुःखोंको चिरकालतक सहा। परमानन्द देनेवाले जिनवचनोंसे उल्टा चलनेवाला महापापी कौन कौन दुःखोंको नहीं सहता। वहाँसे बड़े कष्टसे निकल-

कर पापके उदयसे कभी कभी वह क्रूर पशु भी हुआ। वहाँसे मरकर फिर नरकमें गया। इस प्रकार उस दुर्बुद्धिने पाप-रत होकर क्रमक्रमसे सभी नरकोंमें भयंकर दुःखोंको भोगा।

गन्धमादन नाम पर्वतसे जो गंधावती नाम प्रसिद्ध नदी निकली है, उसके सुन्दर किनारेपर भल्लूंकि नामका एक पल्ली गाँव था। वह मुण्डशालायन ब्राह्मणका जीव पापके उदयसे इसी गाँवमें काल नामका भील हुआ। इसे एकवार वरधर्म नाम मुनिके दर्शन होगये। इसने नमस्कार कर उनके द्वारा मद्य-मांस-मधु इन तीनोंकी प्रतिज्ञा करली। मरकर यह विजयार्द्धकी अलकापुरीके राजा पुरुषवलकी रानी ज्योतिर्मालाके हरिबल नाम पुत्र हुआ। व्रतके प्रभावसे यहाँ इसे रूप-सुन्दरता आदि सभी बातें प्राप्त हुई। एकवार इसने अनन्तवीर्य नाम चारणमुनिकी वन्दना कर उनसे द्रव्य संयम ग्रहण किया। आयुके अन्तमें मरकर यह सौधर्मस्वर्गमें देव हुआ।

रजताद्रि पर्वतपर रथनूपुर नामका शहर है। उसके राजा सुकेतु हैं। वे विद्याधरोंके स्वामी हैं। उनकी रानी स्वयंप्रभा है। वह हरिबलका जीव सौधर्मस्वर्गसे आकर इन्हीं राजा-रानीके तुम सत्यभामा नाम पुत्री हुई। एक वार तुम्हारे पिताने किसी नैमित्तिकसे पूछा-बतलाओ कि मेरी प्यारी पुत्री किसकी पत्नी होगी? उस बुद्धिमान् निमित्तज्ञानीने तब तुम्हारे पितासे कहा—यह भरतके त्रिखण्डेश चक्रवर्त्ती कृष्णकी प्यारी प्रसिद्ध पट्टरानी होगी। उस निमित्त-

ज्ञानीके वचनोंपर तुम्हारे पिताने विश्वास किया। उसके अनुसार ही तुम्हारे पिता सुकेतुने कृष्णके साथ विधिसहित तुम्हारा व्याह कर दिया और तुम उनकी पट्टरानी हुई।" इस प्रकार अपना अन्य जन्मोंका हाल सुनकर सत्यभामा बड़ी प्रसन्न हुई। गुरुओंके कथनको सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होता?"

इसके बाद महारानी रुक्मिणी गणधर भगवान्‌को प्रणाम कर बोली—करुणासिन्धो, मेरे भी भवोंका हाल आप कहिए। गणधरने तब यों कहना आरंभ किया—

"इस सुन्दर जम्बूद्वीपके भारतवर्षमें मगध एक प्रसिद्ध देश है। उसके लक्ष्मी नाम गाँवमें सोम नामका एक धनी ब्राह्मण हो चुका है। उसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीमति था। वह बड़ी सुन्दरी और सौभाग्यवती थी। पर थी वह अभिमानिनी। एक दिन वह सब सिंगार सजकर अन्तमें केसरकी टीकी लगाकर अपना मुँह काचमें देख रही थी। इतनेमें तपोरत्न समाधिगुप्त नाम मुनि उसके यहाँ आहारके लिए आगये। उन्हें देखकर इस पापिनीने उनकी बड़ी निन्दा की। वे-शर्म नंगा न जाने कहाँसे आ गया। कभी नहाता-धोता नहीं। सारा शरीर मैला और महा घिनौना हो रहा है। कभी शरीर पर कोई सुगन्धित वस्तु नहीं लगाता। इस कारण शरीर कैसी बुरी बदबू मार रहा है। कोई पास बैठता तक नहीं—निराधार दुखी हो रहा है। और घर-घरपर भीख माँगता फिरता

है—शर्म भी नहीं आती। इस प्रकार खूब निन्दा कर घिनौनके मारे उसने उल्टी करदी। इस पापके फलसे उसके कोढ़ निकल आया। उसपर बैठती हुई मक्खियोंके काले काले छत्ते पाप-समूहसे जान पड़ते थे। इस कोढ़से उसकी नाक और उँगलियाँ गल गईं। सिरके सब केश खिर गये। शरीरकी दुर्गन्धसे कोई उसे पास न बैठने देता था। आगमें तपाई हुई लोहेकी पुतलीकी तरह वह तीव्र दुःख भोग रही थी। एक क्षणभरमें उसकी सब रूप-सुन्दरता और नई जवानी नष्ट होगई। पापका ऐसा भयानक उदय आया कि उसे मांगनेपर भी कोई रोटीका टुकड़ा न देता था। महान् चारित्रके धारक साधुओंकी निन्दा करनेवाला पापी पुरुष सचमुच बड़ा ही दुःख उठाता है। पापके उदयसे कुत्तीकी तरह दुतकारी हुई लक्ष्मीमति एक टूटे-फूटे झोपड़ेमें रहकर दिन काटने लगी। आखिर वह बड़े ही आर्त्तध्यानसे मरी। मरकर वह अपने ही पतिके घरमें छछूँदरी हुई। एक दिन वह सोमकी छाती परसे दौड़ती हुई जा रही थी। सोमने उसे पूँछ पकड़कर इस जोरसे आँगनमें पटका कि वह तुरत मर गई। मरकर वह इसी गाँवमें गधी हुई। पहले जन्मका जो उसे अभ्याससा पड़ रहा था उससे वह वारवार सोमके घरमें घुसने लगी। विद्यार्थियोंने उसे पत्थर-लकड़ी वगैरहसे मार मारकर उसका एक पाँव ही तोड़ डाला। वह बड़ी दुखी हो गई। एकवार वह जाती हुई कुएमें गिर पड़ी। बड़े कष्टसे उसने वहाँ प्राण छोड़े। वह फिर सूअर हुआ। उसे निर्दयी कुत्तोंने खालिया।

मंदिर नाम गाँवमें मत्स्य नामका एक कहार रहता था। उसकी स्त्रीका नाम मंडूका था। वह ब्राह्मणीका जीव सूअरके भवसे मरकर इसी मंडूकाके दुर्गन्धा नाम लड़की हुई। लोग इसे पापके उदयसे पूतिका नामसे पुकारने लगे। इसे पैदा होनेके बाद कुछ ही दिनोंमें इसके माता-पिता भी मर गये। तब इसकी आजीने बड़े कष्टसे इसे पाला-पोसा। धीरे धीरे यह समझदार होगई।

विचिकित्स्या नाम नदीके किनारे एकदिन वे ही समाधि-गुप्ति मुनि कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे। काललब्धिसे पूतिकाने उन्हें देखा। प्रणाम कर वह उनके पास शान्त-मन होकर खड़ी रही और मुनिको जो डाँस-मच्छर काट रहे थे उन्हें अपने कपड़ेसे दया कर उड़ाने लगी। इसी तरह सारी रात वीत गई। सवेरे जब ध्यान पूरा कर जैनतत्वज्ञ मुनिराज बैठे तब पूतिका भी उनके सुख देनेवाले चरणोंके पास बैठ गई। मुनिने उसे धर्मोपदेश दिया। वे बोले—जिस धर्मका जिनभगवान्‌ने उपदेश किया, उसका मूल जीवदया है। वह सत्य-शौच-पवित्रता-संयम आदि गुणोंसे युक्त है। स्वर्ग-मोक्षका कारण है। उसे देवतागण पूजा करते हैं। तू उसे धारण कर। पूतिकाने पवित्र धर्मका उपदेश तथा अपने दुःख-पूर्ण भवान्तरोंको सुनकर मद्य-मांस-मधु और पाँच उदुम्बर फलका त्याग कर अणुव्रतोंको धारण कर लिया।

इस प्रकार व्रत ग्रहण करके पूतिका उन सुखके कारण मुनिको बड़े विनयसे नमस्कार कर चली गई ।

एक दिन कुछ आर्यिकाओंका संघ तीर्थयात्राके लिए जा रहा था । पूतिका भी उसके साथ होगई । उसके साथ साथ अन्य गाँवोंमें घूमती-फिरती अपने व्रतोंका यह पालन करने लगी । उस संघके आश्रयमें इसे भोजन वगैरहका कभी कोई कष्ट न हुआ । जो कुछ प्रासुक खानेको मिलता उसे खाकर यह रह जाती थी । इस प्रकार सुखसे यह अनेक जगह जिनवन्दना करती हुई एकवार किसी पर्वतकी गुहामें जाकर ठहरी और व्रत-उपवास करने लगी । वहाँ इसे एक पूर्वजन्मकी बड़ी प्यारी सखीका समागम होगया । उसने इसकी बड़ी तारीफ की । अन्तसमय पूतिका संन्याससे प्राणोंको छोड़कर अच्युतेन्द्रकी देवाङ्गना हुई । वहाँ यह ५५ पल्य-तक खूब सुख भोगती रही ।

विदर्भदेशमें जो सुन्दर कुण्डलपुर है, उसके राजा वासव हैं । उनकी रानीका नाम श्रीमती है । पुण्यसे वह पूतिकाका जीव स्वर्गसे आकर इन्हीं राजा-रानीके तुम रुक्मिणी नाम प्रसिद्ध सौभाग्यवती और सुन्दरी पुत्री हुई हो ।

मंगल नाम नगरीका राजा भेषज था । उसकी रानी मद्री बड़ी गुणवती थी । उनके जो शिशुपाल नाम लड़का हुआ उसके तीन नेत्र थे । भेषजको उसके ललाटपर तीसरा नेत्र देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ । राजाने निमित्त-

ज्ञानीको बुलाकर पूछा–शिशुपालके इस तीसरे नेत्रका फल क्या है ? वह बोला–जिसे देखकर इसका यह नेत्र नष्ट होगा वही इसे मार डालेगा । एकदिन राजा भेषज अपनी रानी, पुत्र वगैरहके साथ कृष्णके देखनेको द्वारिका गया । वहाँ कृष्णको देखते ही शिशुपालका वह नेत्र नष्ट होगया । यह देख मद्री बड़ी चिन्तातुर हुई । उसने तब हाथ जोड़कर कृष्णसे कहा–प्रभो, मुझे पुत्रकी भीख दीजिए । उत्तरमें कृष्णने कहा–माता, शिशुपालके सौ अपराधतक उसे किसी प्रकारका भय नहीं है । कृष्णसे यह वर लाभ कर भेषज राजा वगैरह अपनी राजधानीमें लौट आये ।

शिशुपाल बालपनसे ही बड़ा प्रतापी था । उसने अनेक राजोंको जीतकर अपना बल और भी खूब बढ़ा लिया । इसके बाद उसकी महात्वाकांक्षा यहाँतक बढ़ गई कि वह कृष्णको जीतकर त्रिखण्डेश बननेकी इच्छा करने लगा । तेल न रहनेसे बुझते हुए प्रदीपकी शिखा जैसे कुछ देरके लिए तेज हो उठती है उसी तरह शिशुपाल भी पापसे बड़ा गर्विष्ठ होगया । इस तरह कुछ समय बीतने पर, पुत्री, तेरे पिता वासवराजने तेरा ब्याह शिशुपालके साथ कर देनेका विचार किया । यह सब देख-सुनकर झगड़ेखोर नारदने जाकर कृष्णसे कहा–प्रभो, विदर्भदेशमें कुण्डलपुरके राजा वासवके रुक्मिणी नामकी एक बड़ी ही सुन्दरी लड़की है । मैं उसके सम्बन्धमें ज्यादा क्या कहूँ, वह एक दूसरी देव-

कुमारी है। प्रभो, सच पूछो तो वह आपहीके योग्य है। अन्यके योग्य नहीं। क्योंकि मुकुट सिरपर ही शोभा देता है—पावोंमें नहीं। बुद्धिहीन, रुक्मिणीका पिता उसे मूर्ख शिशुपालको ब्याहना चाहता है। भला इससे बढ़कर और अन्याय क्या हो सकता है? कहीं बुद्धिमान् जन अपने तेजसे सब ओर प्रकाश फैलानेवाली मोतियोंकी मालाको बन्दरके गलेमें पहराते हैं? झगड़ेके मूल नारद द्वारा यह सब हाल सुनकर फिर कृष्णकी क्या पूछो; वे क्रोधके मारे जल उठे। उसी समय इन्होंने अपनी सब सेनाको लेकर शिशुपालपर चढ़ाई करदी। कृष्णने शिशुपालकी कोई सौ अपराधको सह लिया, पर जब वह बहुत ही उद्धत होने लगा तब कृष्णको उसका दमन करना ही पड़ा। इस तरह उसे मारकर कृष्णने तुम्हारे साथ ब्याह किया और बड़े आनन्द उत्सवसे तुम्हें अपनी पट्टरानी बनाया। यह जानकर हे पुत्री, कभी रत्नत्रय पवित्र साधुओंकी निन्दा न करनी चाहिए।" इस प्रकार वरदत्त गणधर द्वारा अपना पूर्वभवका हाल सुनकर रुक्मिणी बड़ी सन्तुष्ट हुई।

इसके बाद कृष्णकी तीसरी पट्टरानी जाम्बवती गणधरको प्रणाम कर बोली—नाथ, मेरे भी पूरव जन्मका हाल कहनेकी कृपा करें। सुनकर गणधरदेवने यों कहना शुरू किया—

"इस मनोहर जम्बूद्वीपमें मेरुके पूर्वविदेहमें पुष्कलावती नाम एक देश है। उसके वीतशोक नाम पुरमें एक दमक

नामका महाजन हो चुका है । पुण्यसे उसे धन-दौलत, कुटु-म्ब-परिवार आदिका सभी सुख प्राप्त था । उसकी स्त्री देव-मती थी । इनके देविला नाम एक लड़की थी । उसकी शादी किसी वसुमित्र नाम धनिकके लड़केके साथ की गई थी । कर्मोंके उदयसे वह विधवा हो गई । संसार-देह-भोगोंसे वैराग्य हो जानेसे उसने जिनदेव नाम मुनिके पास दीक्षा ग्रहण करली । तप करके अन्तमें वह मरकर मेरुपर्वतके नन्दन वनमें व्यंतरदेवी हुई । वह बड़ी रूपवती थी । वहाँ वह ८४ हजार वर्ष सुख भोगती रही ।

पुष्कलावती देशमें विजयपुर नाम एक शहर है । वहाँ मधुषेण नाम एक महाजन रहता था । उसकी स्त्री बन्धुमती थी । वह व्यन्तरीका जीव वहाँसे आकर इनके यहाँ बन्धुयशा नाम बड़ी खूबसूरत कन्या हुई । वह अपनी प्रियसखी जिनदेव सेठकी लड़की जिनदत्ताके साथ खूब व्रत-उपवा-सादि तपकर अन्तमें संन्याससे मरकर सौधर्मस्वर्गमें कुबेरकी देवाङ्गना हुई । वहाँकी आयु पूरी कर वह पुण्डरीकिणी नगरीमें वज्र नामके महाजनकी स्त्री सुभद्राके सुमति नाम लड़की हुई ।

एकदिन सुव्रता आर्यिका उसके घर आहारके लिए आई । सुमतिने नवधा-भक्तिके साथ उसे सुखका कारण पवित्र आहार कराया । आर्यिकाने उसे रत्नावली नाम व्रत करनेको कहा । सुमतिने उस व्रतको किया । अन्तमें वह मरकर

पुण्यसे ब्रह्मस्वर्गमें देवी हुई। वहाँ वह चिरकालतक सुख भोगती रही।

अपने इस भारतवर्षके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर-श्रेणीमें जो जांवव नाम शहर है, उसके राजा भी जांवव विद्याधर हैं। उनकी रानी जम्बूषेणा है। वह सुमतिका जीव ब्रह्म-स्वर्गसे आकर इन्हीं राजा-रानीके तुम जाम्बवती नाम बड़ी सुन्दर लड़की हुई।

पवनवेग विद्याधरकी श्यामला नाम स्त्रीके नमि नाम एक पुत्र था। सम्बन्धमें वह तुम्हारे मामाका लड़का भाई था। एक दिन वह ज्योतिं नाम बागमें जाकर तुम्हारे पितासे बोला— मामाजी, जाम्बवतीका व्याह आप मेरे साथ कर दीजिए। और यदि आप ऐसा न करेंगे तो मैं जबरन जाम्बवतीको छीनकर ले-उड़ूँगा। सुनकर तेरे पिताको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने तब अपनी विद्याके बलसे जहरीली मक्खियोंको नमिके काटनेको उड़ाया। किन्नर नाम शहरका राजा यक्ष-माली विद्याधर भी नमिका मामा था। वह नमिपर बड़ा प्यार करता था। उस समय उसने आकर नमिको उन म-क्खियोंसे बचाकर तुम्हारे पिताकी विद्याको नष्ट कर दिया। यह सुनकर तुम्हारा भाई जम्बूकुमार समुद्र-समान गर्जता हुआ आया और यक्षमालीकी विद्याको उसने काट डाला। जम्बूकुमारके द्वारा इस प्रकार अपमानित होकर यक्षमाली सूर्योदयसे नष्ट हुए अन्धकार की तरह डरकर न जाने कहाँ

भाग गया। झगडालु नारदने यहाँका भी सब हाल देख-सुन-कर कृष्णसे जाकर कहा—धराधीश दामोदर, तुम्हारे लिए मैं एक बड़े अच्छे समाचार लाया हूँ। वह यह कि जांबव नगरके जो विद्याधर जांबवराज और जम्बूषेणा महारानी हैं, उनके जाम्बवती नाम देवाङ्गनासी सुन्दरी लड़की है। उसका वह अलौकिक रूप नेत्रोंको बड़ा ही आनन्दित करता है। प्रभो, वह राजकुमारी आपहीके योग्य है। नारद द्वारा यह हाल सुनकर उसपर मोहित हुए कृष्णने उसी समय विजयार्द्धपर डेरा जा लगाया। तुम्हारे पिता भी कोई साधा-रण मनुष्य न थे जो कृष्ण उनपर झटसे विजय पा-लेते। कृष्णने उनका सहसा जीतलेना कठिन समझकर एक दूसरी युक्ति की। वे उपवासकी प्रतिज्ञा कर रातमें कुशासनपर विद्या साधनेको बैठे। कृष्णका यक्षिल उर्फ दयालु नामका एक पूर्वज-न्मका भाई जिनप्रणीत, स्वर्गमोक्षका साधन तपकर महाशुक्र नाम स्वर्गमें बड़ा वैभवशाली देव हुआ था। पूर्वजन्मके स्नेहवश वह कृष्णको विद्या-साधनकी विधि बतलाकर अपने स्थान चला गया। कृष्ण इससे बड़े सन्तुष्ट हुए। इसके बाद उन्होंने उस देवकी बताई विधिके अनुसार मंत्र द्वारा एक बड़ा भारी तालाब बनाया। उसमें सर्प सेजपर बैठकर फिर उनने कोई चार महीने तक 'सिंहवाहिनी' और 'गरुड़-वाहिनी' नाम दो विद्याओंकी साधना की। सब कार्योंको सिद्ध करदेनेवाली वे दोनों ही विद्यायें कृष्णको

सिद्ध होगई । कृष्णने उन विद्याओंपर चढ़कर रणभूमिमें जांववराजके साथ युद्ध किया और युद्धमें जय भी कृष्णकी हीकी हुई । पुत्री, इसके बाद कृष्ण बड़े सत्कारके साथ तुम्हें अपनी राजधानीमें लाकर महादेवीके श्रेष्ठ पदपर नियुक्त किया । पूर्व पुण्यसे जीवोंको क्या प्राप्त नहीं होता ? " जाम्बवती गणधर द्वारा अपना सब हाल सुनकर बड़ी सन्तुष्ट हुई । मानों जैसा उसने सब हाल अपनी आँखों ही देखा हो । उसने तब बड़ी भक्तिसे गणधर भगवान्‌को प्रणाम किया ।

इसके बाद कृष्णकी सुसीमा रानी उन्हें नमस्कार कर बोली—प्रभो, मेरे भी पूर्व भवोंका हाल कहिए । परोपकार-रत गणधर बोले—" धातकीखण्ड-द्वीपकी पूरब दिशामें मंगलावती देशमें रत्नसंचय नाम श्रेष्ठ नगर है । उसके राजा विश्वदेव थे । उनकी रानीका नाम अनुंधरी था । अयोध्याके राजाके साथ विश्वदेवका एकवार युद्ध हुआ । उसमें विश्वदेव मारे गये । मंत्रियों वगैरहके मना करनेपर भी मोहकी मारी विश्वदेवकी रानी आगमें जलकर सती होगई । वह मरकर अपने कर्मोंके अनुसार विजयार्द्ध पर्वतपर व्यन्तरदेवी हुई । वहाँ उसने दस हजार वर्षकी आयु पाई । उतनी आयु पूरीकर वह वहाँसे भी मरी ।

इस जम्बूद्वीपके भारतवर्षमें एक शालि नाम गाँव था । उसमें यक्ष नामका एक गृहस्थ रहता था । उसकी स्त्री देवसेना थी । वह व्यन्तरीका जीव मरकर इनके यक्षदेवी नाम लड़की

हुई । एक दिन इसके घरपर महीनाके उपवासे धर्मसेनमुनि आहारके लिए आये। यक्षदेवीने बड़ी भक्तिसे उन्हें पवित्र आहार कराया । इसके बाद उसने उन गुणगुरु मुनिराजको नमस्कार कर उनके द्वारा कुछ सुखके कारण व्रत ग्रहण किये ।

एक दिन यक्षदेवी जंगलमें क्रीड़ा करनेको गई हुई थी । इतनेमें घनघोर बादलोंसे आकाश घिर गया । बिजलियाँ कड़कने लगीं । यक्षदेवी बेचारी डरकर भागी और जाकर एक पर्वतकी गुफामें घुस गई । उस गुफामें एक महा भयंकर अजगर रहता था । उसने यक्षदेवीको काट लिया । मरकर वह दानके पुण्यसे मध्यम भोगभूमिके हरिवर्ष नाम क्षेत्रमें पैदा हुई । वहाँ उसने भोगभूमिके उत्तम उत्तम सुखोंको आयुपर्यन्त भोगा । वहाँकी आयु पूरी कर वह भवनवासी देवोंके स्थानमें नागकुमारकी देवी हुई ।

जम्बूद्वीपमें महा मेरुकी पूरब दिशामें जो मनोहर पुष्कलावती देश है, श्रेष्ठ सम्पदाके घर उस देशमें पुण्डरीकिणी नाम नगरी है । उसके राजाका नाम अशोक है । उनकी रानी सोमश्री है । वह नागकुमारदेवीका जीव वहाँ अपनी आयु पूरी कर इन राजा-रानीके सुकान्ता नाम लड़की हुई । वह वैराग्य होजानेसे जिनदत्ता आर्यिकाके पास दीक्षा लेगई । उसने कनकावली व्रत कर खूब तपस्या की । अन्तमें संन्यास-

सहित मरकर वह माहेन्द्र नाम स्वर्गमें देवाङ्गना हुई। वह पञ्चेन्द्रियोंके योग्य उत्तम उत्तम भोग भोगती रही।

इस सुन्दर भारतवर्षमें सुराष्ट्र देशके जो गुणशाली वर्द्धन नाम राजा हैं, उनकी रानीका नाम ज्येष्ठा है। वह सुकान्ताका जीव स्वर्गसे आकर इन राजा-रानीके तुम सुसीमा नाम गुणोज्ज्वल पुत्री हुई हो। इस समय तुम कृष्णकी महारानी होकर बड़ा सुख भोग रही हो। जिनधर्मके प्रसादसे सब कुछ प्राप्त हो सकता है।" इस प्रकार आनन्दित करनेवाला अपना हाल सुनकर सुसीमा बड़ी प्रसन्न हुई।

इसके बाद कृष्णकी पाँचवीं पट्टराणी लक्ष्मणाने गंभीरमना, गणधर भगवान्‌को भक्तिसे नमस्कार कर अपने भवोंका हाल पूछा। करुणासे सहृदय गणधरदेव बोले—

"जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहमें जो पुष्कलावती देश है, उसके अरिष्ट पुरके राजा वासव थे। उनकी रानीका नाम वसुमती था। उनका पुत्र सुषेण बड़ा गुणवान् था। एकबार कोई ऐसा कारण बन गया जो वासवराज सागरसेन मुनिके पास दीक्षा लेकर मुनि होगये। सत्य है संसारसे डरे हुए गुणशाली भव्यजनोंको धन-सम्पदाके छोड़नेमें कोई न कोई कारण मिल ही जाता है। उनकी रानी वसुमती पुत्र-मोहसे घरहीमें रह गई। राजाके मरे बाद उसके कोई ऐसा पापका उदय आया कि जिससे वह दुराचार-रत होगई। मरकर इस पापसे वह जंगलमें भीलिनी हुई। एकबार उस जंगलमें कामजयी, चारण

ऋद्धिधारी नन्दिवर्धन नाम मुनिके उसे दर्शन होगये। भीलिनीने बड़े भावोंसे उन मुनिकी वन्दना कर उनके द्वारा श्रावकोंके व्रत ग्रहण कर लिये। आयुके अन्त मरकर वह व्रतके प्रभावसे आठवें स्वर्गके इन्द्रकी नाचनारी हुई। अपनी खूबसूरतीसे वह देवोंके मोहित करनेकी एक औषधि थी।

इस भारतवर्षके विजयार्द्धपर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें चन्द्रपुर नाम जो प्रसिद्ध शहर है, उसके राजा महेन्द्र थे। उनकी रानीका नाम अनुंधरी था। वह भीलिनीका जीव स्वर्गसे आकर इन्हीं राजा-रानीके कनकमाला नाम पुत्री हुई। उसे विद्या सिद्ध थी। उसका जब स्वयंवर हुआ तब उसने हरिवाहन नाम राजकुमारको बड़े प्रेमसे वरमाला पहराई।

एक दिन कनकमाला जिनभवनोंसे सुन्दर सिद्धकूट चैत्यालयकी यात्रा करनेको गई। वहाँ श्रीयमधर मुनिकी भक्तिसे वन्दना कर उसने अपने भवोंका हाल सुना। मुनिने उससे मुक्तावली नाम व्रत करनेको कहा। उसने उस व्रतका पालन कर अन्तमें समाधिसे प्राणोंको छोड़ा। मरकर वह पुण्यसे सनत्कुमार इन्द्रकी इन्द्राणी हुई। वहाँ वह नव पल्यतक दिव्य सुखोंको भोगती रही। स्वर्गसे आकर वह भारतवर्षके सुप्रकार पुर नाम शहरके राजा शंवरकी रानी ह्रीमतीके तुम लक्ष्मणा नाम अनेक लक्षणोंकी धारक पुत्री हुई। तुम्हारे जो श्रीपद्म और ध्रुवसेन नाम दो बड़े भाई हैं, गुणोंमें उनसे तुम बड़ी हो। जिनवचनोंपर तुम्हें बड़ा विश्वास है। किसी

पवनवेग नामके विद्याधरने तुम्हारी त्रिभुवन-श्रेष्ठ सुन्दरताकी कृष्णसे जाकर तारीफ की। कृष्णने उसके द्वारा सब बातें सुनकर उसीको तुम्हें लानेको भेजा। लाकर उसने बड़े ठाट-बाटसे तुम्हारा ब्याह कृष्णसे कर दिया। इसके बाद कृष्णने तुम्हें पट्टरानीके महा पदपर नियुक्त किया। देवी, पुण्यसे क्या नहीं होता।" लक्ष्मणा अपना हाल सुनकर बड़ी आनन्दित हुई। उसने फिर गणधर भगवान्के चरणोंको नमस्कार किया।

इसके बाद कृष्ण गणधरसे बोले—हे करुणासिन्धो, हे निर्मल गुणोंके मन्दिर, अब आप गौरी, गान्धारी और पद्मावतीके भवोंको और कह दीजिए। सुनकर गणधरने पहले गान्धारीका हाल कहना शुरू किया। वे बोले—"इस जम्बूद्वीपमें जो सुकोसल नाम सब श्रेष्ठ सम्पदासे भरा-पुरा देश है, उसकी राजधानी अयोध्याके राजाका नाम रुद्र था। उनकी गुणवती रानीका नाम विनयश्री था। दान-पूजा-व्रत-उपवासादि पर उसका बड़ा प्रेम था। पुण्यसे उसने एकवार सिद्धार्थवनमें बुद्धार्थ मुनिको भक्तिसे आहार कराया। उस दानके फलसे वह मरकर देव कुरु भोगभूमिमें उत्पन्न हुई। चिरकाल वहाँ सुख भोगकर वह ज्योतिर्लोकमें चन्द्रकी चन्द्रवती नाम स्त्री हुई।

जम्बूद्वीपके विजयार्द्धपर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें गगनवल्लभ एक शहर है। उसके राजा विद्युद्वेग थे और उनकी रानीका नाम

विद्युद्वेगा था। वह चन्द्रवतीका जीव ज्योतिर्लोकसे आकर इन राजा-रानीके सुरूपा नाम पुत्री हुई। इसका व्याह विद्या-पराक्रम आदि गुणोंके धारक नित्यालोक पुरके राजा महेन्द्रविक्रमके साथ हुआ। एक दिन ये दोनों पति-पत्नी मेरुपर्वतके चैत्यालयोंकी यात्रा करनेको गये। वहाँ विनीत नाम एक पवित्र चारण-मुनि विराजे हुए थे। प्रणाम कर इन्होंने उनके द्वारा धर्मका उपदेश सुना। उससे महेन्द्र-विक्रमको बड़ा वैराग्य हुआ और आखिर वह दीक्षा लेकर मुनि होगया। सुरूपा भी फिर सुभद्रा आर्यिकाके पास दीक्षा-लेकर साध्वी होगई। तप करके आयुके अन्तमें संन्यास-मरण कर वह सौधर्मस्वर्गमें देवी हुई। वहाँ एक पल्य-पर्यन्त वह सुख भोगती रही।

इस पवित्र भारतवर्षमें गंधार देशमें जो पुष्कलावती नाम शहर है, उसके राजाका नाम इन्द्रगिरि है। उनकी रानीका मेरुमती है। वह सुरूपाका जीव सौधर्मस्वर्गसे आकर इन राजा-रानीके गान्धारी नाम यह श्रेष्ठ सौभाग्यकी धारक पुत्री हुई। इसके पिताने इसका व्याह अपने किसी भानजेके साथ कर देना निश्चय किया था। नारदने यह हाल तुमसे आकर कहा। नारदकी बातें सुनकर गान्धारीपर मोहित हुए तुमने सेना लेकर इन्द्रगिरिपर चढ़ाई करदी और युद्धमें उन्हें हराकर गांधारीको तुम ले आये। इसके बाद तुमने पट्टरानीके पद पर नियुक्त कर इसका मान बढ़ाया। ”

कृष्ण, अब गौरीका हाल सुनो । "इसी जम्बूद्वीपमें नग-पुर नाम जो बड़ा भारी शहर था, उसके राजा हेमाभ थे । उनकी रानीका नाम यशस्वती था । सुन्दरता-सौभाग्य-लावण्य-पुण्य आदि रत्नोंकी वह पृथ्वी थी । उसे एकवार यशोधर नाम आकाशचारी मुनिके दर्शन करनेसे पूर्व-जन्मका ज्ञान होगया । उसके पतिके पूछनेपर वह बोली—" धातकीखण्डद्वीपके मेरुकी पश्चिमदिशामें विशाल विदेहदेशमें शोकपुर नाम नगर था । उसमें आनन्द नाम एक महाजन रहता था । उसकी स्त्रीका नाम नन्दयशा था । एकदिन नन्दयशाने अमितसागरमुनिको बड़ी भक्तिसे आहार कराया । दानके प्रभावसे उसके घरपर पञ्चाश्चर्य हुए । आयुके अन्त वह साध्वी मरकर पुण्यसे उत्तरकुरु भोगभूमिमें उत्पन्न हुई । वहाँकी आयु पूर्णकर वह भवनवासी इन्द्रकी देवाङ्गना हुई । वहाँसे आकर वह केदारपुरके राजाकी लड़की मैं यशस्वती हुई । पूर्व पुण्यसे पिताजीने मेरा व्याह आपसे कर दिया ।" अपनी स्त्रीका हाल सुन हेमाभ बड़ा सन्तुष्ट हुआ । इसके वाद एकवार कमललोचनी यशस्वतीने सिद्धार्थवनमें सागरदत्त मुनिकी वन्दना कर उनके उपदेशसे कुछ व्रत-उपवास लिये । तप करके आयुके अन्त मरकर वह सौधर्मस्वर्गमें देवी हुई । वहाँ वह बहुत कालतक सुख भोगती रही ।

इस जम्बूद्वीपकी कौशाम्बी नगरीमें सुमति नाम एक बड़ा भारी धनी सेठ रहता था । उसकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था ।

वह यशस्वतीका जीव सौधर्मस्वर्गसे आकर इन सेठ-सेठा-नीके धार्मिकी नाम धर्म-कर्म-रत पुत्री हुई। धार्मिकीने जिनमती आर्यिकाके पास जिनगुणसम्पत्ति नाम व्रत लिया। आयुके अन्त मरकर वह व्रत-प्रभावसे शुक्रस्वर्गमें देवाङ्गना हुई। वहाँ उसने बहुत कालतक दिव्य सुखोंको भोगा। वहाँसे आकर वह इस भारतमें वीतशोक नाम पुरके राजा मेरुचन्द्रकी रानी चन्द्रवतीके प्रसिद्ध सुन्दरता आदि गुणोंकी धारक यह गौरी नाम पुत्री हुई। विजयपुरके राजा विजयनन्दनने फिर लाकर बड़े ठाट-बाटसे इसका ब्याह तुम्हारे साथ कर दिया। तुमने इसे पट्टरानीके उच्च पदपर नियुक्त किया।"

कृष्ण, सुनिए। अब तुम्हें पद्मावती महादेवीके भवोंका हाल कहा जाता है। यह कहकर गणधर बोले—"उज्जैनके राजा विजयकी रानीका नाम अपराजिता था। उसके विजयश्री नाम लड़की हुई। वह बड़े उज्ज्वल गुणोंकी धारक थी। राजा-शील-दान-पूजा-व्रतरूपी पवित्र जल-प्रवाह द्वारा उसने हुई। इसब मैल धोडाला था—उसका हृदय बड़ा पवित्र था। कर देना नाम शहरके राजा बुद्धिमान् हरिषेणके साथ उसका कहा। [illegible]सी ठाट-बाट और विधिसहित ब्याह हुआ। सेना ले[illegible]दिन विजयश्रीने तपस्वी समाधिगुप्त मुनिको बड़ी गांधार[illegible]से आहार कराया। आयुके अन्त मरकर वह दानके प्रभा-पर [illegible]मवत नाम जघन्य भोगभूमिमें जाकर पैदा हुई। वहाँ [illegible] बहुत कालतक इच्छित सुखोंको भोगा। वहाँसे

मरकर वह चन्द्रमाकी रोहिणी नाम प्रिया हुई । वहाँ उसने एक पल्यतक सुख भोगा । वहाँसे आकर वह मगधदेशमें शाल्मलि गाँवके निवासी किसानोंके पटेल विजयदेवकी स्त्री देविलाके पद्मावती नाम लड़की हुई । उसने फिर वरधर्म मुनिकी वन्दना कर उनके द्वारा अजाने फ़लके न खानेका व्रत लिया । एकदिन पापी भीलोंने आकर शाल्मलि गाँवमें खूब लूट-खोंस की और लोगोंको बे-तरह मारा । बहुतसे लोग गाँव छोड़-छोड़कर घने जंगलमें भाग गये । बे-चारोंके पास वहाँ खानेको कुछ न था, सो भूखके मारे वे बड़ा कष्ट पाने लगे । उन्होंने भूख न सह सकनेके कारण विषबेलके फलों-को ही खालिया । उससे वे सब मर मिटे । उन लोगोंमें पद्मावती भी थी । पर उसने उन फलोंको न खाया । कारण अनजान फल खानेकी वह प्रतिज्ञा ले चुकी थी । सो वह वैसे ही भूखके मारे मर गई । सत्य है जो धीर लोग अपने व्रत पालनेमें दृढ़ मन रहते हैं वे प्राण जानेपर भी कभी व्रत-को नहीं छोड़ते । पद्मावती इस व्रतके प्रभावसे मरकर हेमवतकी जघन्य भोगभूमिमें जाकर उत्पन्न हुई । वहाँ उसने एक पल्यतक सुखोंको भोगा । वहाँसे आकर वह स्वयं-प्रभ नाम देवकी स्वयंप्रभ-द्वीपमें स्वयंप्रभा नाम बड़ी सुन्दर देवाङ्गना हुई । वहाँसे वह इस भारतमें जयन्तपुरके राजा श्रीधरकी रानी श्रीमतीके विमलश्री नाम लड़की हुई । उसका व्याह भद्रिलपुरके राजा मेघनादके साथ हुआ । वहाँ वह बड़े

सुखके साथ रही । एकदिन बुद्धिमान् मेघनादने धर्म नामक मुनिराजसे जिनप्रणीत पवित्र धर्मका उपदेश सुना । उससे उन्हें बड़ा वैराग्य हुआ । वे सब राज-काज छोड़कर मुनि होगये । तप करके आयुके अन्त वे संन्यास मरण कर पुण्यसे सहस्रारस्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए । इधर उनकी रानी विमलश्रीने भी पद्मावती नाम आर्यिकाके पास जिनदीक्षा ग्रहण करली । वह आचाम्लवर्द्धमान नाम दुःसह तप कर उसी सहस्रारस्वर्गमें मेघनादके जीव महर्द्धिक देवकी देवाङ्गना हुई । वहाँ वह बहुत कालतक सुखोंको भोगती रही । वहाँसे आकर वह इस भारतवर्षमें अरिष्टपुरके राजा हरिवर्माकी रानी श्रीमतीके वह पद्मावती नाम श्रेष्ठ रूप-सुन्दरता, सौभाग्य आदि गुण-रत्नोंकी धारक पुत्री हुई । स्वयंवरमें इसने रत्नमालाके द्वारा तुम सदृश त्रिखण्डेशको भी अपने वश कर लिया । तुमने फिर कृष्ण, इस पवित्र जिन-भक्तिरत देवीको मान देकर इसे अपनी प्रधान रानी बनाया ।"
इस प्रकार गणधरके मुख-कमलसे अपनी रानियोंका हाल सुनकर श्रीकृष्ण बड़े ही सन्तुष्ट हुए। उनकी सब रानियाँ भी अपना अपना हाल सुनकर बड़ी प्रसन्न हुईं । बड़ी भक्तिसे उन सबने गणधर भगवान्को नमस्कार किया । इनके सिवा वहाँ और जितने धर्मात्मा जन बैठे हुए थे वे भी इस धर्मामृतको पीकर बड़े सन्तुष्ट हुए । जिनधर्मको वे अब और

अधिक भक्तिके साथ पालने लगे। जहाँ गणधर-सदृश कृपा-सिन्धु महाज्ञानी स्वयं वक्ता हो वहाँ कौन धार्मिक न हो जायगा?

जिनकी देवोंके इन्द्र, चक्रवर्ती, चाँद-सूरज, विद्याधरों और राजों-महाराजों-ने बड़ी भक्तिसे पूजा की, जो भव्य जनोंको भव-समुद्रसे पार करनेमें एक दृढ़ जहाज-सदृश और गुणनिधि हैं वे त्रिलोक-चूड़ामणि नेमिजिन दोनों लोकमें सुख दें।

इति चतुर्दशः सर्गः।

पन्द्रहवाँ अध्याय।

प्रद्युम्नका हरण, विद्यालाभ और मातृ-समागम।

बलदेवने लोक श्रेष्ठ गणधर भगवान्‌को भक्तिसे प्रणाम कर प्रद्युम्न और शंभुकुमारकी भवान्तर-कथा सुननेकी इच्छा प्रगट की। वह इसलिए कि त्रिजगद्गुरुकी सभामें बैठे हुए अन्य भव्यजनोंके मनपर उन दोनोंके गुणोंका प्रकाश पड़े। सुनकर जग-हितकर्त्ता गणधर भगवान् बोले—"राजन्, मिथ्यात्वके पापसे संसारमें रुलते हुए जीवोंके अनन्त जन्म बीत गये। उन दुःखरूप जन्मोंसे कुछ लाभ नहीं। परन्तु जिन्होंने जिनप्रणीत धर्मलाभसे अपना जन्म पवित्र किया उनके जन्मका हाल मैं तुमसे कहता हूँ। सुनिए।

इस जम्बूद्वीपके भारतवर्षमें जो मगधदेश है, उस जिन-प्रणीत श्रेष्ठ धर्मसेयुक्त देशमें शालि नाम एक गाँव था। उसमें सोमदेव नामका ब्राह्मण रहता था। सोमदेवकी स्त्रीका नाम अग्निला था। इनके अग्निभूति तथा वायु-भूति नामके दो पुत्र हुए। ये दोनों भाई मिथ्याशास्त्र वेदके अच्छे विद्वान् थे। ब्राह्मण-कुलमें पैदा होनेका इन्हें बड़ा गर्व था। एक दिन ये दोनों भाई नन्दिवर्द्धन पुरको गये हुए थे। इन्होंने वहाँ जंगलमें पृथ्वीको पवित्र किये हुए संघसहित नन्दिवर्द्धन मुनिको देखकर बड़ी गालियाँ दीं। सत्य है दुष्ट दुराचारी लोग पवित्र

साधुओंको देखकर, चाँदको देखकर भौंकते हुए कुत्तोंकी तरह उनपर क्रोधित होते हैं। नन्दिवर्द्धन गुरुने उन दुष्टोंको अपनी ओर आते देखकर संघके मुनियोंसे कहा—आप लोगोंमें कोई इनके साथ न बोले, नहीं तो सारे संघको कष्ट सहना पड़ेगा। अपने आचार्यके इस प्रकार हित-मित-सुखरूप वचनोंको सुनकर सब मुनि मौनसहित ध्यानमें बैठ गये। उन सब मुनियोंको इस प्रकार मेरु-सदृश ध्यानमें निश्चल बैठे देखकर ये दोनों भाई उनकी हँसी-दिल्लगी उड़ाते हुए अपने गाँवको चल दिये। उधरसे जैनतत्वज्ञ एक सत्यक नाम निरभिमानी मुनि आहार करके आ रहे थे। ये ज्ञानलव-विदग्ध दोनों भाई उन्हें देखकर बोले—अरे ओ नङ्गे! ओ तपोभ्रष्ट! तूने, जिसमें बहुत पशु वध कर बलि दिये जाते हैं वह वेद-विहित यज्ञ तो कभी किया ही नहीं, तुझे नाना तरहके दिव्य सुखोंका स्थान स्वर्ग कहाँसे मिलेगा? सुनकर, जिनवचनरूप समुद्रके बढ़ानेवाले चन्द्रमा सत्यक मुनि उनसे बोले—ब्राह्मणो, तुम बड़े ही मूर्ख हो—अविचारी हो। भला, जरा तो विचार करो कि निरपराध, घास-तृणके खानेवाले पशुओंकी यज्ञमें बलि देकर, उनका मांस खाकर और शराब पीकर ही यदि स्वर्ग प्राप्त हो जाता है तो फिर नरक किस पापसे जायँगे? यदि पशुओंका मारना तुम्हारे यहाँ स्वर्गका कारण माना है तब तो भील आदि नीच-लोग, जो सदा जीवोंको मारा करते हैं, अवश्य ही स्वर्गमें जायँगे।

फिर व्रत करना, नहाना-धोना, गेरुए वस्त्र धारण कर संन्यासी बनना और एकादशी वगैरह करना, ये सब कर्म किसी भी कामके न रह जायँगे ? उस समय सत्यक मुनिकी युक्तियोंको जितने लोग सुन रहे थे उन सबने सत्य पक्षका समर्थन कर मुनिकी बड़ी तारीफ की। वे दोनों भाई मुनियोंकी इन युक्तियोंका कुछ भी उत्तर न दे सके। उन्हें वहाँ बड़ा ही अपमानित होना पड़ा। इस अपमानके कारण वे मुनिके जानी दुश्मन बन गये। उन्होंने इस अपमानका बदला लेना स्थिर किया। रातके समय क्रोधमें भरे हुए वे दोनों भाई तलवार लिये उस घने जंगलमें आये। सत्यक मुनि धीरमन होकर प्रतिमा-योग तप कर रहे थे। देखकर इन पापियोंने मारनेके लिए उनपर तलवार उठाई। स्वर्ण नाम यक्ष कुछ खास चिन्होंसे मुनिपर उपसर्ग जानकर उसी समय वहाँ आया और उन दोनों भाइयोंको उसने तलवार ..येके उठाये ही कील दिया। उन्हें अपने जी बचानेकी भी मुश्किल पड़ गई। सत्य है जो दुष्ट, पापी साधु पुरुषोंको कष्ट पहुँचाते हैं उनकी त्रिभुवनमें निन्दा होकर वे किन कष्टोंको नहीं पाते ? जब इनके माता-पिताको यह हाल सुन पड़ा तो वे बड़े दुखी हुए। बेचारे घबराकर उसी समय दौड़े दौड़े मुनिकी शरण आये और भगवन्, रक्षा कीजिए, बचाइए, कहकर उनके पाँवोंमें गिर पड़े। यक्षके भी उन सबने हाथ जोड़ दयाकी भीख माँगी। इसपर यक्षने कहा—

आप लोग यदि हिंसाधर्म छोड़कर जिनप्रणीत दयाधर्म स्वीकार करें तो मैं आपके पुत्रोंको छोड़ सकता हूँ। उन सबने तब डरकर, पर मायाचारीसे मुनिको नमस्कार कर श्रावकके योग्य जिनधर्म स्वीकार कर लिया। और जब यक्षने उनके लड़कोंको छोड़ दिया तब घरपर आकर उन दुष्टोंने सन्तुष्ट होकर अपने पुत्रोंसे कहा—बेटो, हमने जो जैन-धर्म ग्रहण कर लिया था वह तो कारणवश किया था। अब उसके रखनेकी कोई जरूरत नहीं। तुम उसे छोड़ दो। इस प्रकार माता-पिता द्वारा आग्रह किये जानेपर भी काल-लब्धि और पुण्यसे अग्निभूति और वायुभूतिका विश्वास श्रावकधर्म परसे जरा भी न उठा। इस कारण उनके मूर्ख माता-पिता तीव्र मिथ्यात्व-वश उनपर बड़े ही क्रोधित हो गये और इस क्रोधसे ही अन्तमें उन्हें कुगतिमें जाना पड़ा। और ये दोनों भाई पवित्र श्रावकधर्मकी आराधना कर सौधर्मस्वर्गमें पारिषद जातिके देव हुए। वहाँ इन्होंने धर्मके प्रभावसे पाँच पल्यतक दिव्य सुख भोगा।

इस जम्बूद्वीपके भारतवर्षमें जो कोशल देश है, उसकी राज-धानी अयोध्याके राजा अरिंजय बड़े धर्मात्मा और जिन-भक्ति-रत थे। वहाँ एक धर्मप्रेमी अर्हद्दास नाम सेठ रहता था। उसकी सेठानीका नाम वप्रश्री था। वे अग्निभूति और वायु-भूतिके जीव सौधर्मस्वर्गसे आकर इन सेठ-सेठानीके पूर्ण-भद्र और माणिभद्र नाम पुत्र हुए। अर्हद्दास सेठ इन पुत्रोंसे निश्चय और व्यवहार-नयसे युक्त धर्मकी तरह शोभित हुए।

एक दिन सिद्धार्थवनमें महेन्द्र नाम महामुनि आये । राजा अरिंजय, अर्हद्दास सेठ वगैरह सब मुनि-वन्दनाको गये । भक्ति-सहित नमस्कार कर उन सबने मुनि द्वारा धर्मका पवित्र उपदेश सुना । उपदेशका राजाके मनपर वड़ा प्रभाव पड़ा । वे विरक्त होकर उसी समय अपने अरिंदम नाम पुत्रको राज्य सौंपकर, जिनदीक्षा लेगये । परमेष्ठि-भक्ति-रत अर्हद्दास सेठ भी राजाके साथ मुनि होगये । उस समय अर्हद्दासके वड़े पुत्र पूर्णभद्रने उन मुनिको नमस्कार कर पूछा—मुनिश, मेरे पूर्व जन्मके माता-पिता इस समय कहाँ पर हैं ? कृपाकर आप कहिए । ज्ञानी महेन्द्र मुनिराज पूर्णभद्रसे बोले—महाभव्य पूर्णभद्र, सुनो । मैं सब हाल तुम्हें करता हूँ । जिनप्रणीत धर्मसे पराङ्मुख तुम्हारा पिता सोमदेव ब्राह्मण, नाना प्रकार पाप कर रत्नप्रभा नरकके सर्पावर्त नाम विलमें नारकी हुआ । वहाँ उसने वड़े ही दुःखोंको सहा । वड़े कष्टसे वहाँसे निकल कर वह काकजंघ नाम चांडाल हुआ है । और जो तुम्हारी माता अग्निला थी, वह कुलाभिमानके वश हो पापके उदयसे अनेक दुर्गतियोंमें भ्रमण करके इसी काकजंघके यहाँ बड़ी कठोर और अप्रिय आवाजवाली कुत्ती हुई है । वे दोनों इसी गाँवमें हैं । सुनकर पूर्णभद्र उसी समय उनके पास गया । उनपर दया कर उसने बड़े मीठे शब्दोंमें उन्हें प्रबोध दिया । इससे उन्हें उपशमसम्यक्त्व होगया । वह काकजंघ चाण्डाल अन्तमें संन्याससहित मरकर नन्दीश्वरद्वीपमें सारे

द्वीपका मालिक देव हुआ । इस कारण भव्यजनो, ध्यान रखिए कि धर्मसे श्रेष्ठ कोई वस्तु नहीं है । और जो वह कुत्ती थी, सो मरकर इसी जगह राजा अरिंदमकी रानी श्रीमतीके प्रबुद्धा नाम बड़ी सुन्दरी लड़की हुई । जब प्रबुद्धा प्रौढ़ हुई और उसका स्वयंवर किया गया तब वह वरमाळ लेकर स्वयंवरमंडपमें जा रही थी । उस समय उस सुवर्णयक्षने आकर उससे कहा—बेटी, तुझे क्या याद न रहा कि तू पूर्व जन्ममें पापके उदयसे काकजंघके घरमें कुत्ती हुई थी और तुझे पूर्णभद्रने प्रबोध दिया था। उसीके फळसे तो तू राजकुमारी हुई है । और अब इस ब्याहरूपी अशुभ कार्यमें क्यों फँस रही है ? यक्षके द्वारा इस प्रकार समझाई गई प्रबुद्धाको वैराग्य होगया । वह उसी समय प्रियदर्शना नाम आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर साध्वी होगई । जिनप्रणीत तप करके वह संन्याससहित मरण कर सौधर्मेन्द्रकी मणिचूला नाम सुन्दरता आदि गुणोंकी धारक देवी हुई । इधर पूर्णभद्र और मणिभद्र भी श्रावकव्रतका पालन कर इसी स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए । वहाँ वे [illegible] सागरतक [illegible] रहे । वहाँसे आकर वे दोनों [illegible] गये। [illegible] अपने वायु-सदृश [illegible] वर्षमें जो कुरुजांगल देश है, ठहरा देखकर उसे बड़ा [illegible] पुरके राजा अर्हद्दासकी रानी [illegible] जान पड़ा कि [illegible] काश्यपीके मधु और [illegible]व नाम दो रूपवान् पुत्र हुए।

एकदिन जिनभक्त अर्हद्दास राजा विमलप्रभ मुनिकी

वन्दना करनेको गया। बड़ी भक्तिसे नमस्कार-पूजा कर उसने मुनि द्वारा स्वर्ग-मोक्षका साधन जिनप्रणीत धर्मका उपदेश सुना। संसारके दुःखोंसे डरकर उसने सब राज्य-भार पुत्रोंको सौंपकर जिनदीक्षा ग्रहण करली। रत्नत्रयसे पवित्र होकर वह स्वपरका तारनेवाला होगया।

एकवार आमलकंठ नाम पुरका राजा कनकरथ कर्म-योगसे मधुराजकी सेवार्थ हस्तिनापुर आया। साथ ही उसकी स्त्री कनकमाला भी थी। मूर्ख मधु महा सुन्दरी कनकमालाको देखकर उसपर मोहित होगया और जबरन उसे उसने अपने महलमें रखली। काम बड़ा ही अन्यायी है, जिसके वश होकर राजे लोग भी परस्त्री-लंपट हो जाते हैं। बेचारा ... एक क्षुद्र राजा था, सो वह इस बलवान् मधुका कुछ न कर सका। तब वह स्त्रीके शोकसे अत्यन्त दुखी होकर जंगलमें चला गया। उसे एक द्विजटी नाम मिथ्या तापसी मिल गया। उससे दीक्षा लेकर वह महा-कठिन पञ्चाग्नितप करने लगा। अन्तमें मरकर वह उस कुतपके प्रभावसे ज्योतिश्चक्रदे-वोंमें धूमकेतु नाम देव हुआ। वहाँ योग्य-वैभव पाकर वह सुख भोगने लगा।

एकवार हस्तिनापुरमें विमलेन्द्र उसी समय उनके पास मधुराज और क्रीडाव उनकी वे मीठे शब्दोंमें उन्हें प्रबोध भक्तिसे नमस्कार-पूजा कर उन्होंने उन मुनिके द्वारा जिनप्रणीत दसलक्षण धर्मका उपदेश सुना। अपने

किये अन्यायपर बड़ा पश्चात्ताप होनेसे संसार-विषय भोगोंसे उन्हें बड़ा वैराग्य हुआ। राज्य-लक्ष्मीको छोड़कर वे दोनों भाई मोक्षकी साधन जिनदीक्षा लेकर मुनि होगये। जिनप्रणीत सत्य तत्वको जानकर वे दुःखोंके जलानेको दावा-नल-सदृश महा घोर तप करने लगे। उन्होंने माया-मिथ्या और निदान इन तीनों शल्योंसे रहित होकर चार आराधना-की आराधना शुरू की। अन्तमें संन्यास मरणकर वे महाशुक्र नाम स्वर्गमें देव हुए। वहाँ उन्होंने बहुत कालतक सुख भोगा। उनमें जो बड़ा भाई पूर्णभद्र या मधु था वह वहाँसे आकर पुण्यसे रुक्मिणी महारानीके प्रद्युम्न हुआ। बाल सूर्य-सदृश तेजस्वी और बड़ा ही रूपवान् तुम्हारा प्रद्युम्नकुमार कामदेव है और चरमाङ्गधारी—इसी भवसे मोक्ष जानेवाला है। प्रद्युम्न जन्मके दूसरे दिन अपनी माताकी गोदमें सुखसे सोया हुआ था। इसी समय प्रद्युम्नका मधुके भवका शत्रु कनकरथ, जो ज्योतिषी देवोंमें धूमकेतु नाम देव हुआ था, विमानमें बैठा हुआ आकाशमार्गसे जा रहा था। उसका विमान जब प्रद्युम्नके ऊपर आया तब वह आगे न बढ़कर वहीं ठहर गया। अपने वायु-सदृश शीघ्रगामी विमानको सहसा ठहरा देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। विभंगावधिज्ञा-नसे उसे जान पड़ा कि जिस कारण उसका विमान ठहर गया वह उसका शत्रु यहाँपर मौजूद है। कनकरथके भवमें इसी पापीने मेरी स्त्री कनकमालाको मुझसे जबरन हर लिया।

था। बड़ा अच्छा अब मौका मिला। मैं भी अब इसे बड़ी ही तकलीफ दे-देकर मारूँगा। वह क्रोधके मारे आगकी तरह जलने लगा। नीचे आकर अन्तःपुरके सब लोगोंको निद्रावश कर वह प्रद्युम्नको उठाकर चलता बना। जाकर उसने घने वृक्षोंसे अन्धकारमय खदिर नाम वनमें, जो एक बड़ी भारी शिला थी उसके नीचे उसे दाब कर आप शीघ्र ही न जाने किस ओर भाग गया। निर्दयी, पापी शत्रुको जब मौका हाथ लग जाता है तब वह दूसरोंको कष्ट देनेमें कोई कसर नहीं रख छोड़ता।

इसी समय विजयार्द्धकी दक्षिणश्रेणीमें स्थित मृगावती देशके मेघकूटपुरका राजा कालसंवर अपनी रानी कंचन-मालाके साथ विमानपर चढ़ा हुआ जिनप्रतिमाओंकी पूजन करनेको आकाशमार्गसे जा रहा था। वह इस खदिर-वनमें इतनी बड़ी भारी शिलाको हिलती-डुलती देखकर बड़े अचम्भेमें पड़ गया। नीचे आकर उसने चारों ओर देखकर बड़ी सावधानीसे उस शिलाको उठाया। उसके नीचे उसे एक बड़ा ही सुन्दर और सब श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त बालक देख पड़ा। उसने झटसे उस सूर्य-सदृश तेजस्वी बाल-कको उठा लिया। उसे उसके असाधारण चिह्नोंको देख-कर जान पड़ा कि वह कोई साधारण बालक नहीं है। उसने तब अपनी रानीसे कहा—प्रिये, देखो तो सही, यह बालक कैसा सुन्दर लोक-श्रेष्ठ है। जान पड़ता है कोई पूर्वजन्मका शत्रु इस

घोर वनमें इसे यहाँ शिलाके नीचे दाब गया है। प्रिये, लो तुम इसे अपना ही पुत्र समझो। सुनकर कंचनमाला बोली— नाथ, मैं इसे अपना बड़ा सौभाग्य मानती हूँ; परन्तु यदि आप इसे अपना युवरापद दें तो मैं इसे ले सकती हूँ।'एवमस्तु' कहकर कालसंवरने कंचनमालाके कानोंका सुवर्णपत्र निकाल कर उस बालकके बाँध दिया। इसके बाद वे पति-पत्नी उस पुण्यपुंज बालकको लेकर आनन्दित होते हुए मेघकूटपुर चले आये। आ-कर उन्होंने शहरके सजानेकी आज्ञा की। घर-घरके दरवाजोंपर रत्नोंके तोरण बाँधे गये। धुजायें लगाई गईं। सब ओर खुशीके गीत-गान होने लगे। मंगल बाजे बजने लगे। भिखारी—याचकोंको मुँहमागा दान दिया जाने लगा। सबने मिलकर जिनभगवानका महाभिषेक किया—पूजन की। इस प्रकार बड़े भारी उत्सवके साथ उस बालकका नामकरण संस्कार किया गया। उसका नाम रक्खा गया 'देवदत्त' *। पुण्यके उदयसे जीवोंको पग-पगपर मंगल प्राप्त होते ही हैं।

गुणवान् प्रद्युम्न अब कालसंवरके यहाँ सुखसे दिनपर दिन दूजके चाँद-समान बढ़ने लगा। उसके बाल-सुलभ खेलोंके देखकर माता-पिता, अन्य राजे-महाराजे तथा विद्या-धर-राजे वगैरह बड़े ही खुश होते थे—सबका मन वह मोह लेता था।

अब इधर द्वारिकामें रुक्मिणीकी हालत देखिए। जिस

* प्रद्युम्नका ही दूसरा नाम 'देवदत्त' है। उसका यह नाम कालसंवर राजाने रक्खा है। हम आगे सब जगह इसका 'प्रद्युम्न' नामसे ही उल्लेख करेंगे।

दिनसे प्रद्युम्नका हरण हुआ, उसके दुःखका कोई पार न रहा। मालती लतापर मानों हिम-कुहरा गिर पड़ा। वह पानी बरस जानेपर निस्सार हुई मेघमालाके समान दिनपर दिन दुबली, निर्बल होने लगी। चाँद रहित रातकी तरह उसकी सब शोभा-सुन्दरता नष्ट होगई। दावानलसे आग-सदृश गरम पर्वतकी तरह वह पुत्रके वियोग-शोकसे बड़ी सन्तप्त हुई। फल रहित लताके समान वह शोभाहीन होगई। रुक्मिणीको किसी प्रकारकी कमी न थी—सब सुख उसे प्राप्त था; तो भी वह बड़ी ही दुखी हो रही थी। सत्य है स्त्रियोंको पुत्र-वियोग-सदृश और कोई महा दुःख नहीं होता। प्रद्युम्नके इस सहसा वियोगसे कृष्ण, बलदेव तथा अन्य परिवारके लोगों और प्रजाको भी बड़ा ही दुःख हुआ। इस प्रकार कृष्णका सारा कुटुम्ब ही शोक-सागरमें आकण्ठ मग्न होगया। खाना-पीना-पहरना सबके लिए जहर होगया। इसी समय पुण्यके उदयसे वहाँ नारद आगये। उन्हें मान देकर कृष्णने प्रद्युम्नके हरे जानेका सब हाल कहा और उसका पता लगानेको प्रार्थना की। सुनकर नारद बोले—महाराज, सुनिए। चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं है। मैं आकाश-मार्गसे घूमता-फिरता पूर्वविदेहकी पुण्डरीकिणी नगरीमें चला गया था। वहाँ केवलज्ञान-भास्कर श्रीस्वयंप्रभ तीर्थंकर विराजमान थे। मैंने उन सुरासुर-पूजित भगवान्‌की वन्दना कर उनसे प्रद्युम्नका हाल पूछा था। उन्होंने उसके कई

जन्मोंका हाल कहकर कहा था कि "किसी पूर्वजन्मके वैरी देवने हरण कर प्रद्युम्नको एक घने वनमें छोड़ दिया था। विद्याधरोंका राजा कालसंवर बड़े प्रेमसे उसे अपने घर ले गया है। वह वहीं सुखके साथ बढ़ रहा है। अपने सुन्दर खेलोंसे नये माता-पिताका मन खूब खुश करता है। सब ज्ञान-विज्ञानमें होशियार होकर वह सोलह वर्ष बाद कई बड़ी बड़ी विद्याओंको प्राप्त करके आयगा। उस परम उदय-शाली कामदेव पुत्रके साथ सोलह वर्ष बाद नियमसे तुम्हारा समागम होगा। पुत्रके वैभव-पूर्ण समागमसे तुम बहुत आनन्दित होगे।" इस प्रकार सर्वज्ञ भगवान्के द्वारा प्रद्युम्नका हाल सुनकर मैंने तुमसे आकर कहा। इस कारण तुम चिन्ता छोड़कर सर्वज्ञके कहेपर विश्वास करो। नारद द्वारा पुत्रका हाल सुनकर श्रीकृष्ण रुक्मिणी आदि सभी सन्तुष्ट हुए। उनकी चिन्ता मिट गई।

उधर विजयार्द्धपर्वतपर कालसंवरके घर पुण्यसे प्रद्यु-म्नको किसी प्रकारकी कमी न थी। वह बड़े सुखसे वहाँ रहता था। धीरे धीरे बड़े होकर उसने जवानीमें पैर रक्खा। ज्यों ज्यों वह बड़ा होता गया त्यों त्यों उसकी बुद्धि, चतु-रता, ज्ञान आदि बढ़ते ही गये। अपने इन गुणोंसे उसने सब विद्याधरोंको मोह लिया। वह बलवान् भी बड़ा भारी था। और चरम-शरीरीके बलका ठिकाना भी क्या? वह स्वयं त्रिभुवनको मोहित करनेवाला कामदेव था। भला, फिर

उसकी सुन्दरता वगैरह किसे प्यारी न लगती । इत्यादि गुणोंका धारक और जिन-भक्ति-रत प्रद्युम्नकुमार बड़े सुखके साथ कालसंवरके यहाँ रहता था।

एकवार कालसंवरने सेना देकर प्रद्युम्नको लड़ाईपर भेजा। प्रद्युम्नने रणभूमिमें शत्रुसे घोर लड़ाई लड़ी । इस युद्धमें विजय प्रद्युम्नकी ही हुई । शत्रुको बाँध लाकर उसने अपने पिता कालसंवरके सामने रख दिया । कालसंवर उसकी यह वीरता देखकर बड़ा सन्तुष्ट हुआ। उसने प्रद्युम्नका नाना प्रकारके वस्त्राभरणोंसे खूब सत्कार किया और अपने सब पुत्रोंमें श्रेष्ठ उसे ही समझा। पुण्यात्माका कौन मान नहीं करता। उस समय प्रद्युम्नने शत्रुओंके नाश करनेवाले प्रताप और त्रिभुवनको मोहित करनेवाली उज्ज्वल कान्तिसे सूरज और चन्द्रमाकी शोभा धारण की । परम ऐश्वर्य-सम्पन्न वह, शत्रु और मित्र इन दोनोंका ही यथेष्ट दान-मानादिसे सत्कार करता था और इस कारण सत्पुरुष उसे कल्पवृक्ष समझते थे।

एकदिन-- कालसंवरकी रानी कञ्चनमाला सुन्दरताके घर इस कामदेवको देखकर बड़ी मोहित होगई। वह कामसे पीड़ित होकर हाव-भाव-विलास-विभ्रमादि द्वारा उसपर अपनी इच्छा प्रगट करने लगी। जन्मान्तरके प्रेम-सम्बन्धसे वह यहाँ भी विकार वश होगई। इतना करनेपर भी जब वह प्रद्युम्नको अपनेपर न लुभा सकी तब उसने सब लाज-

शर्म, भय, कुलीनता आदिको छोड़कर उससे कहा—कुमार, मुझे प्यार कर जीवन-दान दो। इसके उपलक्षमें मैं तुम्हें एक प्रज्ञप्ति नाम विद्या बतलाती हूँ, तुम उसे सिद्ध कर लो। हाय, जिसने पहले पुत्र-भावसे जिसका लालन-पालन किया वही माता अपने पुत्रपर बुरी इच्छा प्रगट करे, यह सब लीला पापी कामकी है। उसे धिक्कार है। प्रद्युम्नने अपनी माताके मनो-भावोंको जान लिया। उसने तब केवल विद्या-लाभकी इच्छासे वचनों द्वारा, न मनसे, कहा—अच्छा मैं तुम्हारा कहा स्वीकार करता हूँ। सुनकर तब कञ्चनमालाने उसे विद्या सिखला दी। कुमार उस अनेक सिद्धियोंकी देने-वाली दिव्य विद्याको सीखकर सिद्ध... चैत्यालय गया। पाप-नाशके कारण और ध्वजा आदिसे सुन्दरता धारण किये हुए उस चैत्यालयको देखकर वह बड़ा सन्तुष्ट हुआ। बड़ी भक्तिसे उसने चैत्यालयकी वन्दना की। वहाँ दो लोक-श्रेष्ठ आकाशचारी मुनिराज विराजमान थे। भक्तिसे उन्हें नमस्कार कर उनके द्वारा उसने जिनप्रणीत पवित्र धर्मका उपदेश और संजयंत मुनिका चरित्र सुना। इसके बाद वह प्रतिमाके सामने विधिपूर्वक विद्या सिद्धकर आनन्दसे अपने शहर लौट आया। उस विद्या-लाभसे कुमार साणपर चढ़ाये हुए उज्ज्वल मणिकी तरह दिप उठा। उस समयका कुमारका रूप त्रिभुवनकी स्त्रियोंके मनको मोहित करनेके लिए एक मोहिनीसा बन गया। रानी कञ्चनमाला कुमारकी उस रूप-सुधाको पीकर

बड़ी ही बे-चेन होगई। उसे खाना-पीना कुछ न रुचने लगा। कुमारके बिना वह विशाल महल उसे वनसा सूना जान पड़ने लगा। काम-पीड़ित होकर उसने अपनी इच्छा पूरी करनेके लिए कुमारसे बड़ी आरजू-मिन्नत की। अबकी बार प्रद्युम्नने उससे कहा—आप मेरी माता होकर मुझे ऐसा पाप करनेके लिए क्यों कह रही हैं, यह नहीं जान पड़ता। माँ, तुम नहीं जानती क्या, इस घोर पापसे अनन्त काल संसार-सागरमें बड़े बड़े दुःख उठाना पड़ते हैं। कुमारका यह रूखा उत्तर सुनकर कञ्चनमाला बोली—कुमार, यदि यही बात थी तो पहले तुमने क्यों मेरा कहना स्वीकार किया था ? और सुनो। मैं तुम्हारी माता भी नहीं हूँ। खदिर वनमें तक्षकशिलाके नीचे कोई तुम्हें दाब गया था। वहाँसे हम तुमको ले आये हैं। अब तुम्हारा मेरे पुत्र होनेका सन्देह भी जाता रहा। अधिक क्या कहूँ, मैं प्रार्थना करती हूँ, तुम मुझे प्यार कर सुखी करो। कञ्चनमाला काम-पीड़ित होकर इस प्रकार न जाने क्या क्या बका करी। प्रद्युम्न तो उसे बकती हुई ही छोड़कर झटसे निकल आया। कञ्चनमाला यह देख कर बड़ी ही हताश हुई। प्रद्युम्नके इस वर्तावपर उसे बे-हद क्रोध चढ़ आया। वह उसे बदनाम करनेकी इच्छासे नखों द्वारा अपना सब शरीर नोंच-नाचकर और कपड़े फाड़कर काल-संवरके पास पहुँची। उस सैकड़ों छल-कपटकी खान, पापिनी रानीने राजासे सिसकते सिसकते कहा—नाथ, सौ पु

त्रोंके होते भी तुम्हारी इच्छा न भरी और पुत्र चाहरूप वात-रोगसे तुम्हारा सिर घूम गया। सो न जाने किसके एक लड़केको और, जंगलमेंसे उठा लाये। कहीं दूसरेका जाया पूत भी अपना हुआ है। देखिए, जिसे मैंने इतने दिनोंतक अपने लड़कोंसे ज्यादा करके माना और पाला-पोसा, उस पापी, कामी और न जाने कहाँ पैदा हुए दुष्ट छोकरेने मेरी क्या दुर्दशा की है! (रोते हुए) हाय! उस दुराचारीने मेरी छातीपर अपने तीखे नखोंसे कैसे घाव कर दिये! नाथ, (कालसंवरकी छातीसे लगकर) वह बड़ा दुष्ट है। उसे मैं तो अब एक पल-भर भी अपने घरमें न रहने दूँगी। कञ्चनमालाके इस रोने-धोनेसे कालसंवर ठगा गया। रानीकी पाप-चेष्टाको न समझकर उस अविचारी मूर्खने क्रोधसे आग-सदृश लाल होकर अपने विद्युद्दंष्ट्र आदि सुतोंसे कहा—जाकर तुम प्रद्युम्नको इस तरह छुपे तौरसे मारडालो कि उसे कोई न जान पावे। वे सब तो पहले भी कुमारपर जले-भुने बैठे हुए थे और ऐसे ही समयकी राह देख रहे थे। अब और पिताकी आज्ञा मिल गई, तब फिर क्या कहना? पिताका कहा सरपर चढ़ाकर वे पाँच-सौ ही भाई खेलनेका बहाना बनाकर कुमारको एक बड़े घोर वनमें लेगये।

राजा लोग कोई काम करें उसके पहले उन्हें इतना विचार अवश्य कर लेना चाहिए कि यह कहनेवाला कैसा आदमी है? यह जो कुछ कह रहा है वह झूंठ है या सच?

यह इतना क्रोधित क्यों हुआ ? किसीने इसे कष्ट तो नहीं दिया ? अथवा लज्जा, भय, मान, लोभ आदिसे तो इसकी यह हालत नहीं हुई है ? या दूसरोंने लाँच वगैरह देकर तो इसे नहीं उकसाया है ? इतना विचार करके काम करनेवाले कभी ठगे नहीं जाते। मूर्ख, विचाररहित कालसंवरने पापिनी रानीके बहकानेमें आकर जो प्रद्युम्नके मारनेकी आज्ञा दी वह अच्छा नहीं किया । इस दोनों लोकमें दुःख देनेवाली मूर्खताको धिक्कार है ।

उस वनमें पहुँचकर उन दुष्ट भाइयोंने आगसे धधकता हुआ यमके मुँह-समान एक कुण्ड देखा । उसे देखकर बड़ा डर मालूम देता था । वे प्रद्युम्नसे बोले—भाई, बड़े लोग इस कुण्डके बारेमें कहते आये हैं कि धीर और कायरोंकी परीक्षा यहीं होती है । जो निर्भय होकर इस कुण्डमें घुस पड़ते हैं वे ही सच्चे धीर पुरुष हैं । कायर लोग इसमें नहीं घुस सकते । सुनकर पुण्यवान्, महा धीर-वीर कुमार सब सिद्धिके देनेवाले पञ्च नमस्कारमंत्रको याद कर बड़ी निर्भयताके साथ उस दुस्सह कुण्डमें झटसे कूद पड़ा । कभी कभी भावीके भरोसे सत्पुरुष भी अविचारसे काम कर बैठते हैं। उस कुण्ड-निवासिनी देवीने वहाँ कुमारका दिव्य वस्त्राभरणोंसे बड़ा आदर किया । सच है, पुण्यवानोंके लिए आग जल हो जाता है, समुद्र स्थल बन जाता है, विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्र बन जाता है, क्रूर सिंह, साँप, दुष्ट पुरुष, और

देवता वश हो जाते हैं और विघ्न सुखरूप हो जाता है। इस कारण सत्पुरुषोंको जिनप्रणीत दान-पूजा-व्रत-उपवास आदि-पुण्यकर्म करना चाहिए।

प्रद्युम्नको जलजानेके वदले उलटा महा वैभव युक्त आया देखकर उसके दुष्ट भाई वड़े आश्चर्यमें पड़ गये। वे फिर वोले—भाई, ये जो सामने मेंढ़के आकारके दो पर्वत हैं, सुना है कि उनके वीचमें वही पुरुष जा सकता है जो वड़ा वीर है। कायर–डरपोंक पुरुषकी वहाँतक पहुँच नहीं। प्रद्युम्न दौड़कर उन पर्वतोंके वीचमें जा खड़ा होगया। इतनेमें उसकी ऊपरकी ओर नजर गई तो वह क्या देखता है कि वे दोनों पर्वत उसके ऊपर गिर रहे हैं। उस वीरने तव उन पर्वतोंको अपने दोनों हाथोंसे गिरनेसे रोक दिया और आप उनके वीचमें वड़ी स्थिरता और निर्भीकतासे खड़ा रहा। उस वीर-चूड़ामणि प्रद्युम्नको इस तरह भुजाओंके वल ऐसे विशाल पर्वतोंको रोके हुए देखकर पर्वतकी देवता वड़ी खुश हुई। उसने आनन्दित होकर प्रद्युम्नको दिव्य वस्त्र और रत्नोंकी कुण्डलकी जोड़ी भेंट की और उसका वड़ा विनय किया। पुण्यवानोंके लिए कुछ असाध्य नहीं। यहाँसे निकले वाद उन दुष्टोंने प्रद्युम्नको वराह नाम पर्वतके भयानक विलमें जानेको कहा। प्रद्युम्न उस विलमें घुसने लगा कि एक अत्यन्त क्रूर, विकराल और प्रचण्ड सूअर लाल लाल आँखें किये, मुँह फाड़े और भयानक गर्जना करता हुआ उसके

ऊपर दौड़ा—जान पड़ा काल ही सूअरका शरीर लेकर उसके प्राणोंके हरनेको आया है। उसे पास आते ही प्रद्युम्नने एक बड़े जोरका उसके मुँहपर थप्पड़ जमाकर और दूसरे हाथसे एक ऐसी सिरपर जमाई कि वह तत्काल अधमरासा होगया। प्रद्युम्नकी इस प्रचण्ड हिम्मतको देखकर प्रसन्न हुए देवताने आकर बड़े विनय और भक्तिसे शत्रुओंको भय पैदा करनेवाला एक 'विजयघोष' नाम शंख और शत्रु-मत्स्योंको फँसानेवाला 'महाकाल' नाम जाल उसकी भेंट किया। इन दोनों महा लाभोंको लेकर प्रद्युम्न अपने भाइयोंके पास आगया।

थोड़ी दूर चलकर उन्हें कालगुहा नाम एक गुहा मिली। उन लोगोंने प्रद्युम्नको उसमें घुसनेके लिए कहा। प्रद्युम्न उसके भीतर निडर होकर चला गया। उसमें काल नामका एक राक्षस रहता था। वह महा बलवान् प्रद्युम्नको देखकर उलटा उसके सामने आया। भक्तिसे प्रणाम कर उसने एक वृषभ नाम रथ तथा रत्नका बना हुआ एक कवच प्रद्युम्न-की भेंट किया। इन दोनों चीजोंको लेकर प्रद्युम्न बाहर आगया।

यहाँसे थोड़ी दूर जाकर प्रद्युम्नने इसी विजयार्द्धपर्वत-पर देखा कि कोई विद्याधर एक दूसरे विद्याधरके दोनों पावोंको कीलकर चला गया है। उससे वह बेचारा बड़ा कष्ट पा रहा है। बटवेपर लगी हुई उसकी नजरसे प्रद्युम्न उसके

मनकी बात जानकर उस बटवेके पास गया। उसमेंसे बन्धन-मुक्त करनेवाली अँगूठी निकाल कर प्रद्युम्नने उसका अंजन उस विद्याधरकी आँखोंमें आँज दिया। वह उसी समय बन्धन-मुक्त होगया। खुश होकर उसने प्रद्युम्नको दिव्य 'सुरेन्द्रजाल', 'नरेन्द्रजाल' और 'पाषाणविद्या' इस प्रकार अनेक कामोंकी सिद्ध करनेवाली तीन विद्यायें भेंट कीं। जिसने प्राण बचाया उस प्राण बचानेवाले उपकारीका कौन बुद्धिमान् उपकार न करेगा।

अबकी बार अपने भाइयोंकी प्रेरणासे सरलमना, वीरश्रेष्ठ प्रद्युम्नने शेषनागके मन्दिरमें जाकर महाशंख पूर दिया। उसकी ध्वनि सुनकर नागकुमार अपनी देवाङ्गनासहित प्रद्युम्नके पास आया और प्रसन्न होकर उसने बड़े आदरके साथ एक दिव्य धनुष, नन्दक नाम तलवार और कामरूपिणी नाम एक अँगूठी देवदत्तको भेंट की।

यहाँसे निकल उसने कैथके एक बड़े भारी वृक्षको सहजहीमें खूब हिला दिया। उसमें रहनेवाली देवीने प्रद्युम्नको रत्नकी बनी हुई श्रेष्ठ एक जोड़ी खड़ाऊ प्रदान की। इस खड़ाऊके बल वह आकाशमें बड़ी अच्छी तरह चला जाता था।

यहाँसे चलकर प्रद्युम्न सुवर्णपादप नाम एक बड़े सुन्दर बागमें पहुँचा। वहाँ पाँच फणवाला साँप रहता था। उसने सन्तुष्ट होकर तपन, तापन, मोहन, विलापन और मारण ऐसे पाँच बाण बड़े आदर और प्रेमसे प्रद्युम्नको दिये। पुण्यके प्रभावसे कौन आदर नहीं करता।

एक घना क्षीरवन नामका बड़ा भारी बाग था । प्रद्युम्न इस बागमें गया । यहाँके एक बन्दरने रत्नोंकी कान्तिसे चमकता हुआ मुकुट, निर्मल औषधिमाला, मोती जिनपर लटक रहे हैं ऐसे तीन छत्र और गंगाकी तरंग-सदृश उज्ज्वल दो चँवर भेंट किये । पुण्यवानोंका बन्दर भी सहायक बन जाता है ।

यहाँसे प्रद्युम्न कदम्बमुखी नाम बावड़ीपर पहुँचा । यहाँ इसे पुण्यसे शत्रुओंके बाँध लेनेवाला दिव्य नागपाश नाम अस्त्र प्राप्त हुआ । प्रद्युम्नको उन लोगोंने ऐसे स्थानोंपर भेजा तो इसलिए था कि वह बे-मौत मर जाय । पर प्रद्युम्न मरनेके बदले उलटा अनेक लाभ प्राप्त कर उन स्थानोंसे लौटा । यह देखकर वे लोग मन ही मन प्रद्युम्नपर बड़े जल गये । दुष्टोंका यह स्वभाव ही होता है ।

अबकी बार प्रद्युम्नको मार डालनेकी इच्छासे वे बोले—भैया, अबतक तो जो कुछ तुमने किया वे सब साधारण बातें थीं—इनमें कुछ महत्त्व नहीं है । देखो, वह जो सामने पातालमुख नाम बावड़ी है, उसमें जो साहसकर कूद पड़ता है वह महावीर सब पृथ्वीका चक्रवर्ती सम्राट् बनता है । इस महा लाभके सामने अन्य लाभ कुछ गिनतीमें नहीं हैं । बुद्धिमान् प्रद्युम्न यह सुनकर उनकी दुष्टताको ताड़ गया । उसने तब प्रज्ञप्ति नाम विद्याको अपनासा रूप लेकर कूद जानेको कहा । प्रज्ञप्ति-विद्या इशारा पाकर प्रद्युम्नसा रूप धरकर झटसे उस

बावड़ीमें कूद पड़ी। प्रद्युम्न छुपकर देखने लगा कि अब वे लोग क्या करते हैं। भ्रमसे, प्रद्युम्नको बावड़ीमें गिरता देखकर उन पापियोंने ऊपरसे बड़ी बड़ी पत्थरकी शिलाओंसे वह सारी बावड़ी पूरदी। उनकी यह नीचता देखकर प्रद्युम्नको बहुत ही क्रोध चढ़ आया। उसने तब उन सबको नागपाशसे बाँधकर नारकोंकी तरह बावड़ीमें ओंधे मुँह लटका दिया और ऊपरसे एक बड़ी भारी शिला ढकदी। प्रद्युम्नने उन सबमें छोटे ज्योतिप्रभको नहीं बाँधा था। सो उसे इस घटनाकी कालसंवरको खबर कर आनेके लिए उसने मेघकूटपुर भेज-दिया और आप आकर शिलापर बैठ गया। पापी लोग नाना-तरहकी चालें चलकर ठगना तो दूसरोंको चाहते हैं, पर पापसे उलटे आप ही ठगे जाकर अनेक कष्टोंको सहते हैं।

इसी समय प्रद्युम्नने नारदको आकाशमार्गसे आते हुए देखे। उठकर नारदका उसने बड़ा आदर किया, और बड़े विनयसे उन्हें अपने पास बैठाकर उनके आनेका कारण पूछा। सब बातें सुनकर वह आनन्दसे बैठा हुआ था कि इतनेमें उसने आकाशमें बड़ी भारी सेनाको लेकर क्रोधसे आगकी तरह लाल हुए कालसंवरको आता हुआ देखा। प्रद्युम्न भी तब उठकर लड़नेको तैयार होगया। उसने कालसंवरसे घोर लड़ाई कर बातकी बातमें उसकी सब सेनाको जीत लिया। कालसंवरको इससे बड़ा अपमान सहना पड़ा। वह अपनी सेनाको लेकर भागा और जाकर

पातालबावड़ीमें छुप गया । इतनेमें उसके छोटे लड़के ज्योति-प्रभने आकर बड़ी नम्रतासे कहा—पिताजी, पापी क्रोधको छोड़कर सुनिए । हम सब भाई प्रद्युम्नको मार डाल-नेकी इच्छासे जिस जिस स्थानपर ले गये, वहाँ वहाँ उसके पुण्यसे देवी-देवतोंने आकर उसे कई विद्यायें दीं और दिव्य वस्त्राभूषणोंसे उसका सत्कार किया । पिताजी, जान पड़ता है आपको माताने ठग लिया और इसी कारण आपने कुछ विचार न किया । पिताजी, स्त्रियाँ बड़ी पापिनीं होती हैं । वे सब सच ही बोलती होंगी, यह विश्वास नहीं किया सकता । कौन जान सकता है—माताने आपसे किस बुरे अभिप्रायसे क्या कहा हो? पर इतना जरूर है कि स्त्रियाँ हजारों मायाओंकी घर, दुष्ट और बड़ी ठगनियाँ होती हैं । इसलिए पिताजी, स्त्रियोंपर तो कभी विश्वास न करना चाहिए । आप सदृश बुद्धिमानोंको तो परलोकके लिए सदा सावधान रहना चाहिए । पिताजी, आपने भी न जानकर और माताके बचनोंपर विश्वास कर वृथा ही उस पुण्यवान्के मारनेका विचार किया । वह तो बड़ा ही धीरवीर, गंभीर, पवित्र हृदयवाला, सत्य बोलनेवाला, निर्लोभी और जिन-भक्ति-रत धर्मात्मा है । पिताजी, मोह-पिशाचके वश न होकर आप अपने बुरे संकल्पको छोड़कर कुमारके साथ अच्छा वर्ताव कीजिए । पुत्रके सत्य और अच्छे वचनोंको सुनकर काल-संवर भी समझ गया । इसके बाद वह कुमारके पास जाकर

झटसे उसे अपनी छातीसे लगा लिया और बड़ी शान्ति तथा मीठेपनसे बोला—बेटा तुम बड़े पवित्र हो और शीलके समुद्र हो, सब बातोंके जाननेवाले और विनयके मन्दिर हो। मैंने जो कुछ तुम्हारे साथ बुरा वर्ताव किया, उसे क्षमा करो। सुनकर प्रद्युम्नने बड़ी भक्तिसे कालसंवरको नमस्कार किया। इसके बाद उसने शिला उठाकर नागपाशसे बँधे हुए उसके सब लड़कोंको बावड़ीसे निकाल दिया और उन्हें क्षमा भी करदी। संसारमें क्षमा ही सत्पुरुषोंका भूषण है। मौका पाकर नारदने प्रद्युम्नसे कहा—बेटा, अभी सच्चा हाल तुम्हें मालूम नहीं है। अच्छा सुनो। ये कालसंवर महाराज, जो इस समय तुम्हारे पिता कहे जाते हैं, वास्तवमें ये तुम्हारे पिता नहीं हैं। किन्तु इन्होंने तुम्हें पाला-पोसा है। तुम्हारे खास पिता तो द्वारिकामें हैं। वे त्रिखण्डेश और बड़े ही प्रसिद्ध महापुरुष हैं। सब विद्याधर-राजे और नर-राजे उन्हें मानते हैं—उनकी सेवा करते हैं। उनका नाम है कृष्ण। और उनकी पट्टरानी बड़ी व्रत-शीलकी पालन करनेवाली रुक्मिणी तुम्हारी माता है। जबसे तुम्हारा हरण हुआ है तबसे वे बड़े कष्टमें हैं। तुम्हारे माता-पिता और सब यादवगण मेघकी ओर आखें गड़ाये हुए चातककी तरह तुम्हारे आगमनकी बाट जो रहे हैं। नारद द्वारा यह हाल सुनकर प्रद्युम्नने कालसंवरसे कहा—महाराज, वास्तवमें तो आप मेरे पिता हैं और महारानी कञ्चनमाला माता

है। क्योंकि दूध पिलाकर उन्हींने मुझे बड़ा किया है। पिताजी, मैं आपका बालक हूँ, मुझे आप क्षमा कीजिए। और मुझे आप आज्ञा दीजिए कि मैं द्वारिका जाकर आपकी कृपासे उन माता-पिताको भी सन्तुष्ट करूँ। प्रद्युम्नका आग्रह देखकर कालसंवरने उसे द्वारिकाके लिए विदा कर दिया। इसके सिवा प्रद्युम्न अन्य स्नेहियोंसे भी पूछ पाँछकर नारदके साथ वृषभ रथपर सवार होकर बड़े आनन्दसे द्वारिकाकी ओर चल दिया। रास्तेमें नारदने प्रद्युम्नसे वह सब हाल, जो स्वयंप्रभ जिन द्वारा उनने प्रद्युम्नके सम्बन्धमें सुना था, कहा। अग्निभूतिके भवसे लगाकर अपना अबतकका विस्तार सहित सब हाल सुनकर प्रद्युम्न बड़ा आनन्दित हुआ। इतनेमें वे हस्तिनापुरमें आ पहुँचे। यहाँ इस समय दुर्योधनकी रानी जलधिसे उत्पन्न हुई उदधिकुमारीके ब्याहकी धूमधाम मच रही थी। कृष्णकी दूसरी रानी सत्यभामाके पुत्र भानुकुमारके साथ उसका ब्याह होना निश्चित हुआ था। उदधिकुमारीको मंगल-स्नान कर रत्नहार आदि बहुमूल्य आभूषणोंसे सजी हुई देखकर प्रद्युम्नने अपने रथमें लाकर बैठा दिया और नारदको प्रस्तर नाम महाविद्या-शिलासे ढक दिया। जिससे कि उन्हें अपनी ये विनोद भरी बातें ज्ञात न हों। इतना करके प्रद्युम्न आकाशसे जमीन पर उतरा। अपनी विद्याके प्रभावसे उसने वहाँ बड़ी हँसी-दिल्लगी करना शुरू की। नाना तरहकी चेष्टायें कीं। स्त्रियोंके मूछें बना दीं और

पुरुषोंके स्तन बना दिये। इसी तरह किसीके कुछ और किसीके कुछ बनाकर उसने वहाँके लोगोंको बड़ा विस्मयमें डाल दिया।

यहाँ इतनी लीला कर वह मथुरा आया। यहाँपर पांडव लोग कुटुम्ब-परिवार, स्त्री-पुत्र आदिको लेकर अपनी राजकुमारीका भानुकुमारके साथ ब्याह करनेके लिए द्वारिका जानेको राजसी ठाटसे सजधजकर तैयार खड़े हुए थे। वहाँ प्रद्युम्नने धनुष चढ़ाये हुए कालके सदृश डरावने भीलका रूप लेकर माल-असबाव छीन लेनेके बहाने पाण्डुके शूरवीर पुत्रोंको विद्याके प्रभावसे थोड़ा नाच नचाकर कष्ट दिया।

वहाँसे वह द्वारिका पहुँचा। शहर बाहर ही ठहरकर उसने नारदको तो पहलेकी तरह पाषाण-नाम महाविद्या-शिलासे ढक दिया और आप नीचे सत्यभामाके बागमें उतरा। वह बाग बड़ा ही सुन्दर और सब तरहके फल-फूलोंसे खूब फल-फूल रहा था। प्रद्युम्नने वहाँ बन्दर बनकर बड़ा ऊधम मचाना शुरू किया। वह एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर और दूसरेसे तीसरेपर, इस प्रकार सब वृक्षोंपर दौड़ता हुआ उनके फलोंको तोड़-तोड़कर इधर-उधर फैंकने लगा। इस तरह उसने थोड़ी ही देरमें सारे बागकी सुन्दरताको मटिया मेट कर दिया। इसके बाद वह वहाँकी सब बावड़ियोंका पानी अपने कमण्डलुमें भरकर ब्रह्मचारीके वेषमें निकला। रास्तेमें उसनें सत्यभामाकी दासियोंकी बड़ी दिल्लगी की। वहाँसे द्वारिकाके

भीतर जानेके लिए प्रद्युम्नने अपनी विद्यासे एक रथ तैयार किया । उसके बड़े ऊँचे गधे और मेंढ़े जोते। सो वे भी उलटे मुँह। इस रथपर चढ़कर वह शहर-प्रवेशके दरवाजेपर पहुँचा और वहाँ आने-जानेका रास्ता रोककर खड़ा होगया। लोग रास्ता रुका देखकर बड़े घबरा गये । इस प्रकार सबके मनको खुश करता हुआ प्रद्युम्न वैद्य बनकर द्वारिकामें घुसा। वह जाता हुआ जोर-जोरसे कहता जाता था, जिस किसीके नाक-कान आदि कटे होंगे, मैं उन्हें बहुत जल्दी पीछा लगा दूँगा। किसीको कैसी भी भयंकरसे भयंकर बीमारी होगी, मैं उसे क्षणमात्रमें आराम करदूँगा। मेरा नाम शालक वैद्य है । संसारके सब वैद्योंमें एक मैं ही अच्छा वैद्य हूँ । उसकी इन हँसी भरी बातों और उसके खेलोंसे भानुकुमारको ब्याहने आई हुई राजकुमारियाँ बड़ी खुश होती थीं ।

वहाँसे वह सुन्दर ब्राह्मण बनकर सत्यभामाके महलपर पहुँचा। इस समय वहाँ ब्राह्मण-भोजनकी तैयारी हो रही थी। प्रद्युम्नने भी उन सब ब्राह्मणोंके साथ भोजन करनेकी सत्यभामासे प्रार्थना कर आज्ञा माँगली । उसे वहाँ खूब अच्छा भोजन मिला । मायासे उसने बहुत कुछ खा लिया तब भी रहा वह भूखाका भूखा ही। वह बारबार खानेको माँगने लगा और ज्यों ही उसकी पत्तलमें कुछ परोसा कि वह बातकी बातमें उसे खा लेता था । और उसका माँगना फिर वैसाका वैसा ही जारी रहता था। यह देखकर सत्यभामा बोली—न जाने

कहाँसे यह राक्षस ब्राह्मण बनकर मेरे घरपर आ गया। जो परोसा जाता है उसे आगकी तरह खाता ही चला जाता है। सुनकर प्रद्युम्न क्रोधसे कह उठा—पूरा पेटभर खानेको भी नहीं दिया जाता और बन बैठी महारानी! ब्रह्माने क्यों इस लोभिनीको कृष्ण महाराजकी रानी बनाया? मुहँ फुलाकर इस प्रकार लोगोंको सुनाता हुआ वह सत्यभामाके महलसे निकल गया।

वहाँसे वह क्षुल्लक बनकर अपनी माता रुक्मिणीके महल-पर गया। जाकर वह रुक्मिणीसे बोला—देवी, सुनता हूँ तुम बड़ी दयालु हो। मैं भूखा हूँ। मुझे कुछ अच्छा खिलाओ। सुन-कर रुक्मिणीने उसे छह-रसमय सुन्दर भोजन कराया। फिर भी वह भूखा ही रहा। रुक्मिणीने उसके मनोभावोंको जानकर अबकी बार खास कृष्णके अर्थ बने रक्खे मिष्टान्नको खिला कर उसकी भूख मिटाई। उस भोजनको करके वह बड़ा सन्तुष्ट हुआ। वह थोड़ी देरके लिए वहीं बैठ गया।

इतनेमें रुक्मिणीकी नजर अपने बागके वृक्षोंपर गई। उसने देखा कि असमयमें ही चम्पे, अशोक आदिके वृक्ष फूल उठे हैं। जिनपर फल न थे उनपर फल आगये हैं। जिनपर पत्ते न थे उनपर पत्ते आगये हैं। कोकिलायें कुहू कुहूकी ध्वनिसे बागको गुँजा रही हैं। भौंरेके झुण्डके झुण्ड नये खिले सुगंधित फूलोंकी सुगन्धसे खिंचे हुए आ रहे हैं। इधर रुक्मिणीकी

भुजायें फ़रकने लग गईं। स्तनोंमेंसे दूध झरने लगा। सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा। मनमें खुश होकर रुक्मिणीने क्षुल्लकसे कहा—महाराज, पुत्र-समागमका नारदने जो समय मुझे बतलाया था, वह आगया। क्या तुम्हीं तो मेरे प्यारे पुत्र नहीं हो? क्योंकि तुम्हें देखकर मुझे बड़ा प्रेम होता है। माताके प्रेमभरे वचन सुनकर प्रद्युम्न बड़ा संतुष्ट हुआ। तब अपना सच्चा रूप प्रगट कर उसने माताके पावोंमें प्रणाम किया। रुक्मिणी बड़ी आनन्दित हुई। उस समय पुत्र-समागमसे उसे जो सुख मिला उस प्रेम-सुखका कौन वर्णन कर सकता है। इसके बाद रुक्मिणीसे उसने कालसंवरके यहाँ अपने सुखपूर्वक रहने, बढ़ने, और विद्या वगैरहका महालाभ होने आदिका सब हाल अथसे इतिपर्यन्त कह सुनाया। वह सब वृत्तान्त सुनकर रुक्मिणी बड़ी सन्तुष्ट हुई। वह बोली—बेटा, मेघ बरसनेसे सन्तुष्ट हुए चातककी तरह तुझे देखकर मेरे सब मनोरथ तो पूर्ण होगये, पर एक बातका बड़ा ही दुःख बना रहा कि मैं मन और आँखोंको प्यारे तेरे बालपनका सुख न भोग सकी। सुनकर प्रद्युम्न उसी समय विद्याके प्रभावसे बालक बन गया और अपनी सब बाल-लीलाओंको दिखलाकर उसने माताको बड़ा ही खुश कर दिया। सुपुत्रका यही लक्षण भी है कि वह अपने माता-पिताको प्रद्युम्नकी तरह सुखी करे। इस प्रकार महिमाशाली प्रद्युम्न नाना तरहके हँसी-विनोद द्वारा अपनी माताका मन खुश कर रहा था।

उधर सत्यभामाने यह सोचकर, कि अबतक रुक्मिणीका लड़का नहीं आ पाया, रुक्मिणीके बाल लेनेको अपना नाई भेजा। उस नाईने आकर रुक्मिणीसे कहा–महारानीजी, भानुकुमारका इस समय मंगल-स्नान होगा, इसलिए आप अपने बालोंको दीजिए। सुनकर प्रद्युम्नको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बोला–माँ, यह दुष्ट क्या बुरी तरह बोल रहा है? रुक्मिणी बोली–बेटा, जिस समय तेरा जन्म हुआ, उसी समय सत्यभामाके भी भानु नाम पुत्र हुआ था। हम दोनोंकी सखियाँ यह शुभ समाचार देनेको कृष्ण महाराजके पास गईं। उस समय महाराज सो रहे थे। सो मेरी सखी तो उनके पावोंके पास जाकर बैठ गई और सत्यभामाकी सखी उनके सिरहाने बैठी। महाराज जैसे ही नींदसे उठे कि पहले मेरी सखीने प्रणाम कर उनसे कहा–राज-राजेश्वर, महारानी रुक्मिणीके जो पुत्र हुआ वह सब श्रेष्ठ लक्ष-णोंका धारक और बड़ा ही खूबसूरत है। सुनकर महाराजने मेरे ही पुत्रको पहला या बड़ा पुत्र कहा। अच्छा बेटा, सुन, मैं तुझे तेरे हरण होनेके पहलेका कुछ हाल कहती हूँ। कृष्ण महाराजने एकबार विनय नाम मुनिको मेरे और सत्यभामाके पुत्रोत्पत्तिके सम्बन्धमें पूछा था। उनके द्वारा सब हाल जान-कर मैंने और सत्यभामाने जवानीके गर्वसे अज्ञानी बनकर परस्परमें प्रतिज्ञा करडाली कि जिसके पहले पुत्र होगा वह एक दूसरीके केशोंको कटवा मँगवाकर अपने पुत्रको विवाह-

मंगल-स्नान करायगी । बेटा, यद्यपि पहले पैदा तू ही हुआ था तब भी तुझे दुष्ट धूमकेतु जो हर लेगया इस कारण फिर सत्यभामाका पुत्र ही कर्मयोगसे बड़ा पुत्र ठहराया गया । आज सत्यभामाके महलपर भानुकुमारका विवाह-मंगल-स्नान है । इसीलिए सत्यभामाने मेरे केश लेनेको इस नाईको भेजा है । कर्मका उदय बड़ा ही दुःसह है । माताके वचनोंको सुनकर प्रद्युम्नको बहुत ही क्रोध चढ़ आया । उसने तब विद्या-बलसे उस नाईके नाक-कान आदि काटकर बड़ी बुरी सूरत बनादी । शूर-वीर अपनी माताका ऐसा अपमान कभी नहीं सहन कर सकता । थोड़ी देर बाद सत्यभामाके बहुतसे नौकर रुक्मिणीके महलपर चढ़ आये । प्रद्युम्नने विद्या-बलसे कृष्णका रूप बनाकर उन लोगोंकी खूब ही निर्दयतासे खबर ली । इसके बाद जर नाम एक वीर आया प्रद्युम्नने अपना पाँव बढ़ाकर उसके भी एक लात जमाई । वह भी लम्बा बना । उसने फिर मेंढेका रूप लेकर अपने पितामह वसुदेवको और सिंह बनकर बलदेवको भी जीत लिया ।

इतना करके उसने एक और बड़ी भारी कौतुकपूर्ण लीलाकी । उसनें अपनी माता रुक्मिणीको एकान्तमें छुपाकर विद्या-बलसे एक नई रुक्मिणीकी सृष्टि की और उसे विमानमें बैठाकर वह चलता बना । यह देखकर द्वारिकामें बड़ा गुलगपाड़ा मचा । कृष्ण उसपर बड़े बिगड़े । वे क्रोधसे यमकीसी भयंकरता धारण कर प्रद्युम्नके मारनेको सैनासहित उसके

पीछे दौड़े । उसने पीछे आते हुए कृष्णको 'नरेन्द्रजाल' नाम विद्या द्वारा बातकी बातमें जीत लिया । पुण्यवानोंको विजय कहीं दुर्लभ नहीं ।

इसी समय नारदने आकर हँसकर कृष्णसे कहा—महाराज, किसपर चढ़ाई कर रहे हैं ? कुछ खबर है कि वह कौन है । अच्छा तो सुनिए । वह महारानी रुक्मिणीका पुत्र कामदेव प्रद्युम्नकुमार है और त्रिभुवनको मोहित करनेके लिए मोहिनी-रत्न है । प्रभो, इसके सम्बन्धमें जो तीर्थंकर भगवान्‌ने कहा था, वह सब सत्य निकला । ठीक सोलह वर्ष बाद अनेक विद्याओंको प्राप्त कर यह आया । महाराज, द्वारिकामें जो जो नई घटनायें अभी हुई हैं वे सब इसीने अपने विद्या-प्रभावसे की हैं । सुनकर कृष्ण बड़े ही सन्तुष्ट हुए । मानों उन्हें निधि मिल गई । इतनेहीमें प्रद्युम्न भी वहीं आगया और बलदेव तथा कृष्णके पावोंमें गिर पड़ा । उस अत्यन्त विनयी और प्रतापसे सूर्य-सदृश पुत्रको देखकर कृष्ण वगैरहको बहुत आनन्द हुआ । उन्होंने खुशीके मारे फूलकर झटसे उस सौभाग्यके मन्दिर प्रद्युम्नको उठाकर छातीसे लगा लिया । उसकी स्वर्गीय सौन्दर्य-सुधाका बारबार पानकर उन्होंने जो अपूर्व सुख लाभ किया उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । इसके बाद प्रद्युम्नको एक बड़े भारी हाथीपर बैठाकर राजसी ठाटके साथ कृष्ण सुंदर द्वारिकामें लिवाले गये । चारणगण उसके आगे आगे जयजयकार करते जाते थे । नाना तरहके बज-

ते हुए बाजोंसे सब दिशायें शब्द-पूर्ण हो रही थीं। उज्ज्वल छत्र उसपर शोभा दे रहा था। चँवर ढुर रहे थे। मानों सब सेनासहित देवेन्द्र प्रतीन्द्रके साथ जा रहा है।

भानुकुमारके लिए उस समय जितनी सुन्दर राजकुमारियाँ आई हुई थीं, कृष्ण वगैरेहने उन सबका बड़े उत्सवके साथ फिर प्रद्युम्नसे व्याह कर दिया। उस समय खूब दान दिया गया। सबका उचितसे अधिक मान-आदर किया गया। इस प्रकार सब बड़े घरानेकी राजकुमारियोंसे व्याह-कर प्रद्युम्नने बड़े पुत्र कहलानेका सौभाग्य प्राप्त किया। सूर्य-सदृश प्रद्युम्नने उस समय अपनी माताके हृदय-कमलको खूब प्रफुल्ल किया। इस प्रकार पुण्य-उदयसे बहुत काल इन लोगोंका सुखपूर्वक बीता।

एक दिन किसी ज्ञानीने आकर कहा—प्रद्युम्नका पूर्वजन्मका भाई भी स्वर्गलोकसे आकर कृष्णका पुत्र होगा। यह सुन-कर सत्यभामा कृष्णसे जाकर बोली—नाथ, उस सुतका लाभ जबतक मुझे न हो तबतक आप अन्य रानियोंके मन्दिर न जायँ। यह मेरी आपसे आग्रहपूर्वक प्रार्थना है। यह खबर जब रुक्मिणीको लगी तो वह ईर्षाके मारे जल गई। उसने तब प्रद्युम्नको एकान्तमें बुलाकर कहा—बेटा, तू वह उपाय कर जिससे तेरा भाई मेरी प्रिय सखी जाम्बवतीके पुत्र हो। सुनकर ज्ञान-विज्ञान-चतुर प्रद्युम्नने वह अपने पासकी काम-रूपिणी नाम विद्या-अँगूठी, जिससे मनचाहा रूप धारण किया

जा सकता है, जाम्बवतीको देदी। उस अँगूठीको उँगलीमें पहनकर चालाक जाम्बवती सत्यभामाका रूप धरकर कृष्णके पास गई और उनके साथ आनन्दपूर्वक उसने सुख भोगा। उसी समय प्रद्युम्नका पूर्वजन्मका भाई क्रीडाव, जो स्वर्गमें देव हुआ था वह, पुण्यसे वहाँसे आकर जाम्बवतीके गर्भमें आया। नौ महीने पूरे होनेपर बहुत आनन्द और उत्सवके साथ जाम्बवतीने उस पुण्यात्माको जन्म दिया। वह सब लक्षणोंका धारक जवान जाम्बवतीका पुत्र संभवकुमार भी बड़ा ही गुणी और मोक्षगामी है। रानी सत्यभामाने भी जो सुभानु नाम पुत्र-लाभ किया, वह भी बड़ा आनन्दका देनेवाला और गुणवान् है। एक दिन बलवान् संभवकुमार और सुभानुका गान-कलाके सम्बन्धमें बड़ा ही विवाद होगया था, पर उस समय सुभानु हार गया। संसारमें सब जगह पुण्यवानोंको ही जय, यश, सुख, लक्ष्मी, कीर्ति और कान्ति आदि प्राप्त होते हैं। इस प्रकार गणधर भगवानके मुख-कमलसे सब हाल सुनकर महारानी रुक्मिणी और सत्यभामा संसार-समुद्रमें गिरानेवाला परस्परका वैरभाव छोड़कर बड़ी मैत्रिणी बन गईं। जिन शुद्ध चारित्रके धारक महामुनियोंके उपदेशको सुनकर सिंह आदि क्रूर जानवर भी क्षणभरमें जन्म-सिद्ध वैरभाव छोड़कर बड़े ही शुद्धमन हो जाते हैं तब मनुष्यकी तो बात ही क्या है।

बलदेव भी गणधर भगवान्के मुँहसे प्रद्युम्न और संभव-कुमारके चरित्रको सुनकर बड़े आनन्दित हुए । उन्होंने फिर बड़ी भक्तिसे अन्य भव्यजनोंके साथ गणधरदेवको नमस्कार किया ।

सब सुर-असुर जिनके चरणोंको पूजते हैं, सैकड़ों बड़े बड़े योगी-ध्यानी मुनि जिनकी सेवामें सदा उपस्थित होते हैं, जो भव्यजनोंके एक-सर्व-श्रेष्ठ बन्धु या हितकर्त्ता हैं और जिन्होंने केवलज्ञान द्वारा मिथ्या अन्धकारको नष्ट कर दिया है वे नेमिनाथ जिन सदा जयलाभ करें-उनका पवित्र शासन संसारमें सदा मौजूद रहे ।

इति पञ्च दशः सर्गः ।

सोलहवाँ अध्याय।
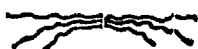
कृष्णकी मृत्यु, पांडव और नेमिजिनका निर्वाण।

जगद्गुरु नेमिजिन तीर्थङ्करको नमस्कार कर बलदेवने हाथ जोड़कर पूछा—हे प्रभो, हे भुवनाधीश और गुण-सागर बतलाइए कि यह विशाल राज्य कृष्णके पास कहाँलों रहेगा? कबतक कृष्ण इसका सुख भोग सकेंगे?

सब संसारके एक श्रेष्ठ बन्धु, त्रिभुवन-स्वामी श्रीनेमिप्रभु बोले—"बलदेव, यह राज्य कृष्णके पास बारह वर्षतक रहकर अन्तमें शराबका निमित्त पाकर नष्ट हो जायगा; और द्वारिका द्वीपायनके निमित्तसे आग लगकर भस्म हो जायगी। कृष्ण जरत्कुमारके प्राण-संहारक बाणसे मरकर घोर दुःखमय पहले नरकमें जायगा। दुष्कर्मोंके फलसे प्राप्त हुए कष्टोंको वहाँ एक सागर-पर्यन्त सहकर वहाँसे निकलेगा। फिर इसी भारतवर्षमें यह केवलज्ञानरूपी महान् साम्राज्यका स्वामी होकर देवतों द्वारा पूज्यता लाभ करेगा। श्रेष्ठ गुणोंका धारक होकर संसार नाश करेगा—मोक्ष जायगा। और बलदेव, तुम कृष्णके वियोगसे अत्यन्त दुखी और शोकाकुल होकर मोहवश छह महीने तक कृष्णको कन्धेपर उठाये उठाये फिरते फिरोगे। इसके बाद सिद्धार्थ नाम देवके हितरूप प्रबोधसे निन्दनीय शोकको छोड़कर परमार्थ समझ लोगे और फिर संसार-शरीर-भोगोंसे

मुँह मोड़कर मन-वचन-कायकी पवित्रतासे जिनदीक्षा ग्रहण कर घोर तप करोगे। इसके बाद तपके प्रभावसे माहेन्द्रस्वर्गमें कुछ अधिक सात सागरतक सुख भोगकर पुण्य-प्रभावसे इसी भारतवर्षमें जगत्का हित करनेवाले तीर्थङ्कर होगे। तुम-सँदृश सूरजको पाकर भव्यजनरूपी कमल बड़ी प्रसन्नता लाभ करेंगे। इसके बाद लोकालोकका प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त करके सब कर्मोंका नाशकर तुम शुद्ध सिद्ध होगे। नेमिप्रभु द्वारा यह सब हाल सुनकर बलदेवको सम्यक्त्व प्राप्त होगया। जिनका कहा कभी झूठा नहीं होता। द्वीपायन वहीं बैठे हुए थे। सो वे नेमिजिन द्वारा वह सब हाल सुनकर उसी समय जिनदीक्षा लेकर देशान्तरको चल दिये। जरत्कुमार भयानक कौशाम्बीके वनमें जाकर भीलके वेषमें रहने लगे। मूर्ख लोग दुराग्रहके वश हो कितने ही यत्न क्यों न करें पर जिन भगवानका कहना तो सत्य ही होगा। त्रिखंडाधीश कृष्णने नेमिजिनका संसार-सागरसे पार करनेवाला उपदेश सुना, पर पूर्व पापकर्मके उदयसे जो उनके नरकायुका बन्ध हो चुका था उससे उनकी इच्छा संयम ग्रहण करनेकी न हुई। उन्होंने तब सब सम्पदाके देनेवाले श्रेष्ठ सम्यक्त्व-रत्नको मन-वचन-कायकी पवित्रतासे आनन्दपूर्वक ग्रहण कर लिया। इतना करके वे अन्य लोगोंसे बोले—सत्पुरुषो, मैं तो कर्मरूपी ग्रहसे ग्रस लिया गया हूँ, इस कारण जिनदीक्षा ग्रहण नहीं कर सकता। पर मैं किसी अन्यको इस पवित्र कार्यके लिए रोकता

नहीं। इसलिए जिनका आत्मा बलवान् हैं—जो वीर-शिरोमणि हैं वे मोक्ष-सुखकी प्राप्तिके लिए परमानन्द देनेवाले नेमिप्रभुके संसार-ताप मिटानेको मेघ-सदृश चरणोंकी शरण लें। इस प्रकार सब हाल उन्होंने क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बूढ़े और क्या बालक—आदि सभीके पास पहुँचा दिया। यह सुनकर कृष्णके प्रद्युम्न आदि पुत्रों और रुक्मिणी आदि महारानियोंको संसारकी दुःस्थिति देखकर बड़ा वैराग्य हुआ। उन्होंने तब अपने कुटुम्ब-परिवारके लोगोंकी अनुमतिसे सब परिग्रह और माया-ममताका त्याग करके नेमिप्रभु तथा अन्य मुनिराजोंको बड़े प्रेमसे नमस्कार कर देव-पूज्य संयम ग्रहण कर लिया। जिनप्रणीत तत्वके जाननेवाले निकट भव्योंको धन-दौलत छोड़ देनेके लिए कोई महान् साहस नहीं करना पड़ता।

इसके बाद कामदेव प्रद्युम्न मुनि, जांबवतीका पुत्र बुद्धिमान् संभवकुमार और महाधीर-वीर प्रद्युम्नका लड़का अनुरुद्ध कुमार इन तीनों बुद्धिमानोंने सबके चित्तको हरनेवाले चारित्रसे शोभित होकर गिरनारके तीन शिखरोंपर शुक्लध्यानके प्रभावसे घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रादि देवतोंने आकर इनके चरणोंकी पूजा की। इसके बाद 'व्युपरतक्रियानिवर्ति' नाम ध्यान द्वारा बाकी चार अघातिया कर्मोंका भी क्षयकर इन्होंने शिव-सुन्दरीका सुख लाभ किया।

त्रिलोक-शिखरपर स्थित वे आठ गुणोंके धारक सिद्धजिन संसारका हित करते हुए मेरे कर्मोंका भी नाश करे।

एकवार परम सम्यग्दृष्टि त्रिखण्डेश कृष्णने बड़े धर्मानुराग और आदरके साथ किसी साधुको औषधि-दान दिया। उस-से उन्हें विस्मयकारी तीर्थंकर नाम गोत्रका बन्ध हुआ। यह योग्य ही है—जो भव्यजन साधु-सन्तोंकी भक्तिसे सेवा-सुश्रूषा करते हैं वे अवश्य अमृत-पद—मोक्ष प्राप्त करते हैं।

केवलज्ञानरूपी सूरज श्रीनेमिप्रभु पहलेकी तरह अब भी भव्यजनोंके पुण्यसे नाना देशोंमें विहार कर पल्लव नाम देशमें आये। प्रभुके आगे आगे धर्मचक्र चल रहा था। देवता लोग उनके चरणोंके नीचे सोनेके कमल रचते जाते थे। हजारों विद्याधर, राजे-महाराजे और बारहों गणधर उनके साथ चल रहे थे। सुरासुर-पूज्य, त्रिजगद्गुरु भगवान् रास्तेमें भव्यजनोंको पवित्र वचनामृतसे सन्तुष्ट करते हुए जा रहे थे। आठ प्रातिहार्य और चौंतीस अतिशयोंसे वे युक्त थे। उनके आगे देवता लोग नगाड़े वजाते जाते थे और उनका जय-जयकार करते जाते थे। इस बीचमें थोड़ासा पाँच पाण्डवोंका आवश्यक सम्बन्ध लिखा जाता है, उसे सुनिए।

द्रुपद काम्पिल्य नाम नगरके राजा थे। उनकी रानीका नाम दृढ़रथा था। द्रौपदी नाम इन राजा-रानीके एक लड़की थी। वह बड़ी सुन्दरी और खुशदिल थी।

अपने गुणोंसे वह देवकन्या सदृश शोभा पाती थी। उसे भर जवानीमें आई देखकर द्रुपदराजने अपने बुद्धिमान् मंत्रियोंको बुलाकर पूछा—अमात्यगण, बतलाइए द्रौपदीकी शादी किसके साथ की जाय? उनमें पहला मंत्री बोला—महाराज, पोदनापुरके राजा चन्द्रदत्त और रानी देविलाके जो इन्द्रवर्मा राजकुमार हैं, वे अच्छे बुद्धिमान् हैं। अपनी कुमारी द्रौपदीका उनसे व्याह कर देना अच्छा है। दूसरा मंत्री बोला—प्रभो, आजकल भीमराज बड़े प्रतापी राजा सुने जाते हैं। अपना कन्या-रत्न उन्हींके योग्य है। यह सुनकर तीसरे मंत्रीने कहा—राजन्, इन सबसे अर्जुनकी बड़ी ख्याति है। वह है भी बड़ा शूरवीर और शत्रु-विजयी। उचित होगा कि राजकुमारी द्रौपदी उससे व्याह दी जाय। इन सबकी बातें सुनकर चौथा मंत्री बोला—राजराजेश्वर, इन सबसे तो मुझे स्वयंवरविधि बहुत अच्छी जान पड़ती है। उसमें कन्या अपनी इच्छाके माफिक प्रसन्नतासे किसी पुण्यवान्के गलेमें वरमाला पहरा देगी। और ऐसा करनेसे किसीके साथ विरोध भी न होगा। यह सब सुनकर बुद्धिमान् द्रुपदराजने सब मंत्रियोंका दान-मानादिसे उचित आदर कर उन्हें विदा किया।

अन्तमें—द्रुपदने स्वयंवर करना ही स्थिर किया। उसके लिए बड़ी तैयारियाँ की गईं। एकसे एक सुन्दर वस्तु उसके सजानेको इकट्ठी की गईं। इस स्वयंवरमें बड़ीं बड़ी

दूरके राजे लोग छत्र-चँवर आदि राजसी ठाटके साथ आये। दुष्ट दुर्योधनने शूरवीर पाण्डवोंको जूआमें कूट-कपटसे हराकर उनका राज-पाट छीनकर देश वाहर कर दिया था। हाय, तृष्णा वड़ी पापकी कारण है। वहाँसे वे एक धोखेके वने लाखके महलमें ठहरे, पर जव उन्हें पुण्यो-दयसे दुर्योधनकी चालबाजी ज्ञात होगई तव वे दरवाजे पर पहरा दे रहे किल्विष नामके सिपाहीको मार झटसे सुरंगके रास्ते निकल भागे। वहाँसे वे भाग्यसे इस काम्पिल्य नगरमें आकर स्वयंवर-मण्डपमें आ पहुँचे।

स्वयंवर-मण्डप राजे लोगोंसे खूव भर गया। राजा द्रुपदने तव जिन भगवान्की पूजा करके सौभाग्य-रसकी वावड़ीके सदृश राजकुमारी द्रौपदीको वहूमूल्य वस्त्राभरणोंसे खूव सजाकर वड़े आनन्दके साथ, तोरण-ध्वजाओं तथा सुवर्ण-रत्नों और नाना तरहके फूलोंकी मालाओंसे दिव्य सुन्दरता धारण किये हुए स्वयंवर-मण्डपमें भेजा। मण्डपमें आई हुई द्रौपदी द्रुपदकी उज्जल कीर्त्तिके समान जान पड़ी। अपनी रूप-सुन्दरतासे त्रिभुवनमें श्रेष्ठताका मान पाये हुई द्रौपदी सूर्यकी कान्ति-सदृश सवके मनरूपी कमलोंको प्रफुल्ल करती हुई सिद्धार्थ नाम राज-पुरोहितके पीछे पीछे चल रही थी। पुरोहित सव राजोंके नाम कह-कहकर उनकी विभूतिका वर्णन करता हुआ आगे आगे वढ़ता जाता था और द्रौपदी सवको देखती जाती थी। इन सव राजोंको लाँघकर वह अर्जुनके

पास आई। अर्जुनको सब तरह योग्य देखकर द्रौपदीने वरमाला उसके गलेमें डालदी। यह देखकर लोगोंकी आनन्द-ध्वनिसे स्वयंवर-मण्डप गूँज उठा। उस समय उग्रवंशीय और कुरु-वंशीय नीतिज्ञ राजों तथा अन्य राजगणने द्रौपदीकी तारीफ कर कहा कि यह बड़ा अच्छा काम होगया। सब लोग परस्परमें उसकी प्रशंसा करने लगे। द्रुपद भी बड़े खुश हुए। इसके बाद उन्होंने बड़े दान-मानसे द्रौपदीका अर्जुनसे ब्याह कर दिया। पूर्वके पुण्यसे जीवोंको पग-पगपर लाभ होता ही है। इस प्रकार सत्पुरुषोंको खुश करनेवाले महान् उत्सवके साथ अर्जुनने द्रौपदीको ब्याहा। ज्ञानीजन जो कुछ कह देते हैं वह सत्य ही होता है। उसे जो मूर्ख झूठा कहता है वही पापी है।

इसके बाद पाण्डव लोग राजसी ठाटके साथ अपने नगर आगये। वहाँ बड़ी भक्तिसे उनने अभिषेक और जिनपूजा की। फिर वहाँ वे पुण्यके उदयसे बड़े आनन्दपूर्वक रहने लगे। कुछ दिनों बाद धर्मात्मा अर्जुनकी सुभद्रा नाम रानीसे महा शूरवीर अभिमन्यु नाम बड़ा भाग्यशाली पुत्र हुआ। और द्रौपदीके पाञ्चाल नामके पाँच पुत्र हुए। वे सब ही बड़े सुन्दर, गुणवान् और साहसी थे।

इसके सिवा पाण्डवोंके भुजंगशैलपुरीमें कीचकके वध करने, विराटके यहाँ छुपी रीतिसे रसोइया, ग्वाल, ज्योतिषी आदिके वेषमें रहने और बलपूर्वक गौएँको हरण करने आदि

बातोंका विस्तृत वर्णन 'पाण्डव-पुराण' आदि ग्रन्थोंसे जानना चाहिए।

इसके बाद वीर-शिरोमणि युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके साथ कुरुक्षेत्रमें आकर कौरवोंके साथ घोर युद्ध कर उन्हें पराजित किया और अपना सब राज्य पीछा उनसे लौटा लिया। इसके पश्चात् युधिष्ठिर राज्यकी ठीक व्यवस्थाके लिए उसे अपने भाइयोंमें बाँटकर उनके साथ बड़े आनन्दसे राज्यलक्ष्मीका सुख भोगने लगे। इस प्रकार साहसी और जिनप्रणीत धर्म-कर्ममें रत पाण्डवोंके दिन, पुण्यसे बड़े सुखसे बीत रहे थे। इस प्रकरणको यहीं छोड़कर एक दूसरी कथा लिखी जाती है। उसे सुनिए।

बारह वर्षोंके पूरे होनेमें कुछ थोड़ासा समय बाकी रह गया था। कृष्णने उस समय शहर भरकी दूकानोंकी शराब जंगलमें फिंकवा दी। इसी समय द्वीपायन मुनि भ्रमसे बारह वर्ष पूरे हुए समझकर इधर आये और द्वारिकाके बाहर ठहरे। यादवोंके राजकुमार उस वनमें खेलनेको गये हुए थे, जहाँ कृष्णकी आज्ञासे शराब फैंकी गई थी। उन राजकुमारोंको वहाँ प्यास लग आई। पापकी प्रबलतासे उन्होंने धोखेसे उस शराबको पानी समझकर पी लिया। नशेमें मस्त होकर वे आ रहे थे। रास्तेमें उन्होंने द्वीपायन मुनिको बड़ा तंग किया मारा-पीटा। मुनि तीव्र क्रोधके वश हो निदान कर मरे। मरकर वे भवनवासी देव हुए। पूर्वभवका वैर याद कर वह

देव क्रोधसे जल उठा। उसने फिर क्षणभरमें सुन्दर महलों और अट्टालिकावाली द्वारिकाको भस्मीभूत कर दिया। उस पापीने क्रोधसे जलकर बातकी बातमें धन-जनसे भरी-पुरी मनोहर नगरीको खाकका ढेर बना दिया। दुःख, पाप और संसारके कारण क्रोधको धिक्कार है। उस समय सारी द्वारिकामें सिर्फ कृष्ण और बलदेव बच पाये। लोगोंकी इस प्रकार कष्टसे मृत्यु देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। दावानलसे तप गये पर्वतकी तरह वे शरीरमात्र लेकर वहाँसे भागे और एक घने जंगलमें आकर ठहरे। जो पहले शत्रुओंके लिए एक बड़े भयकी वस्तु थी वे त्रिखण्डेश कृष्ण भी आज भागकर वनकी शरण गये। अब उनके पास न धुजा है, न छत्र है, न चँवर है और न नौकर लोग हैं। पुण्य नष्ट होनेपर जीवोंकी क्या दशा नहीं हो जाती। उस सिंह आदि जन्तुओंसे भरे हुए वनमें पहुँच कर रास्तेकी थकावटसे कृष्णको बड़ी प्यास लग आई। उनका शरीर प्याससके मारे बड़ा शिथिल पड़ गया। कालकी दूतीकी तरह मूर्च्छाने उनें मोह लिया। एक वृक्षके नीचे पड़े हुए वे मरेसे जान पड़ने लगे। कृष्णकी बिना पानीके यह दशा देखकर बलदेव बड़े दुखी हुए। वे भाईके मोहसे उस घोर वनमें अकेले ही जल ढूँढ़ने चल दिये। इसी समय भाग्यसे पापी जरत्कुमार घूमता-फिरता भीलके वेषमें इस ओर आनिकला। उस विचार-शून्य दुर्जनने दुर्जन-सदृश अपने तीखे और नि-

र्द्वयी प्राण-संहारक वाणसे कृष्णको वेध दिया। यह जीव पर्वत, जल, पाताल आदि किसी स्थानमें क्यों न जाकर छु-पनेकी कोशिश करे, पर होनेवाले दुःख या कष्ट होकर ही मिटते हैं—उनसे वह कभी छुटकारा नहीं पा सकता। इतनेमें बलदेव भी पानी लेकर आगये। कृष्णको पृथ्वीपर चेष्टा-हीन सोये देखकर उनने कहा—भैया, उठो, हाथ-मुँह धोकर पानी पीओ। ऐसी घोर चिन्तामें क्यों सोये हुए हो? देखो, तो तुम्हारा सब शरीर धूलमें भर गया है। भैया, उठो उठो! मुझसे नाराज तो नहीं न होगये? भाई, तुम बोलते क्यों नहीं; मुझे तो बड़ी भारी चिन्ता होगई है। भैया, उठकर मुझसे कुछ बोलो जिससे मेरे जीमें जी आवे। भैया, राज्य-वैभव, धन-जन गये तो जाने दो, जहाँ तुम-सदृश वीर पुरुष मौजूद हैं वहाँ सब सुन्दर सुन्दर वस्तुयें आँखोंके इशारे मात्रसे प्राप्त हो सकेंगीं। तुम तो सब विषयकी चिन्ता छोड़-कर उठ-बैठो। इस प्रकार प्रेमभरे वचनोंसे बलदेवने कृष्णसे बहुत कुछ कहा-सुना, पर कृष्ण नहीं उठे। तब बलदेवने उन्हें उठानेको हाथसे छुआ, इतनेमें उनकी नजर उस वाणके घाव पर पड़ गई। देखते ही दुःखरूपी दावानलने उन्हें मानों घेर-लिया—वे सिर थाँबकर बैठ गये; और घोर जंगलमें डाढ़ें मार-मारकर रोने लगे। हाय! यह क्या बुरा होगया! हाय! भैया, तुम्हारे इस वज्र-सदृश शरीरको किस दुष्टने वेध दिया! हाय! वज्रके बड़े भारी खम्भेको एक छोटासा

कीड़ा खागया ! हाय ! पापी जरत्कुमारने आकर तो कहीं मेरे इस वीराग्रणी भाईको नहीं मार दिया ! इस प्रकार बहुत शोक करनेके बाद बलदेव उठे और मोहसे कृष्णको अबतक भी मरा हुआ न समझ उन्होंने उस शवको निल्हाया, उसपर केशर-चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओंका लेप किया और नाना तरहके सुन्दर बहुमूल्य वस्त्राभूषण तथा फूलोंकी माला पहना कर वे उस अचेतन कृष्णके शवको कन्धेपर उठाकर चल दिये । मोहवश मरे हुए कृष्णको भी जीता समझ वे कोई छह महीने तक पृथ्वीपर इधर-उधर घूमते-फिरे। उनकी यह दशा देखकर एक सिद्धार्थ नाम देवने उनको नाना उपायों द्वारा प्रबोध दिया। देवताके उपदेशसे उन्हें अपने भले-बुरेकी समझ पैदा होगई। फिर उसी समय उन्होंने चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओंसे कृष्णका अग्निसंस्कार कर दिया। इस घटनासे उन्हें बड़ा वैराग्य होगया । वे संसार-शरीर-भोगोंमें अत्यन्त विरक्त होगये । उसी समय नेमि-जिनके समवशरणमें जाकर उन्होंने बड़ी भक्तिसे प्रभुके संसार-समुद्रसे पार करनेवाले चरणोंको नमस्कार किया । इसके बाद वे पवित्रात्मा जिनदीक्षा लेकर मुनि होगये । बड़े निस्पृह भावसे उन्होंने चिरकाल तक जिनप्रणीत तप किया, शुद्ध चित्त होकर चार आराधना साधी और रत्नत्रय प्राप्त किया। इसके बाद वे शल्य रहित संन्यास मरण कर माहेन्द्रस्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए ।

अवधिज्ञान द्वारा पूर्वजन्मका सब हाल जानकर उन्होंने स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले जिनशासनकी बड़ी तारीफ की। अब तत्व-ज्ञानी वह महर्द्धिक देव स्वर्गमें बड़े सुखसे स्थित है। हजारों देवी-देवता उसकी सेवामें सदा मौजूद रहते हैं। वह खूब पञ्चेन्द्रियोंके सुखोंको भोगता है और बड़ी भक्तिसे जिनभगवान्‌की पूजा-प्रभावना करता है। जो आगामी तीर्थङ्कर होनेवाला है उसके गुण-रत्नोंका कौन वर्णन कर सकता है। महा सुख-सम्पदाके कारण जिनधर्मके प्रभावसे भव्यजन सुख लाभ करें इसमें कोई सन्देह नहीं।

सर्वजयी और लोक-प्रसिद्ध पाण्डव, कृष्णकी मृत्युका हाल सुनकर प्रभु और बन्धु-वियोगसे बड़े दुखी हुए। फिर वे संसारके डरसे सब राज-पाट छोड़कर शीघ्र ही नेमिजिनकी शरण आगये। बड़ी भक्तिसे उन्होंने लोकश्रेष्ठ और केवलज्ञानरूपी सूरज नेमिप्रभुकी जल-चन्दनादि श्रेष्ठ द्रव्योंसे पूजा करके विनयसे सिर झुका स्तुति करना आरंभ की—हे देव, तुम त्रिभुवनके स्वामी देवतों द्वारा पूज्य, केवलज्ञानरूपी श्रेष्ठ तेजके धारक और मिथ्यान्धकारके नाश करनेवाले हो। तुम भव्य जनोंके रक्षक, पिता, स्वामी बन्धु और संसार-रोगका नाश करनेवाले एक श्रेष्ठ वैद्य हो। तुम नीचे गिरते हुए जीवोंके दुःख दूर करनेवाले और धर्मोपदेश द्वारा हाथका सहारा देनेवाले हो। प्रभो, बड़े आश्चर्यकी बात है कि तुम्हारे पास कोई हथियार नहीं, और तुम बड़े ही क्षमावान्, तो भी

तुमने बड़े भारी मोह बैरीका बड़ी सावधानीसे नाश कर जगत्का हित किया । देव, राग-द्वेषके सच्चे नाश करनेवाले संसारमें तुम ही हो, इसी कारण तो तुमने संसार-समुद्रका पवित्र किनारा प्राप्त कर लिया । हे देव, हे जिनाधीश और हे जगद्गुरो नेमिजिन, काम-शत्रुके नाश करनेवाले और संसार-सागरसे पार पहुँचानेवाले वास्तवमें तुम ही हो । हे प्रभो, तुम सब दोषोंसे रहित हो, इसलिए तुम ही वन्दनीय हो, तुम ही पूज्य हो । और इसी कारण हम तुम्हारी शरणमें आये हैं । नाथ, हमने तुम सदृश परमानन्द देनेवाले महापुरुषकी शरण ली है, इसलिए कि तुम संसारके दुःखोंसे हमारी रक्षा करो । इस-प्रकार त्रिजगद्गुरु नेमिप्रभुकी बड़ी भक्तिसे स्तुति कर पाण्डवोंने उनसे अपने पूर्वजन्मका हाल पूछा । उस समय अनन्त गुणोंके धारक, जगत्के हितकर्त्ता, त्रिभुवन-पूज्य, संसारके पितामह-सदृश और दिव्यभाषाके स्वामी तेजोमय नेमिप्रभु सबके समझमें आनेवाली दिव्य भाषामें बोले—भव्यजन, सुनिए ।

" इस जम्बूद्वीपके सुन्दर भारतवर्षमें जो प्रसिद्ध अंगदेश है उसमें चम्पापुरी नाम एक प्रसिद्ध नगरी है । उसमें कुरुवंशी मेघवाहन नामका एक राजा हो चुका है । वह बड़ा धर्मात्मा और राजनीतिका जाननेवाला था । इसी चम्पापुरीमें एक सोमदेव नाम ब्राह्मण रहता था । उसकी स्त्रीका नाम सोमिला था । वह बड़ी गुणवती और पतिव्रता थी ।

उसके तीन पुत्र हुए। वे तीनों ही बड़े ज्ञानी—सब शास्त्रोंके ज्ञाता थे। उनके नाम सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति थे। उनका हृदय चन्द्रमाके समान बड़ा निर्मल—शुद्ध था। उनके मामाका नाम अग्निभूति था। अग्निभूतिकी स्त्री अग्निला थी। उसके तीन लड़कियाँ हुईं। वे सब बड़ी सुन्दर थीं। लक्ष्मीके सदृश पहली लड़कीका नाम धनश्री और दूसरी तथा तीसरीका नाम श्रीमती और नागश्री था। लड़कियोंके पिता अग्निभूतिने उन तीनोंका व्याह क्रमसे सोमदत्त, सोमिल और सोमभूतिसे कर दिया। इस प्रकार इन सबके दिन बड़े सुखके साथ बीतने लगे। कोई वैराग्यका कारण पाकर धर्मात्मा सोमदेव सब प्रकार निर्मोही होकर जिनभगवान्के चरणोंको नमस्कार कर साधु होगया।

एकवार कर्मयोगसे धर्मरुचि नाम मुनि इन लोगोंके घर आहारके लिए आये। उन्हें देखकर मुनि-भक्ति-परायण सोमदत्तने अपने छोटे भाईकी वहू नागश्रीसे उन मुनिको आहार करानेके लिए कहा। पापिनी नागश्री मनमें यह सोचकर, कि जेठजी सदा मुझे ही हरएक कामके लिए जोता करते हैं, सोमदत्त पर बड़ी गुस्सा होगई। सो उसने उन मुनिको प्राणहारी जहर मिला हुआ आहार करा दिया। जो आगामी दुर्गतिमें जानेवाले हैं वे ही ऐसा दुष्कर्म करते हैं। वह जहर मुनिके सब शरीरमें फैल गया। उससे उन्हें बड़ी वेदना सहनी पड़ी। अन्तमें वे संन्याससहित मरण कर

सर्वार्थसिद्धिमें जाकर अहमिन्द्र हुए । मूर्खजन साधु-सन्तोंको भले ही तकलीफ दें, पर वे तो अपने पुण्यसे सद्गति ही लाभ करते हैं । सोनेको आगमें तपाते हैं, घनोंसे कूटते हैं और कसौटीपर घिसते हैं तो भी वह अपने गुणोंसे श्रेष्ठ लोगोंके सिरका भूषण ही होता है।

सोमदत्त वगैरह सब भाई नागश्रीके इस महा पापको जानकर बड़े दुखी हुए । लज्जा और आत्मग्लानिके मारे वे लोगोंको मुँह भी न दिखा सके। उन्हें इस घटनासे संसार-शरीर-भोगोंसे वड़ा वैराग्य होगया। वे सब धन-दौलत छोड़कर वरुण नाम मुनिराजके पास बड़ी भक्ति और उल्हासके साथ संसार-भ्रमणका नाश करनेवाली जिन-दीक्षा लेकर मुनि होगये और खूब तप करने लगे। उधर धनश्री और मित्रश्री भी गुणवती नाम आर्यिकाके पास संयम ग्रहण कर महातप करने लगीं। इस प्रकार वे पाँचों जनें जिनप्रणीत चार आराधनाओंका आराधन कर हृदयमें जिनभगवान्का ध्यान करते हुए संन्यास सहित मरे। मर-कर वे पुण्यके प्रभावसे आरण और अच्युत स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए। आयु उनकी वहाँ बाईस सागरकी हुई। अपने पूर्वजन्मका हाल जानकर वे सन्तुष्ट हुए । सदा जिनपूजनादि सत्कर्मोंको करते हुए उन्होंने वहाँ पञ्चेन्द्रियोंके सुखोंको चिरकाल तक भोगा। जिनधर्मके प्रभावसे कौन सुखी नहीं होते। नागश्री मरकर पापके उदयसे पाँचवें नरक गई।

वहाँ उसने बहुत दुःख भोगे। वहाँसे निकलकर वह स्वयंप्रभ नाम द्वीपमें दृष्टिविष जातिका भयानक सर्प हुआ। मरकर वह दूसरे नरक गया। वहाँ उसने तीन सागरतक बड़े घोर दुःख सहे। पापियोंका संसार-समुद्रमें भ्रमण होता ही रहता है। वहाँसे निकलकर उसने इस दुःखरूप संसारमें दो सागरतक स्थावरोंमें तीव्र दुःख सहा। फिर कर्मयोगसे वह चम्पानगरीमें चाण्डालके यहाँ लड़की हुई। एक दिन उसे समाधिगुप्त मुनिके दर्शन होगये। नमस्कार कर उसने उनसे सुखका कारण जिनप्रणीत धर्मका उपदेश सुना और मद्य-मांस-मधुकी प्रतिज्ञा की। आयुके अन्त मरकर वह पुण्यसे चम्पापुरीमें ही सुबन्धु महाजनकी स्त्री धनदेवीके सुकुमारी नाम लड़की हुई। पूर्व पापके उदयसे उसका शरीर दुर्गन्ध युक्त हुआ।

इस चम्पापुरीमें धनदेव नाम एक और महाजन रहता था। उसकी स्त्रीका नाम अशोकदत्ता था। इसके जिनदेव और जिनदत्त नामके दो सुन्दर पुत्र हुए। सुखसे बड़े होकर इन दोनों भाइयोंने जवानीमें पैर रक्खा। इनमें बड़े भाई जिनदेवके व्याहके लिए कुटुम्बके लोगोंने सुकुमारीको तजवीज किया। जिनदेव उसके दुर्गन्धित शरीरका हाल सुनकर सुव्रत नाम मुनिराजके पास दीक्षा लेकर मुनि होगया। तब छोटे भाई जिनदत्तने इच्छा न रहते हुए भी माता-पिता आदिके आग्रहसे सुकुमारीके

साथ व्याह कर लिया। व्याह तो उसने कर लिया परन्तु वह उसे भयानक साँपिनकी तरह समझकर स्वप्नमें भी छूना पसन्द न करता था; और न कभी उससे बोलता था। स्वामीकी अपनेपर इस तरह अकृपा देखकर कुमारी सदा दुखी रहती थी और दुर्भाग्यसे प्राप्त हुए दुर्गन्धित शरीर तथा अपने पापकर्मकी निन्दा किया करती थी। इस प्रकार खेद-खिन्न होकर वह सदा अपनी पुण्य-हीनता पर विचार करती रहती थी।

एकवार कुमारी उपासी थी। उस दिन उसके यहाँ कुछ आर्यिकाओंके साथ सुव्रता नाम आर्यिका आई। उन सबको भक्तिसे हाथ जोड़कर कुमारीने पूछा—माताजी, इन और माताओंने किस कारणसे यह जिनप्रणीत पवित्र तप ग्रहण किया, वह मुझे कहो। सुनकर सुव्रता बोली—बेटी, सुनो। पहले जन्ममें ये दोनों सौधर्मस्वर्गमें सौधर्मेन्द्रकी देवियाँ थीं। एकवार ये धर्म-प्रेमके वश हो नन्दीश्वर द्वीपमें जिनपूजा करनेको गई थीं। वहाँ इन दोनोंने परस्परमें दृढ़ प्रतिज्ञा की कि—"हम मनुष्य-जन्म पाकर निश्चयसे तप ही करेंगे।" इसके बाद ये मरकर धन-जनसे भरी-पुरी अयोध्यामें श्रीषेण राजाकी श्रीकान्ता नाम रानीके हरिषेणा और श्रीषेणा नाम दो सुन्दर लड़कियाँ हुईं। जब ये जवान हुईं तब बड़ा भारी व्यय करके श्रीषेणने इनके व्याहके लिए स्वयंवर-मण्डप तैयार किया। बड़ी बड़ी दूरके राजे लोग

स्वयंवरमें आये। ये दोनों बहिनें वरमाला लेकर सजे हुए स्वयंवर-मण्डपमें आईं। भाग्यसे उसी समय इनको अपने पूर्वजन्मका बोध होगया। ये तब भव-भोगोंसे बड़ी विरक्त होगईं। बड़ी नम्रतासे अपने माता-पिता तथा अन्य कुटुम्बी-जनोंको समझाकर और उन सबको विदाकर ये जिन-दीक्षा ले-गईं। यह हाल सुनकर कुमारी भी बड़ी विरक्त होगई। उसने फिर उसी समय सुव्रता आर्यिका द्वारा जिन-दीक्षा लेली।

एकबार कुमारीने देखा कि कुछ कुशील लोग वसन्तसेना नाम वेश्याके रूप-सौभाग्य पर मोहित होकर उससे बड़ी बड़ी-नम्र प्रार्थनायें और खुशामदें कर रहे हैं। यह देखकर कुमारीने निदान किया कि परजन्ममें मुझे भी इसके सरीखी रूप-सुन्दरता प्राप्त हो। इस निन्दनीय निदानको करके कुमारी मरी। तपोबलसे वह अच्युत स्वर्गमें नागश्रीके भवके पति सोमभूतिकी, जो इसी स्वर्गमें देव हुआ है, देवी हुई। सबके मनको प्यारे सुन्दर चिन्तामणिको देकर क्या तुच्छ कीमतका काच नहीं खरीद जा सकता।

हाँ सुनिए पाण्डवराज, वे जो स्वर्गमें तीनों भाई थे, वहाँ उनने पुण्यके उदयसे चिरकालतक खूब सुख भोगा। बाद वहाँकी आयु पूरी कर वे तीनों भाई पाण्डुकी कुन्ती नाम रानीके रत्नत्रय-सदृश तुम युद्धिष्टिर, भीम और अर्जुन हुए। और वे धनश्री और मित्रश्रीके जीव पाण्डुकी दूसरी स्त्री

मद्रीके नकुल और सहदेव हुए। पाण्डवराज, पूर्व पुण्यसे तुम सब कलाओंमें चतुर, वीर और धर्मात्मा हुए। और वह जो दुर्गन्धा कुमारी तपके प्रभावसे स्वर्गमें देवी हुई थी, सो स्वर्गकी आयु पूरी कर काम्पिल्य नगरके राजा द्रुपदकी रानी दृढ़रथाके द्रौपदी नाम पुत्री हुई। वही गुणवती, धर्मात्मा और सुन्दरताकी खान द्रौपदी अपने अर्जुनकी प्रिया हुई।" इस प्रकार नेमिजिन द्वारा अपना सब हाल सुनकर पाण्डव बड़े सन्तुष्ट हुए। इसके बाद पाँच परमेष्ठीके सदृश जान पड़नेवाले वे पाँचों भाई जगत्‌के हितकर्त्ता नेमिप्रभुको बड़ी भक्तिसे नमस्कार कर और बहुतसे क्षमाशाली सत्पुरुषोंके साथ जिनदीक्षा लेगये। मुनि होकर संसार-शरीर-भोगोंसे अत्यन्त निस्पृह और धीर वे पाण्डवगण खूब तप करने लगे।

इधर कुलकी उज्ज्वल दीपिका सदृश कुन्ती और अर्जुनकी स्त्रियाँ सुभद्रा तथा द्रौपदी ये तीनों राजीमती आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर साध्वी बन गईं और शास्त्राभ्यास पूर्वक जिनप्रणीत तप तपने लगीं। राग-द्वेषका नाश कर इनने हृदयको बड़ा पवित्र बना लिया। अन्तमें ये निर्मोही आर्यिकायें संन्यास-मरण कर सोलहवें स्वर्गमें गईं। वहाँ वे बड़ा मनोहर सुख भोग रही हैं। वहाँसे वे पवित्र मनुष्य-जन्म लेकर जिनप्रणीत तप करेंगीं और कर्मोंका नाश करके केवलज्ञान प्राप्त कर अन्तमें मोक्ष जायँगीं।

उधर तपसे जिनका आत्मा बड़ा पवित्र होगया है ऐसे

भक्ति-परायण पाण्डवगण नेमिप्रभुके साथ पृथ्वीतलमें विहार करते हुए शत्रुंजय पर्वतपर आये। दर्शन-ज्ञान-चारित्रसे पवित्र पाण्डवगण यहाँ आकर आतापन-योग धारण कर ध्यान करने लगे। पर्वतपर निश्चलता पूर्वक ध्यान करते हुए पाण्डव ऐसे जान पड़ने लगे मानों पाँच मेरु ही आगये हैं। हृदयमें वे नेमिजिन-प्रणीत जीवाजीवादि सात तत्वोंका निरंतर विचार किया करते थे। शत्रु-मित्रमें उनके समान भाव थे। शरीरसे उन्होंने बिल्कुल ही मोह छोड़ दिया था। स्वर्ण-पाषाणकी तरह जीव और कर्मको उन्होंने सर्वथा भिन्न समझ लिया था। अपने आत्मामें वे स्थिर थे। यद्यपि वे तपके तापसे तप रहे थे तो भी उनका हृदय चन्द्रमाके सदृश बड़ा ही शीतल हो रहा था।

इसी समय दुर्योधनका भानजा दुष्ट कुर्यवर इस ओर आ-निकला। पाण्डवोंको देखकर उसे उनपर अत्यन्त क्रोध चढ़ आया। इसलिए कि उसके मामेका वध इन्हींके द्वारा हुआ था। तब उस बैरको याद कर उसने पाण्डवोंको मार-डालनेके लिए अपनी सेनाको उनके घेर लेनेकी आज्ञा दे दी। वही हुआ। उसकी सेनाने पाण्डवोंको चारों ओरसे घेर लिया। इसके बाद उस पापीने लोहेके बने हुए कड़े, कंठी, कुण्डल, मुकुट आदि आभूषणोंको आगमें खूब तपाकर उन शान्त साधुओंके फूल-सदृश कोमल सुन्दर शरीरमें पहरा दिया। और इस प्रकार उस दुष्टने उनपर बड़ा ही घोर उपसर्ग

किया—उन्हें महान् कष्ट दिया। कायर लोग जिसे नहीं सह सकते ऐसे घोर कष्टको भी बड़े धीरजके साथ सहकर युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन शुक्लध्यानरूपी अग्निसे कर्म-शत्रुओंको भस्मकर मोक्ष चले गये। और नकुल और सहदेव मुनि पुण्यके प्रभावसे सुख-समुद्र सर्वार्थसिद्धिमें गये। त्रिभुवन-श्रेष्ठ वे पाँचों पाण्डव स्तुति-वन्दना करनेवाले भव्यजनके कर्मोंका नाश करें।

देवतागण जिनके चरणोंकी पूजा करते हैं ऐसे केवलज्ञानरूपी सूरज श्रीनेमिप्रभुने ६९९ वर्ष ९ महीने और ४ दिन पर्यन्त विहार कर धर्मामृतसे भव्यजनोंको सन्तुष्ट किया और स्वर्ग-मोक्षके मार्गका प्रकाश किया। इसके बाद लोक-श्रेष्ठ नेमिजिन योगीने प्रसिद्ध गिरनार पर्वतपर आकर एक महीनेका योग-निरोध किया। यहाँ कोई ५३३ ज्ञानरूपी नेत्रके धारक ध्यान-तत्पर पवित्र मुनियोंके साथ,असाढ़ सुदी, सप्तमीके दिन, रातके पहले भागमें चित्रानक्षत्रका उदय होनेपर, पवित्रात्मा नेमिप्रभुने व्युपरतक्रियानिवृत्ति नाम चौथे शुक्लध्यान द्वारा चौदहवें गुणस्थानमें, पाँच लघु अक्षर कालके उपान्त्य समयमें ७२ और अन्त्य समयमें १३ प्रकृतियोंका क्षय किया। इस प्रकार चार अघातिया कर्मोंका भी नाश कर नेमिप्रभु एक ही समयमें मोक्ष जाकर सिद्ध, बुद्ध और महान् उज्जल—पवित्र होगये। सम्यक्त्व आदि आठ शुद्ध और प्रसिद्ध गुणोंसे युक्त और लोक शिखरपर विराजमान वे सिद्ध भगवान् कल्याण करें—मोक्ष दें।

भगवान्‌के निर्वाण गमनके बाद ही इन्द्रगण, देव-देवाङ्गना तथा भव्यजनोंके साथ वहाँ आये। इसके बाद देवतोंने पुण्यके निमित्त धर्मानुरागसे, निर्वाण बाद बिजलीकी तरह नष्ट होगये नेमिजिनके शरीरको पुनः रचा और उसे चन्दन, अगुरु आदि सुगन्धित वस्तुओंकी चितापर रखकर अग्निकुमार देवोंके मुकुटोंसे प्रज्वलित की हुई अग्निसे भस्म किया। फिर बार बार प्रणाम कर उन्होंने नेमिजिनकी स्तुति की। हे नेमिजिन, हे नाथ, तुम पवित्र हो, त्रिभुवनके स्वामी हो और कर्म-शत्रुओंका नाश करनेवाले हो। तुम सिद्ध, बुद्ध और ज्ञाता-द्रष्टा हो। तुम्हारा आत्मा बड़ा पवित्र है। हे देव, हे निरंजन, तुम अनन्त सुखके अब भोक्ता होगये हो। प्रभो, तुम साकार होकर भी निराकार हो—केवल शुद्ध चेतनारूप हो। नाथ, तुम्हारे प्रभावसे—तुम्हारी कृपासे हम भी ऐसे ही जायँगे। इस प्रकार त्रिभुवन-श्रेष्ठ नेमिप्रभुकी स्तुति कर देवतोंने उनके शरीरकी पवित्र और पाप नाश करनेवाली भस्मको बड़े प्रेमसे ललाट, सिर, छाती और भुजाओंमें लगाया और अन्य सब प्रकारके देवतोंके साथ खूब नृत्य किया, गाया बजाया। इस प्रकार भक्तिसे जगच्चूड़ामणि नेमिप्रभुके पाँचों कल्याण कर त्रिभुवनके जीवोंको सुख देनेवाले उनके गुणोंको याद करते हुए देवता गण सुख-सम्पदाके कारण पुण्यका बन्ध कर अपने अपने लोकको चले गये।

मेरे द्वारा पूजा-वन्दना किये गये पञ्च कल्याणके स्वामी नेमिप्रभु मुझें अपनी भक्ति दें। क्योंकि उस भक्तिसे ही मुझे स्वर्ग या मोक्षका सुख मिल सकेगा। फिर मुझे अन्य कायक्लेश आदिके उठानेकी कोई जरूरत न रहेगी। संसार में वही मनुष्य धन्य है और वही गुणोंका समुद्र है, जिसके कि चित्तमें जिनभगवानकी निश्चल भक्ति है। इस प्रकार महावीर भगवान्के समवशरणमें गौतम स्वामीने अन्य तीर्थंकरोंका पुराण कहकर जो नेमिजिनका श्रेष्ठ पुराण कहा, उसे सुनकर श्रेणिक महाराज बड़े सन्तुष्ट हुए।

मुझ मन्दबुद्धिने जो महापुराणको देखकर यह नेमिजिनका उत्तम और भव्यजनोंके सुखका कारण पुराण संक्षेपमें सरल संस्कृत भाषामें लिखा वह केवल भगवान्की भक्तिके वश होकर लिखा है। इसलिए भुक्ति-मुक्तिकी कारण जिनके मुख-कमलसे उत्पन्न हुई माँ सरस्वती, मुझे क्षमा करना। क्योंकि मैं व्याकरण वगैरह कुछ नहीं जानता। मैंने तो केवल कथाका सम्बन्ध लेकर यह शुभ पुराण लिख दिया है। माँ-मैंने एक मूर्खकी तरह जो कुछ भी लिख दिया है मुझे विश्वास है कि मेरा वह श्रम भी तुम्हारे प्रसादसे कर्मक्षयका कारण होगा। इसके सिवा जो सहनशील सज्जन जिन-वचन-रत हैं उनसे मेरी नम्र प्रार्थना है कि वे बुद्धिमान् जन इस पुराणका संशोधन करें।

नेमिजिनका यह पवित्र पुराण बातों बातोंमें सुना हुआ ही

वहुत सुखोंका देनेवाला है। जैसे सूर्यके दूर रहते हुए उसकी प्रभा ही पृथ्वीतलके कमलोंको सदा प्रफुल्ल किया करती है। यह जानकर जो भव्यजन नेमिजिनके इस सुखके कारण पुराणको सुनते हैं, पढ़ते हैं और दूसरोंको पढ़ाते या सुनाते हैं, तथा लिखते हैं और लिखवाते हैं और भक्तिसे नित्य उसकी भावना करते हैं वे मनचाही वस्तु—लक्ष्मी, कीर्ति, यश, सुख, पुत्र, मित्र, स्त्री, आदि सुखकी कारण सम्पत्ति तथा विशाल-राज्य, ज्ञान, मान, मर्यादा और क्रमसे स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त करते हैं। यह धर्मशास्त्र है, अनन्त-सुखोंका देनेवाला है, यह जान कर हितैषी सज्जनो, भक्तिसे निरन्तर इसकी भावना करते रहो। जो नेमिजिनके इस पवित्र पुराणका श्रद्धा-भक्तिके अनुसार आश्रय लेते हैं वे केवलज्ञानको प्राप्त करते हैं।

देवतोंने भक्तिसे जिनकी पूजा की, मोहान्धकारका नाश कर जिनने केवलज्ञान प्राप्त किया, और जो दोषोंसे रहित और गुणोंके समुद्र हैं, भव्यजनरूपी कमलोंको प्रफुल्ल करनेवाले वे नेमिप्रभु संसारका नाश कर सुख दो।

जो पहले चिन्तागति नाम विद्याधर राजा होकर चौथे स्वर्गमें गये; वहाँसे अपराजित राजा होकर अच्युतेन्द्र हुए; फिर सुप्रतिष्ठ नृपति होकर जयन्तविमानमें अहमिन्द्र हुए और अन्तमें हरिवंशरूपी आकाशके चन्द्रमा नेमिजिन तीर्थंकर हुए वे भगवान् सबकी रक्षा करो।

जिनके ज्ञानने जीवादि पदार्थोंसे भरे हुए सारे संसारको सूक्ष्मताके साथ जान लिया और जिसके लिए अलोकाकाशमें भी जाननेके लिए कुछ न रहा और वह अनन्त होनेके कारण लताकी तरह त्रिभुवनमें व्याप्त हो रहा है वे त्रिजगद्गुरु नेमिप्रभु सबका मंगल करो।

जो पहले सुभानु होकर पहले स्वर्गमें देव हुए; वहाँसे विद्याधर होकर चौथे स्वर्गमें गये; फिर शंख नामक महाजनपुत्र होकर महाशुक्र स्वर्गमें देव हुए और वहाँसे नौवें बलदेव होकर फिर चौथे स्वर्गमें गये। वहाँ वह देव खूब दिव्य सुखोंका भोगता है, सदा जिन-भक्तिमें रत रहता है। उसे अणिमादिक आठ ऋद्धियाँ प्राप्त हैं और वह धर्मका बड़ा सेवन करता है। वहाँसे वह मनुष्य-जन्म लेकर संसारका नाश करनेवाला तीर्थंकर होगा।

जो पहले अमृतरसायन नामसे प्रसिद्ध होकर मुनि-हत्याके पापसे तीसरे नरक गया; वहाँसे इस गहन और घोरदुःखमय संसारमें भ्रमणकर यक्ष नामक गृहस्थ हुआ, फिर निर्नामक नाम राजपुत्र होकर जिनधर्मके प्रभावसे दसवें स्वर्गमें श्रेष्ठ गुणोंका धारक देव हुआ; फिर निदान कर पुण्यसे इस भारतवर्षमें कृष्ण नाम अर्द्धचक्री—त्रिखण्डेश हुआ। यहाँ इसने बड़ी निर्दयतासे चाणूर पहलवान, कंस, जरासंध आदि शत्रुओंको मारा। इसके बाद संसारके परम बन्धु, त्रिजगद्गुरु नेमिजिनकी वन्दना कर और उनके द्वारा संसारसे पार कर

नेवाले दयामय श्रेष्ठ जिनधर्मका उपदेश सुनकर इसने संसार दुःखका नाश करनेवाले और त्रिजगके हितकर्त्ता निर्मल सम्यक्त्वको ग्रहण किया। उस सम्यक्त्वके प्रभावसे यद्यपि इसने तीर्थङ्कर नाम कर्मका वन्ध कर लिया, परन्तु पहले जो नरकायुका वन्ध हो चुका था उससे इसे प्रथम नरक जाना पड़ा। वहाँसे आकर यह तीर्थङ्कर होगा और देवता गण इसकी पूजा करेंगे।

यह सब एक धर्मका प्रभाव जानकर, पवित्र मनसे अपने हितके लिए लौ लगाये हुए भव्यजनो, तुम भी शिव-सुखके कारण जिनधर्ममें उल्हासके साथ अपनी बुद्धिको दृढ़ करो। उससे तुम दोनों लोकमें सुख-सम्पदा प्राप्त कर सकोगे।

जो इन्द्रों द्वारा वन्दनीय और गुणरूपी रत्नोंके पर्वत हैं, कामका दर्प चूर्ण करनेवाले और सब सन्देहोंके हरनेवाले हैं, मोक्षके देनेवाले और सब कल्याणोंके कर्त्ता हैं वे पवित्र नेमिप्रभु सदा जय-लाभ करें। उन नेमिप्रभुकी श्रेष्ठ वाणी केवलज्ञानकी खान है, सुख-विलासकी श्रेणी है और अत्यन्त शुद्ध-परस्परके विरोधरहित है। उसे मैं अपने पवित्र हृदयमें बड़ी भक्तिसे विराजमान करता हूँ, वह मुझे क्षायिकदर्शन-रूपी लक्ष्मी दान करो।

इति षोडशः सर्गः।